1998 से निरंतर प्रकाशित

ISSN 2581-446X

वर्ष-8, अंक-6, जून-जुलाई 2025, ₹100/-

RNI. No. MPHIN/2017/73838

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

पाठकों का विश्वास
सांस्कृतिक यात्रा के 28 वर्ष पूर्ण
135 वाँ अंक...

लोक, जनजाति एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केन्द्रित विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

पेश है
एलआईसी का
जीवन
उत्सव
Plan No.: 871
UIN: 512N363V01
उत्सव
मनाने का
गारंटीड तरीका
आजीवन गारंटीड रिटर्न
के साथ
ऑनलाइन भी उपलब्ध
पूर्ण आयु जीवन बीमा एवं लाभ भुगतान के विकल्प
सीमित प्रीमियम भुगतान अवधि 5 से 16 वर्ष
प्रीमियम भुगतान अवधि के दौरान गारंटीकृत वृद्धि
नियमित आय लाभ / फ्लेक्सी आय लाभ
न्यूनतम मूल बीमा राशि 5 लाख
एक नॉन-लिंक्ड, नॉन-पार्टिसिपेटिंग, व्यक्तिगत, बचत, पूर्ण आयु जीवन बीमा योजना
LIC/P1/2023-24/13/Hin
LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA
मध्य क्षेत्र, भोपाल
हर पल आपके साथ
डाउनलोड करें एलआईसी मोबाइल ऐप LIC digital
विज़िट करें: licindia.in
कॉल सेन्टर सर्विस (022) 6827 6827
हमारा वॉट्सएप नं. 8976862090
कहिए 'Hi'
अधिक जानकारी के लिए, अपने बीमा एजेन्ट/निकटतम एलआईसी शाखा से संपर्क करें या अपने शहर का नाम 56767474 पर एसएमएस करें
हमें यहाँ फॉलो करें: LIC India Forever | IRDAI Regn No.: 512
नकली फोन कॉल्स और झूठे/धोखाधड़ी पूर्ण ऑफ़र्स से सावधान रहें. आईआरडीएआई जीवन बीमा पॉलिसियों की बिक्री, बोनस घोषित करने या प्रीमियमों के निवेश जैसी गतिविधियों में संलग्न नहीं है. ऐसे फोन कॉल प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से अनुरोध है कि वे पुलिस में इसकी शिकायत दर्ज करवाएँ. बिक्री समापन से पूर्व अधिक जानकारी या जोखिम घटकों, नियम और शर्तों के लिए बिक्री पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़े.

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+08=28) पूर्णांक-135,

वर्ष-8, अंक-6, जून-जुलाई 2025, मूल्य : ₹100/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव
❊
कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)
❊
परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. महेशचन्द्र शांडिल्य
❊
सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
❊
वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

रेखाचित्र : मनोहर काजल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
❊
सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा
❊
सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी
❊
उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति
❊
नरिन्दर कौर
प्रबंध संपादक
❊
संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
❊
अरुण तिवारी
समसामयिक
❊
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

सदस्यता सहयोग राशि:
(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त) साधारण डाक

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत)	साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत)	साधारण डाक
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)	साधारण डाक

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

डॉ. मोहन यादव
(मुख्यमंत्री म.प्र. शासन)

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

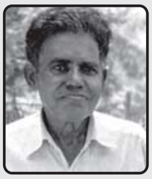
बाबूलाल दाहिया
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

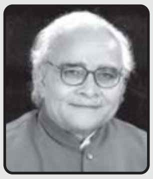
डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास

डॉ. पूरन सहगल

लक्ष्मीनारायण पयोधि

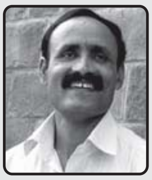
प्रेमशंकर शुक्ल

डॉ. नारायण व्यास
(डी. लिट)

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

प्रो. डॉ. सरोज गुप्ता

डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

वसन्त निरगुणे

डॉ. नुसरत मेहदी

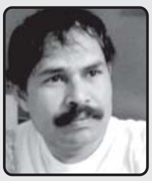
चेतन औदिच्य

डॉ. महेश चन्द्र शांडिल्य

डॉ. भगवानदास पटेल

डॉ. योग्यता भार्गव

डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला

डॉ. प्रकाश पतंगीवार

यामिनी कानूनगो

दामोदर अग्निहोत्री

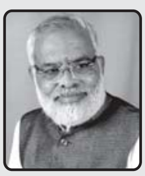
राकेश राणा

- **संपादकीय**
  भारतीय वाद्यों का अद्भुत संसार ! 5
- **पुनर्पाठ : संस्कृति**
  सत्य का सूरज छिपा है अज्ञान की धुंध में / डॉ. कपिल तिवारी 8
- **समय की धरोहर....**
  परम्परा में स्वर निष्पादक वाद्य / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 9
- **संगीत- चिंतन**
  संगीत वाद्यों का अद्भुत संसार / डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग' 18
- **जनजातीय संस्कृति**
  गोण्ड जनजाति समूह के वाद्य / लक्ष्मीनारायण पयोधि 26
- **आलेख**
  भारत में वाद्य संगीत की परम्परा / प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास 34
  लोक संगीत / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 37
  वाद्यों का उद्भव-विकास, स्वभाव एवं बर्ताव / डॉ. पूरन सहगल 38
  बुंदेलखंड के लोक वाद्य / प्रो. डॉ. सरोज गुप्ता 48
  आदि वाद्य / वसन्त निरगुणे 52
  वीणा : पुरातत्त्वीय तथ्य / डॉ. नारायण व्यास (डी. लिट) 56
  उत्तर गुजरात के आदिवासी समाज का... / डॉ. भगवानदास पटेल 58
  जनजातीय लोक संगीत में वाद्य / डॉ. महेश चन्द्र शांडिल्य 61
  लोकमाता देवी अहिल्याबाईः सुशासन और .../ डॉ. मोहन यादव 64
  मानवता के लिए अमूल्य उपहार है 'योग' / डॉ. मोहन यादव 66
  जल संरक्षण का जन आंदोलन बना जल गंगा ... / डॉ. मोहन यादव 67
  लोक वाद्य 'रूँजा' में चैतन्य ब्रह्म / डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला 69
  लोकवाद्यों के विलुप्त होने का खतरा / डॉ. प्रकाश पतंगीवार 72
  लोकवाद्य बीन और कालबेलियों की संस्कृति / डॉ. योग्यता भार्गव 73
  भारतीय वाद्य वृंद - जब स्वर एकता में बदलते हैं / यामिनी कानूनगो 75
- **संग्रहालय**
  सत्यम कला एवं संस्कृति संग्रहालय सागर (म.प्र.) / दामोदर अग्निहोत्री 76
  हमारे कृषि आश्रित समाज के गांव के रहवासी और.../ बाबूलाल दाहिया 78
  संगीत दिवस के अवसर पर जी. आर. घोड़ेश्वर .../ जी आर घोड़ेश्वर 80
- **साक्षात्कार**
  सृजन की नई उड़ानः सोपोरी बाज / प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग 81
- **अद्वैत-विमर्श**
  अनुभव और अनुभूति आदि शंकराचार्य की अद्वैत दृष्टि में/ डॉ. नुसरत मेहदी 84
- **कला-अक्ष**
  युवा कलाकारों की प्रदर्शनी-जहां रंग ही नहीं रिसते .../ चेतन औदिच्य 85
- **नन्हीं कलम...**
  वाद्यों के प्रतिरूप कलाकारः राहुल श्रीवास / अंतरा श्रीवास 87
  मैंने जीवन संगीत बहुत काम सीखा पर संगीत से .../ हरिन श्रीवास 88
  तबला वादक राहुल श्रीवास / सार्थक श्रीवास 89
- **आयोजनः सदानीरा**
  श्री जानकी बैंड : संगीत, संस्कृति और महिला सशक्तिकरण का संगम 90
- **कविता**
  प्रेमशंकर शुक्ल की वाद्य कविताएं / प्रेमशंकर शुक्ल 91
- **पुस्तक समीक्षा**
  क्रूरतम चालाकियों से निश्छल जीवन के सतत../ लक्ष्मीनारायण पयोधि 92
- **कला समय : नवांकुर...**
  बेटी जो चाहे कर सकती दुनिया मुट्ठी में भर सकती.../ सत्य नारायण शर्मा 95
- **समवेत एवं पत्रिका के बहाने** 96-98

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रो. सरोज गुप्ता, गूगल सौजन्य से
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार, समाचार पत्र
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखाचित्र :** मनोहर काजल
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

संपादकीय

भारतीय वाद्यों का अद्‌भुत संसार!

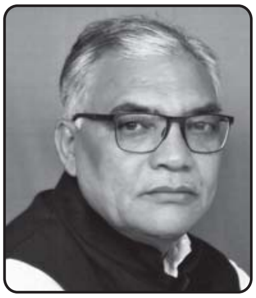

''ततं चैवावद्धं च घने सुषिरमेव च।
चतुर्विध तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।
ततं तन्त्री गतं ज्ञेयनवद्धं तु पौष्करम्।
धनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।''

सुरीला संगीत कानों को अच्छा लगता है, साथ ही इससे दिल के तार भी बज उठते हैं। मन को सुकून देने वाला संगीत दिल को भी दुरूस्त रखता है। संगीत में शरीर व आत्मा को प्रभावित करने की पूर्ण शक्ति होती है।'' संगीत रत्नाकर में कहा गया है-'' गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते'' अर्थात-गीत वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहते हैं। भारत में संगीत की मुख्य दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं- हिन्दुस्तानी या उत्तरी संगीत पद्धति और कर्नाटिक या दक्षिणी संगीत-पद्धति। तमिलनाडु, केरल और तेलुगु जैसे दाक्षिणात्य क्षेत्र को छोड़कर बाकी भारत में प्रचलित संगीत-पद्धति हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति कहलाती है। दोनों पद्धतियों में स्वर, भाषा, राग, ताल, शैली तथा नृत्यों कह दृष्टि से भिन्नता है। संगीत विद्या का ज्ञाता; गायक वादक या नर्तक को संगीतज्ञ कहा गया है। प्राचीन काल में पद्मभू ब्रह्मा ने चारों वेदों का सार ग्रहण करके पाँचवे वेद 'संगीत' की रचना की। ऋग्वेद से पाठ्य, समवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसों की उत्पत्ति हुई। संगीत-माहात्म्य में कहा गया है- स्वर ग्राम, मूर्च्छना, तान तथा श्रुतियों से युक्त यह ध्वनि सुक्ष्म-से-सुक्ष्म तथा व्यापक से भी अधिक व्यापक है।'महाभारत' में शौनक ने कहा है- जो विप्र स्वभावतः ही गायन-नर्तन करता है, उसे भगवान सहज में ही प्यार करने लगते हैं।''पंचम सार संहिता'' में कहा है- रमणीय संगीत से जिसका चित्त प्रसन्न नहीं होता, ऐसा भाग्य-हीन प्राणी मनुष्य होकर भी बैल है। श्री कृष्ण ने संगीत-विद्या तथा वंशी की शिक्षा ली। शम्भू तथा नारद ने गीत गाया। अन्य समस्त, योगिजन भी संगीत-योग में तत्पर रहे। अतः हम सबको भी प्रयत्न पूर्वक संगीत का अभ्यास करना चाहिए।

> **संगीत का मानव-जीवन के साथ केवल भावात्मक, मनोरंजनात्मक एवं आध्यात्मिक रूप तक ही संबंध सीमित नहीं रहा बल्कि चिकित्सा क्षेत्र में भी इसका हस्ताक्षेप अतुलनीय रहा है। संगीत में एक ऐसा चामत्कारिक शक्ति है, जो मानव-जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करती है इसके-चिकित्सकीय प्रभाव ने तो मानव का जीवन ही बदल दिया है आज संगीत-चिकित्सा भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में एक उदीयमान विषय बन चुका है।**

वाद्य 'वद्' धातु में णिच् तथा यत प्रत्यय लगकर 'वाद्य' शब्द बना इसका अर्थ आतोद्य बाजा या वादित्र है। इसके चार भेद हैं-तत, अवनद्ध घन तथा सुषिर। वैदिक काल में चारों प्रकार (वर्ग) के वाद्य प्रचुर मात्रा में थे, पर वहाँ उनका वर्गीकरण नहीं हो पाया था। ऐतरेय आरण्यक में मानुषी-वीणा की तुलना देवी-वीणा से की गई है।'रामायण' तथा 'महाभारत' में वादित्र के अन्तर्गत ही चारों प्रकार के वाद्यों का समावेश मिलता है। स्पष्ट विभाजन का कथन नहीं मिलता। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में बृंद - वादन के लिए ''तूर्य'' शब्द का प्रयोग किया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 19 वें अध्याय में तत, सुषिर घन और अवनद्ध रूप में वाद्यों का वर्गीकरण किया गया है- 'चतुर्विधम् आतोद्यम। तंत सुषिरं धनमवनद्धं च।' इसके अनन्तर भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र ग्रन्थ में चारों वर्गों का ही नहीं उनके गुण और लक्षणों का कथन भी किया है। संगीत संबंधी। वाद्यों को चार श्रेणियों में बाँटा गया है तत्, वाघ सुषिर वाद्य अवनद्ध वाघ और धन वाद्य तत वाद्यों की श्रेणी में एकतारा, सितार, तानपुरा, सरोद, वाइलिन, इसराज और वीणा जैसे वाद्य आते हैं। सुषिर वाद्यों की श्रेणी में हवा या फूँक से बजाए जाने वाले वाद्य आते हैं, जैसे अलगोजा, बीन , बाँसुरी, शहनाई, हारमोनियम, तुरही शंख आदि। अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में उन वाद्यों को गिना जाता है, जिनके ऊपर चमड़ा मढ़ा होता है, जैसे ढोल, नक्कारा या नगाड़ा, तबला, पखावज, ढोलक, चंग और खंजरी आदि अवनद्ध वाद्य संगीत में ताल देने के लिए प्रयुक्त किए जाते है। घन वाद्यों की श्रेणी में आधात से बजने वाले वाद्य आते है, जैसे- झाँझ, मजीरा, घंटा, डमरू, ताशा, कठताल या करताल जलतरंग आदि। माना जाता है कि सृष्टि का आरम्भ ॐ की ध्वनि से हुआ है ध्वनियों की लयबद्ध सुरीली प्रस्तुति संगीत है। संगीत केवल इंसानों को ही नसीब हुआ है। मददगार बने वाद्य। देवताओं ने भी वाद्यों को अपनाया है इनके द्वारा देवताओं ने संसार को अलौकिक संगीत प्रदान किया है। अतः वाद्यों की उत्पत्ति एवं रचना देवताओं ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु की है। भगवान शंकर का डमरू, श्री कृष्ण की बाँसुरी, ब्रह्मा की करताल, सरस्वती की वीणा, इन्द्र का वेणु, विष्णु का मृदंग, नारद का तम्बूरा आदि। प्राकृतिक एवं दैविक वाद्य ही लोक वाद्य हैं जो आज भी मानव जीवन में उसी नाम से प्रचलित हैं, लोक

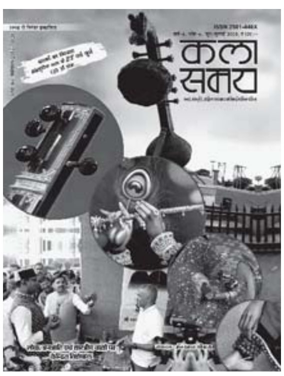

वाद्यों के मूल में प्रकृति प्रदत्त ध्वनि व्याप्त है। कबीर ने लोक वाद्यों से निकली झंकार का अनहदनाद की संज्ञा दी है। लोक वाद्य सहज स्वच्छन्द एवं लयगर्भित होते हैं। लोक वाद्यों के बुनियादी स्वर की ओर देखें तो ज्ञात होता है कि इन लोक वाद्यों में प्रकृति की अन्तर्गूंज इसके कण-कण में व्याप्त है। यथा-समुद्र का गंभीर स्वर बादलों की गर्जना, शिशु का रूदन, पक्षियों का कलरव, बिजली, की कड़क, पशुओं की चिंघाड़ भौरों का गुंजन, मेठकों की टर्र, चक्की की धरर-धरर बैलों की घंटियों का निनाद गाड़ी की चरर चूँ, चूड़ियों की खनक, कोयल कूक, मंदिरों के शंख एवं घंटा ध्वनियाँ धोबी की फट-फट, नदियों का निनाद आदि यही सरल एवं स्वाभाविक स्वर लोक वाद्यों की आत्मा है। लोक वाद्य लोक संगीत एवं नृत्य के प्राण हैं, उन की जीवन शक्ति है। लोक नर्तकों के पद संचालन गति, गीतों के बोल तथा समयावधि आदि का निमंत्रण लोक वाद्य ही करते हैं। आदिवासी संसार में नृत्य और संगीत उनकी अनूठी किन्तु सहज जीवन शैली के अभिन्न अंग हैं। दिन भर के श्रम की थकान को आनंद में संतरित करने का उनका अपना नियमित विधान है। गोंड जब करमा, सैला, भड़ौनी, बिरहा, कहरवा तथा सुआ आदि नृत्य में तल्लीन होते हैं तो थकान और दुख अपना अस्तित्व भूल कर उनके आनंदोत्सव में शामिल हो जाते हैं। माँदल, टिमकी, सिंगबाजा नगाड़ा, मंजीरा, खरताल, ठिसकी, चुटकी, झाँझ, बाँसुरी, शहनाई, अलगोझा, तमूरा, चिकारा और किंदरी आदि वाद्यों के साथ ढोल, ढोलक, मृदंग, डफ बाँसुरी भूगडू, पवई चिटकोरा काँसे की थाली, के साथ इनवाद्यों की धुन से आदिवासी नर्तकों के मन में उत्साह पाँवों में थिरकन तथा कंठ में नाद का संचार यें जनजातियाँ करती हैं।

शास्त्रीय वाद्यों में जिन वाद्यों पर शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार संगीत प्रस्तुत किया जाता है, वे सभी वाद्य शास्त्रीय वाद्य कहलाने लगते हैं। शास्त्रीय वाद्यों के अन्तर्गत कुछ प्रमुख वाद्य इस प्रकार है सारंगी, सितार इसराज या दिलरूबा, वाइलिन, तानपूरा या तंबूरा, गिटार, वीणा, गोटुवाधम ये तत वाद्यों के श्रेणी में आते हैं बाँसुरी शहनाई क्लैरीनैट नागस्वरम् , हारमोनियम ये सुषिर वाद्यों की श्रेणी में आते हैं, तबला मृदंग या पखावज ये अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में आते हैं, जलतरंग, पियानों, संतूर, धंटा, तरंग, घुँघरू ये घन वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। इनके आतिरिक्त आजकल सिंथेसाइजर जैसे- विदेशी इलैक्ट्रॉनिक वाद्यों के अनेक रूप प्रचलित हैं, जिनका प्रयोग सभी प्रकार के संगीत में किया जाता है। शास्त्रीय संगीत के निबद्ध संगीत भी कहते हैं। मतंग के अनुसार निबद्ध वह संगीत है जो आलाप आदि नियमों से नियंत्रित रहता है। इसे मार्ग 'संगीत' भी कहते हैं जो अत्यन्त पवित्र समझा जाता है। मनुष्य का सबसे आदिम आवेग छन्द या ताल-बोध होता है। इस आवेग को वह प्रकृति जगत से अनुभव करता है इसी मूल अनुभव एवं उसके बहुमुखी अभिव्यक्ति से ही उसने धीरे-धीरे परिवर्तन के द्वारा एक-एक विभिन्न प्रकार के वाद्यों का अविष्कार किया। भारत वर्ष में आदिकाल से भारतीय वाद्यों का प्रमाण मिलता है। अनेक वाद्य भिन्न-भिन्न अवसरों पर उपयोग में लाये जाते थे, जैसे पूजा में घोषणा व एलान में, जन्म व मृत्यु के समय रणक्षेत्र में और शादी-विवाह तथा राजदरबार आदि में। पूजा में शंख, डमरू, घंटा, धड़ियाल, नगाड़ा आदि, राजसभा में पखावज, वीणा, सारंगी, तबला, सितार आदि नाटक व रासलीला में वाद्य वृन्द आदि रणक्षेत्र में शंख, तुरही, रमतुला, जंगी तबला, ढोल नगाड़ा आदि, शादी-विवाह में ढोलक, मंजीरा, शहनाई, नगाड़ा, ढोल-ताशा, नरसिंहा, रमतुला कंडला आदि तथा मृत्यु में राम ध्वनि के साथ खंजड़ी करताल झाँझ मंजीरा आदि का उपयोग होता था। भारत में अंग्रेजी राज्य काल के ही बैण्ड वाद्य उपयोग में आये हैं और तभी से भारत में अंग्रेजी बैण्ड वाद्यों ने महत्वपूर्व स्थान प्राप्त किया है; जैसे ट्रम्पेट, बिगुल, संकट के समय पर बजाकर फौज को इत्तला व एलान करना और लड़ाई समाप्त होने पर बिगुल बजाना तथा राष्ट्रध्वज की सलामी आदि के समय पर बजाना। फौज में परेड के समय ड्रम साइडड्रम, बैक पाइप तथा अन्य सामूहिक ब्रासबेण्ड बाजों का जत्था बनाकर देशी व विदेशी धुन समय-समय पर कान्सर्ट अथवा बैण्ड पार्टी में बजाने के कारण अनेक प्रकार के बैण्ड वाद्यों का उपयोग किया जाता है।

मैहर बैण्ड की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शास्त्रीय रूप के रागों का प्रयोग किया गया है और लगभग सभी रचनाओं में राग-नियमों को ध्यान में रखा गया है। बाबा अलाउद्दीन खाँ द्वारा कई अनाथ बच्चों को लेकर एक बैण्ड की स्थापना की जिसका नाम ''मैहर बैण्ड'' मैहर वाद्य वृंद की स्थापना 1918 में प्रसिद्ध संगीत मनीषी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने की थी। उन दिनों मैहर एक छोटी सी रियासत थी और यहाँ के राजा श्री बृजनाथ सिंह जूदेव संगीत के शौकीन थे। उन्होंने बाबा को अपना गुरु ही नहीं बनाया बल्कि मैहर की माँ शारदा देवी की पूजा के लिए उन्हें मैहर का वासी बना लिया। मैहर बैंड स्थापित करने की प्रेरणा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को यहाँ के राजा से ही मिली। इस बैण्ड से नये-नये संगीतकार जुड़ते चले आए है, बिछुड़ते चले गए हैं, बाबा के बैण्ड दल में सितार, इसराज, सरोद, वॉयोलिन, क्लेरनेट, बाँसुरी, चेलो, सितार बेन्जों नलतरंग हारमोनियम और तबला आदि वाद्य हैं। इन वाद्यों के लिए उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अनेक रागों पर आधारित करीब 150 रचनाएँ तैयार की थीं जिसका नोटेशन पहले तो नहीं था पर अब मैहर बैण्ड के कलाकारों ने उसे तैयार कर लिया है। यह बैण्ड बाबा के समय में और आज भी पूरे देश में सम्मानित है। वे कहा करते थे कि ऐसा शास्त्रीय आर्केस्ट्रा पूरी पृथ्वी पर नहीं है। बाबा के शिष्य पंडित रविशंकर जैसे प्रयोग धर्मी कलाकार को क्या सदियाँ भी भुला पायेंगी? पंडित जी कहते हैं- ''हाँ मैं इस जीवन में कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि सन्तुष्टि मुझे समाप्त कर देगी.... मैं निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहता हूँ स्वर, सितार और संगीत के साथ नए-नए प्रयोग करते हुए। 4 नवम्बर 2012 को कैलिफोर्निया में पंडित जी ने बेटी अनुष्का के साथ सितार पर जीवन की भैरवी बजाकर मानो जीवन सभा विराम की घोषणा कर दी...... अन्ततः 12 दिसम्बर 2012 को सितार के तार पर तैरती वह जादुई उंगलियाँ ठहर गई... नौ दशक लम्बी सभा....सम्पूर्ण संसार में विस्तारित सभा.... ना भुलाई जा सकने वाली सभा.... वह सभा जिसके मर्म में थी सितार सम्राट की स्वीकारोस्ति'' .... संगीत सिर्फ संगीत होता है उसका अच्छा या बुरा होना असल में व्यक्ति अपनी आयु, अनुभव, ज्ञान और पृष्ठ भूमि के आधार पर तय करता है। उसके कई रूप हैं गायन, वादन,

भारतीय, पाश्चात्य.... लेकिन मेरे लिए संगीत आत्मा की आवाज है, आत्मधुन है। जीवन के हर अनुभव को संगीत की दृष्टि से देखना मेरी कमजोरी रही है.... जब मैं सितार के साथ होता हूँ तब मैं अपने आप के साथ भी नहीं होता.... उस समय मैहर राज्य का एक मिलिट्री बैण्ड भी था जिसके गन्धर्व उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब थे। सेना और संगीत में एक सम्बन्ध है। युद्ध संघर्ष, राष्ट्रीय उथल-पुथल, अन्तरराष्ट्रीय आक्रमण सभी को आरम्भ और उत्साहित करने के लिए कम-से-कम ढोल और बिगुलों के संगीत का सहारा तो लिया ही जाता है। सैनिकों को पुकारने और उन्हें उत्साहित करने के लिए संगीत का प्रयोग प्रायः सभी स्थानों पर किया जाता है युद्ध की धुनें जब वाद्यों पर तरंगित हो उठती हैं तो सुसज्जित सैनिकों की भुजाएँ फड़कने लगती हैं। आजकल भारतीय सेना नवीन परम्पराओं को जन्म दे रहीं है। जो प्राचीन भारतीय रण-क्षेत्र की संस्कृति को भी अपने में संजोए हुए है।

संगीत का मानव-जीवन के साथ केवल भावात्मक, मनोरंजनात्मक एवं आध्यात्मिक रूप तक ही संबंध सीमित नहीं रहा बल्कि चिकित्सा क्षेत्र में भी इसका हस्ताक्षेप अतुलनीय रहा है। संगीत में एक ऐसा चामत्कारिक शक्ति है, जो मानव-जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करती है इसके-चिकित्सकीय प्रभाव ने तो मानव का जीवन ही बदल दिया है आज संगीत-चिकित्सा भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में एक उदीयमान विषय बन चुका है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी संगीत-चिकित्सा द्वारा जटिल बीमारियों का इलाज सम्भव हो रहा है। गाँवों में तान छेड़ने वाले पारंपरिक वाद्यों के विलुप्त होने की वजह आधुनिक वाद्यों का आना भी है। जनजातीय गाँवों में सुरीलीतान की जगह अब अंग्रेजी गाने गूँजते हैं। पहले सामूहिक रूप से चौपाल या अखाड़ा में बैठकर गीत गाते थे, लेकिन अब स्टूडियों में गाना रिकोर्ड होकर बाजार में गाँवों में पहुंचता है। सीडी और मोबाइल संस्कृति ने श्रम आधारित संस्कृति को खत्म कर दिया है। पहाड़ी नाटियों में लोकनायक पारंपरिक वाद्यों को ताक पर रखकर आक्टोपैड, की पैड, कांगो को अहमियत दे रहे हैं तो युवा गिटार, की-बोर्ड और ड्रम की तरफ ज्यादा मुखातिब हो रहे हैं। बालीवुड में तो बड़े-बड़े ऑकेस्ट्रा समूहों की जगह कंप्यूटर की बोर्ड और सिंथेसाइजर जैसी मशीनों ने लेली है। किसी जमाने में धुन को कंपोज करने के लिए जरूरी हारमोनियम की जगह की-बोर्ड ने ले ली है। इसी की-बोर्ड पर संतूर, सारंगी, पंजाबी ढोल तथा पखावज जैसे खालिस भारतीय वाद्यों और कांगों की धुने भी निकाली जा सकती हैं। मैंडोलिन की धुन को की-बोर्ड की कुछ की-कां बिनेशन की मदद से बजाया जा सकता है। भारी-भरकम पियानों के विकल्प के तोरे पर छोटे इलेक्ट्रोनिक पियानों तानपुरे की जगह रेडियोनुमा इलेक्ट्रानिक पियानों तानपुरे और सितार की जगह छोटे से कंप्यूटर सॉफ्टवेयर 'वीएसटी' ने लेली है। इसी वीएसटी सॉफ्टवेयर के जरिए डिजिटल फ्लूट का इस्तेमाल भी किया जा सकता है जो बाँसुरी का काम करती है। तबले का विकल्प तबला या ताल मशीन आ गई है जिसमें सारे ताल मौजूद है। ऐसी स्थिति में लोक गायन के अनुरूप लोगों ने अलग-अलग वाद्यों का निर्माण किया। इस तरह अलग-अलग इलाके में अलग-अलग वाद्य बने। पर छीजती लोक संस्कृति का नतीजा यह हुआ कि अब बहुत सारे लोकवाद्य या तो गायब हो चुके है या लुप्त होने की कगार पर हैं। उन्हें न तो अब बजाने वाला बचा है और न ही कोई सीखने वाला। इसकी बड़ी वजह है पाश्चात्य वाद्यों, खासकर बिली से चलने वाले कंप्यूटरीकृत वाद्यों का चलन बढ़ना। इस तरह के एक ही वाद्य से कई वाद्यों की आवाज निकाली जा सकती है। लोकवाद्यों की परम्परा और उनके खत्म होने से कलाकारों ने पारम्परिक वाद्यों को बजाना छोड़ दिया है। ऐसी स्थिति में भारत सरकार संस्कृति मंत्रालय तथा प्रत्येक राज्यों के संस्कृति विभागों को हमारे पारंपरिक लोक वाद्यों तथा इनके बजाने वाले कलाकारों की ओर आवश्यक प्रभावी पहल करना होगी। जिससे इन जीवंत वाद्यों और उनके बजाने वालों का जीवन-यापन के साथ-साथ हमारी इस लोक वाद्यों की पावन संस्कृति को बचाया जा सके ।

जिन लोक वाद्यों को शास्त्रीयता की छत मिली वे गुम होने से बच गये उनमें सर्व प्रथम उस्ताद बिस्मिल्ला खान ने शहनाई को शादी समारोह से निकालकर गुणियों की महफिलों में जगह दिलाई तो सारंगी को साबरी खान ने वही सम्मान दिलाया और श्रीकृष्ण की बाँसुरी की तान को हरिप्रसाद चौरसिया ने आगे बढ़ाया।

रूद्रवीणा भी गुमनामी के कोने में जा खड़ी हुई होती अगर मोहिउद्दीन डागर और उनके बेटे बहाउद्दीन डागर ने अपने हाथों में न लिया होता। इसराज या दिलरूबा को बचाने की कोशिश दिल्ली के अलाउद्दीन खान ने की लेकिन उनके साथ ही इस साज का जीवन भी खत्म हो गया। जाकिर हुसैन ने तबले को जो ऊँचाई दी शायद कोई यह पहचान स्थिर रख पायेगा....।

'कला समय' का यह भाग-एक लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केंद्रित विशेषांक के सभी सम्माननीय विद्वान लेखकों के प्रति हम हृदय से आभारी हैं, साथ ही उन संग्रहालयों के भी हम आभारी है जिन्होंने इस विशेषांक हेतु अपने आलेख और संग्रहालय की महत्वपूर्ण सामग्री हमें समय सीमा में उपलब्ध कराई हम उनके प्रति भी कृतज्ञ है। हम आभारी है उन पत्र-पत्रिकाओं, संस्थानों के जिनकी हमने जनहित में संदर्भ सामग्री का साभार उपयोग किया है। विशेष रूप से हम आभारी है। पद्मश्री सम्मान से सम्मानीत डॉ. कपिल तिवारी जी के जिन्होंने अपने आलेख जो दैनिक समाचार पत्र दैनिक भास्कर में पिछले दिनों प्रकाशित हुए थे उनकी स्वीकृति पर हम साभार रूप में श्रृंखलाबद्ध उन सभी आलेखों का 'संस्कृति' स्तंभ के तहत पुनर्पाठ के रूप में पाठकों के हितार्थ इसी अंक से प्रकाशित कर रहे हैं। डॉ. तिवारी जी द्वारा समय-समय पर लिखे लेख भारतीय ज्ञान परम्परा में महत्वपूर्ण आलेख हैं।

अगला अंक 'कला समय' का लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय नृत्यों पर केंद्रित होगा। कृपया इस महत्वपूर्ण विशेषांक हेतु भी विद्वानों विषय विशेषज्ञों से अनुरोध है अपने आलेख अवश्य भेंजे।

हमेशा की तरह आपके सुझाव, मार्गदर्शन और प्रतिक्रियाओं की इमें प्रतिक्षा रहेगी।

गुरू पूर्णिमा पर्व की हार्दिक शुभकामनाएं।

शुभमस्तु!

- भँवरलाल श्रीवास

सत्य का सूरज छिपा है अज्ञान की धुंध में

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

पौराणिक आख्यानों के कई रोचक पहलुओं को पाठकों तक पहुचाने के लिए पद्मश्री सम्मान से विभूषित डॉ. कपिल तिवारी जी के भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित आलेख पुनर्पाठ के रूप में साभार प्रस्तुत है।

– संपादक

पौराणिक आख्यानों को लेकर मायथोलॉजी शब्द का इस्तेमाल अंग्रेजी में किया जाता है। यह गलत है। मायथोलॉजी कहने से हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति की सच्ची घटनाएं भी किस्से कहानियों या किवदंतियों-सी प्रतीत होती है, जबकि ऐसा नहीं है। भारत के सत्य का सूरज अज्ञान की धुंध के पीछे चमचमा रहा है।

एक देश में क्रांति के समय क्रांतिकारी एक किले में पहुंचे, जिसे सम्राट ने जेल में तब्दील कर दिया था। उन्होंने सारे कैदियों को मुक्त कर दिया। कहा कि आप जा सकते हैं। अब आप स्वतंत्र हैं। वे बीस-तीस सालों से अंधेरी कोठरियों में हथकड़ियों-बेड़ियों में जकड़कर रखे गए थे। वे बाहर आएं। सूरज की रोशनी में आंखें चौंधिया गईं। क्रांतिकारी जेल पर काबिज हो गए। कैदी चले गए। मगर शाम होते-होते कुछ कैदी लौट आए। क्रांतिकारी हैरत में पड़ गए। पूछा तो कैदियों ने कोठरियों में लौटने की इच्छा जताई। उन्होंने कहा-अब बाहर से हमारा संपर्क टूट चुका है। हम बेचैन हैं। हमें भीतर भेजो। उन्हें कोठरियों में लौटाया गया। देर रात जब क्रांतिकारी उन कोठरियों के पास से गुजरे तो देखकर कांप गए कि उन कैदियों ने कटी हुई हथकड़ी और बेड़ी भी लपेट रखी हैं। वे गहरी नींद में थे। उन्हें जगाया गया। वे बोले-हम-इतने वजन के बिना सो नहीं सकते। तीस साल हमारे ऐसे ही गुजरे हैं।

यह सच्ची घटना है। इस कॉलम को शुरू करते हुए अचानक ध्यान में आ गई। भारत के बीते एक हजार साल भयावह गुलामी में गुजरे हैं। हम कहने को आजाद भी हैं। मगर गुलामी के लंबे दौर में हमारी देखने की आदत बिल्कुल बदल गई। हजारों साल पुरानी महान सभ्यता, संस्कृति और समृद्ध परंपराओं को देखना वैसा ही है, जैसा उन कैदियों को खुले आसमान में चमकते सूरज को देखकर लगा होगा। वे यकीन ही नहीं कर पा रहे थे। हम सुल्तानों बादशाहों के बर्बर दौर से मुक्त हुए भी नहीं थे कि अंग्रेज आ गए। गुलामी का यह दौर और ज्यादा घातक सिद्ध हुआ। उन्होंने साजिश रचकर हमारी दृष्टि बदल दी। ऐसा उन्होंने शिक्षा पद्धति के जरिये किया। हमें अपनी सभ्यता-संस्कृति की सच्ची घटनाएं और पात्र किस्से कहानियों जैसे लगने लगे। मिथक। उनके नजरिये से हमने मायथोलॉजी कहा। यह एक गलत शब्द है। जब हम मायथोलॉजी कहते हैं तो हम दूसरों के दिए चश्मे से खुद को देखने की मूर्खतापूर्ण कोशिश करते हैं। भारत की हजारों साल पुरानी समृद्ध संस्कृति की हर चीज के बड़े गहरे अर्थ हैं। वह लोक समाज में इतनी रची बसी है कि बर्बर हमलावरों की सदियों की कोशिशें भी उसे मिटा नहीं सकीं। हमलावरों ने लगातार हमारे मंदिर तोड़े, हमारे सांस्कृतिक प्रतीक नष्ट किए, पहचान को मिटाने की कोशिशें कीं। मगर विध्वंस की यह कथा सतह पर ही सरकती रही, जबकि भारतीय मनीषा ने इसे एक ऐसे वृक्ष की तरह सींचकर बड़ा किया था, जिसकी जड़ें गहराई में थीं। इसलिए जो कुछ नष्ट हुआ, वह शाखाओं-पत्तियों को तोड़ने जैसा था। कुछ था, जो नष्ट नहीं किया जा सका।

मेरा मानना है कि भारत का कुछ भी नष्ट नहीं हुआ है। हमें अपनी वास्तविक दृष्टि भर चाहिए और हम पाएंगे कि वह सब कुछ वैसा ही सुरक्षित है। हमारी लोक परंपरा में इसके जीवंत साक्ष्य देश के कोने-कोने में मौजूद हैं। एक समृद्ध संस्कृति, जिस पर हमें गौरव होना चाहिए। यह सच है कि वह मिलिटेंसी, जिसने भारत को सदियों रौंदा और हमारे मानबिंदुओं को नष्ट-भ्रष्ट करने की कोशिशें कीं, वह इतिहास में ही खत्म नहीं हो गई। वह पाशविक - परंपरा आज भी नए कीर्तिमान बना रही है। मेरे ख्याल से भारत के पास आज - भी दुनिया को देने के लिए बहुत कुछ है। - मायथोलॉजी के चश्मे से अपनी ही विरासत - को मिथ मानने वालों को देखने की सही आदत की जरूरत है। एक बार हम अपनी आंखों - से और अपनी समझ से अपनी संस्कृति के - चमचमाते सूरज को देखने का साहस जुटा - लें तो उस धुंध के पार देख पाएंगे, जिसे हम - सच मान बैठे हैं और धुंध के पार जो सत्य है, उसे मिथक। इस कॉलम में आगे हम धुंध के - पार देखेंगे। एक बार जब हम पुरखों की अपनी आंख से परंपरा देखते हैं, तो वह सनातन का समकाल हो जाती है। जब दूसरों की आंख से परंपरा को देखते हैं, तो अजनबी बनकर।

लेखक : म.प्र. आदिवासी एवं लोक कला आकादमी के पूर्व निदेशक हैं।

साभार : दैनिक भास्कर भोपाल (म.प्र.)

फैक्ट : ऋग्वेद काल में एक हजार से ज्यादा प्रार्थनाएं हैं, जिन्हें सूक्त कहा गया है। सूक्त का मतलब, अच्छी तरह से बोला गया।

परम्परा में स्वर निष्पादक वाद्य

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

समस्त वाद्यों से निकलने वाले प्राणीजगत के स्वर की समानता को बहुत पहले ही खोज लिया था। बहुत संभव है कि प्रागैतिहासिक काल में; जबकि मानव गुहावासी था। जब वह आखेट पर निकलता रहा होगा, तब वह वाद्यों का सहारा लेता रहा होगा और उनके स्वर का प्रयोग शिकार को आकर्षित करने के लिए करता रहा होगा। जैसा कि साँपों को लुभाने के लिए आज भी बीन का वादन किया जाता है, जबकि अब यह जान लिया गया है कि साँपों के कान ही नहीं होते। हालाँकि इसके मूल में आखेट की सफलता के बाद अनुरंजन भी रहा ही होगा।

'नारदपुराण' (पूर्व. 50, 61-62) और 'अपराजितपृच्छा' जैसे ग्रंथों का मत है कि 'षड्ज' स्वर की ध्वनि मयूर के जैसी होती है। 'ऋषभ' की ध्वनि गाय के रम्भाने के जैसी होती है। 'गान्धार' की ध्वनि बकरी के मिमियाने जैसी होती है। 'मध्यम' की ध्वनि मादा क्रौञ्च पक्षी जैसी होती है। 'पञ्चम' की ध्वनि साधारण समय में पुष्पों पर बैठी कोयल की-सी होती है। 'धैवत' की ध्वनि घोड़ों के हिनहिनाने जैसी होती है। 'निषाद' की ध्वनि हाथी की चिङ्घाडने् जैसी होती है। कण्ठ से षड्ज की ध्वनि का उच्चारण होता है। शीर्ष से ऋषभ, नासिका से गान्धार, उर यानी हृदय से मध्यम का उच्चारण होता है। हृदय, शीर्ष व कण्ठ से पञ्चम तथा तालू से धैवत का उद्भव होता है। निषाद सब तरह से जाना जाता है। इतने स्वरों के स्थान कहे गए हैं। इस प्रकार का मत नारदपुराणकार सहित बृहद्देशीकार का भी रहा है। (बृहद्देशी, दे. प्र. 29, 81-83; नारद पुराण, पूर्व 50, 63-65)

वाद्य ने मानव को उल्लास दिया या उल्लसित होकर मानव ने वाद्य का प्रयोग किया, कहा नहीं जा सकता। मगर इतना तो निश्चित है कि मानव वाद्यों का सर्जक, चिरसखा और सफल प्रयोगधर्मा रहा है। मानव की क्रियाशीलता, कल्पना और हाथों के प्रयोग की कुशलता इसी में रही है कि उसने इसे साध लिया। बस यही वाद्य यानी बाजे के साथ भी समझा जा सकता है कि- बज गया तो बाजा और बिगड़ गया तो भाड़। बाजा भी तब तक ही बाजा है, जब तक वह बजता है या बजने का सामर्थ्य रखता है। वाद्य के बिना संगीत पूरा नहीं होता। शास्त्र तो कहता है-

गीतं वाद्यं नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।

प्रयोग के प्रसंग में मानव सभ्यता ने वाद्य के रूप में प्राकृतिक सामग्री का बहुधा प्रयोग किया है, क्योंकि पेड़ के पत्ते से बने पर्णवाद्य हों या छाल अथवा बाँस का भुंगल या फिर काष्ठ के पोले-खोखले तने या शाखा का अंश, उसका प्रयोग वाद्य के रूप में करने का विचार आधुनिक मानव का नया नहीं है। सैंधव सभ्यता स्थलों के उत्खनन में मिट्टी से बनी ऐसे चिड़ियाएँ मिली हैं, जिनको फूँक मारने पर सीटी की तरह ध्वनि आती है। इसी प्रकार पुटाकार बनाई गई रचनाओं में रेत और कंकड़ आदि भरकर बजाने के लिए प्रयोग किया गया है। संगीत-शास्त्र की मान्यता है कि ताल से गीत सुशोभित होता है। ताल वादित्र या वाद्य से उत्पन्न होता है। इसी कारण वह महत्वपूर्ण है और उसके चार प्रकार होते हैं। जैसा कि 'संगीत दामोदर' में कहा गया है-

तालेन राजते गीतं तालो वादित्रसम्भवः।
गरीयस्तेन वादित्रं तच्चतुर्विधमुच्यते॥

लिपि के स्वरूपकार वाद्य

वाद्यों का जैसा रूप और जैसा स्वर, वैसा ही स्वर साकार होकर लिपि में कायाकार हुआ है, यह एक पुरानी मान्यता है-

बाजे बजाहिं, हदहिं अनहदहिं।
रदई, गदई, फदई, नदई, नचहिं।

अ सों अट्टम, क से कट्, ख सों खट्, ग सों गट्, घ सों घट्।

च सों चिंगाड़े, छ सों छकड़ी, ज सों जंजोट, झ सों झट्।
ट सों टंकार, ठ सों ठ, ढ सों ढाल, ड सों डम्मर।
त सों तत् तंड, थ सों थई, द सों द्रूत, ध सों धानी, न सों नन्न।
प सों पंजर, फ सों फेरा, भ सों भुंगल, ब सों बक्क, भ सों भगती, म सों मन...।
य र ल व सों यति, रति, लाव, तीनूं स शरद षड् सट्।
ह सों हंस जापै, वो पावै बाजा रौ ग्यान।

मंगल-अमंगल के काल-सूचक

वैदिक मान्यताओं में वाद्यों के सृजन के मूल में कारण को ध्वनित किया गया है। ऋग्वेदोक्त शाट्यायन ब्राह्मण इस बात की पुष्टि करता है कि वीणा बजाकर भोर होने का संकेत दिया जाता था। एक कथा के अनुसार- असुरों ने कण्व मुनि को आँखें बाँधकर कालकोठरी में डाल दिया था। उनके सिद्ध होने की परीक्षा इस आधार पर ली गई कि वे बिना देखे ही यह बताएँ कि भोर हुई कि नहीं। उन्होंने अश्विन देवता के वीणा वादन से जान लिया था कि उष:काल हो गया है। बाद में उनके बताये जाने पर उन्हें कारागार से मुक्ति मिली। शंख और दुन्दुभि बजाकर युद्ध या अन्य कोई महत्वपूर्ण घोषणाएँ सुनाई जाती थीं। वाद्यों के तीव्र या मध्यम या बेसुरे बजने या बजाये जाने से मंगल-अमंगल को जान लिया जाता था। वैदिक यज्ञों में महिलाएँ मिलकर आघाटी, पिच्छोला, कर्कटिका, स्तम्बल, काण्ठ और कपिशीर्षणी जैसी वीणाओं का वादन करती थीं और यज्ञावसर आदि को उत्सव-सा रूप देती थीं।

वाद्य वृक्ष

'रामायण' के एक प्रसंग के अनुसार- ननिहाल से लौटे भरत ने जब अयोध्या के राजमहलों में प्रवेश किया, तब वीणा और मृदंग वादन न सुनकर उनको किसी अमंगल के घटिल होने का अनुमान हो गया था। शास्त्रों में लिखे आख्यानों-कथाओं में ही नहीं, लोकाख्यानों में भी वाद्यों के बहुतेरे प्रसंग मिलते हैं, जिनको पढ़-सुनकर लगता है कि वाद्यों ने अपने बोल जहाँ-तहाँ दर्ज किए हैं। 'ब्रह्माण्ड पुराण' कहता है कि द्वापर युग में वसुदेव आनकदुन्दुभि के नाम से इसलिए ख्यात थे कि उनके नाम व यश की दुन्दुभि आकाशव्यापि घोष करती थी।

चतुर्विध वाद्यों की मान्यता

वाद्यों के बनने और उनके प्रयोग में आने तक को लेकर की कई कहानियाँ हैं। कई प्रसंग पुरातनकाल से ही प्रचलन में रहे हैं। 'नाट्यशास्त्र' में वाद्यों का विभाजन चार प्रकार से किया गया है-

ततं सुषिरमानद्धं घनमित्थं चतुर्विधम्।
ततं तन्त्रीगतं वाद्यं वंशाद्यं सुषिरं तथा।
चर्मावनद्धमानद्धं घनं तालादिकं मतम्॥

यह वर्गीकरण मूलत: निर्माण के लिए प्रयुक्त होने वाली सामग्री के आधार पर है, अन्यथा वादन की दृष्टि से घर्षण-आकर्षण, खींचने-समेटने, फेंकने-उठाने आदि अनेक प्रकार से और कुंचन-विकुंचन, प्रक्षेपण-संग्रहण आदि के आधार पर भी वाद्यों की उपलब्धि होती है। आज स्वचालन के दौर में यह दायरा बढ़ गया है।

देवासुरों के वाद्य

कहा गया है कि तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर वाद्य गन्धर्वों से, अवनद्ध वाद्य राक्षसों से और घन वाद्य किन्नरों से संबंधित हैं-

ततं वाद्यन्तु देवानां गन्धर्वाणाञ्च सौषिरम्।
आनद्धं राक्षसान्तु किन्नराणां घनं विदु:॥

- संगीत दामोदर, स्तबक 4

स्वाति मुनि ने पुष्कर वाद्यों का निर्माण किया था, ऐसा 'भरत-भाष्यम' में आया है। डमरू के लिए कहा जाता है कि उसे भगवान शिव ने बनाया। शिव का पिनाकी नाम इस नाम की वीणा के धारणकर्ता होने के कारण पड़ा। रावणहत्थे के लिए मशहूर है कि उसे रावण ने तैयार किया। शिव का प्रदोषकाल में नर्तन करना बहुत ख्यातिलब्ध प्रसंग है। प्रदोषस्तोत्र से तो यह ध्वनित होता है, इस काल में ब्रह्मादि सभी देवगणों के पास जो-जो भी वाद्ययंत्र थे, वे सब उन वाद्यों को लेकर शिव के नर्तनावसर पर संगत करने कैलाश पर पहुँचे थे। इससे विदित होता है कि इन्द्र को वेणु, विष्णु को मृदंग, सरस्वती को वल्लकी नामक वीणा, रमा को ताल और भगवती को गायन प्रिय था।

कैलासशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनाकार्चितरत्नपीठे।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवा: प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे॥

वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणु दधत्पङ्कजं,
तालोन्निद्रकरी रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता।
विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवा: समन्तात्स्थिताः
सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम्॥
गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्यविद्याधरमरवराप्सरसां गणाश्च।
येऽन्ये त्रिलोकनिलया:सहभूतवर्गा:प्राप्ते प्रदोषसमये हरपायश्वसंस्था:॥

- कल्याण शिवाङ्क, 1935, पृष्ठ 279

नाम और भेद

संगीतशास्त्र में कहा गया है कि मुरज, पटह, ढक्का, बिम्ब, कोदर्पवाद्य, पणवव, घन, सरुंज, अलावल, अक्ष, त्रिवली, करठ, भेरी,

कुडुक्का, ढुडुक्का (हुडुक्का), धनस, मुरली, झल्ली, दुक्कनी, दौण्डी, शाल, डमरू, टमकि, मड्डू, कुण्डली, गंगु नाम वाले और रणावसर पर बजने वाले घट, दुंदुभि, आवज, ढुढुकी, दर्दुर, उपंग ये त्रिपुरारि शंकर के ताण्डव और रणप्रयाण करते समय बजाए जाने वाले अवनद्ध वाद्य संसार में प्रसिद्धि लिए प्रकट हुए हैं।

इसी प्रकार तत् वाद्यों में अलावनी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघु-किन्नरी, विपंची, वल्लकी, ज्येष्ठा, घोषवती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, सारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शततन्त्री, नकुलौष्ठी, चंसरी, औदुम्बरी, पिनाकी, निबन्ध, सुंकल, गदावारणहस्त, रुद्र, स्वरमण्डल, कपिलास, मधुस्यन्दी, घोण जैसे वाद्य मध्यकाल तक प्रचलन में रहे। सुषिर वाद्यों में वंश, पारी, मधुरी, तित्तिरी, शंख, काहला, तोडही, मुरली, वुक्का, शृंगिका के साथ-साथ चार स्वरनाभियाँ प्रचलन में रही हैं- शृंग, कापालिक, वंश और चर्मवंश।

घन वाद्यों में जो गीत का अनुगामी होता है, वह अनुरक्त कहा जाता है और ताल का आश्रय रखने वाला घनवाद्य विरक्त कहा जाता है। इन वाद्यों में करताल, कांस्यबल, जयघण्टा, शुक्तिका, कंथिका, पदवाद्य, पट्टातोद्य, घर्घर, झांझ, मंजीर, कर्तरी, डंगुर जैसे वाद्य प्रचलन में रहे हैं। समय-समय पर विदेशियों के वाद्य भी भारतीयों के जनजीवन का अंग बनते रहे। अबुल फजल ने अपने 'आइन-ए-अकबरी' ग्रंथ में इनके नाम लिखे हैं। फकीरूल्लाह, मिर्जा खाँ आदि ने भी इनका जिक्र किया है।

स्वर्ग से धरा पर आगमन

प्राचीन काल में इस तरह के विश्लेषणात्मक विचार की अपेक्षा प्राय: यही मान लिया जाता था कि हर अविष्कार प्राकृतिक है और प्रकृति सर्वेश्वर की ही सत्ता है। ऐसे में हर वाद्य को मानव ने नहीं, बल्कि ईश्वर ने बनाया है। 'संगीत दामोदर' में इस तरह की एक मान्यता आती है कि भगवान् श्रीगोविन्द अपने राम और श्रीकृष्ण अवतार की अवधि में सभी वाद्यों को स्वर्ग से पृथ्वी लोक पर ले आए थे। इसलिए कहा जाता है कि राम और रावण के युद्ध के दौरान जितने वाद्यों का वादन किया गया था, उतनी संख्या में तो कौरवों और पाण्डवों के महाभारत युद्ध के समय सेनाएँ भी नहीं थीं-

निजावतारे गोविन्दः सर्वमेवानयत् क्षितौ।
यावन्ति वाद्य भाण्डानि रामरावणयोर्युधिः।
तावत्यो नाभवन् सेनाः कुरुपाण्डवसंगरै॥

– संगीतदामोदर, स्तबक 4

द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, यमुना, मित्रवन्दा, जाम्बवती, नागजिति, लक्ष्मणा और भद्रा; इन आठ महिषियों-रानियों ने पुर में विवाह के एक उत्सव में एक साथ असंख्य तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों को बजाया-

रुक्मिण्याः सत्यभामायाः कालिन्दीमित्रविन्दयोः।
जाम्बवत्या नागजित्या लक्ष्मणाभद्रयोरपि॥
कृष्णस्याष्ट महीषीणां पुरोद्वाहमहोत्सवे।
ततं सुषिरमानद्धं घनञ्च युगपज्जनाः।
अवादयन्नसंख्यातमिति पौराणिकी श्रुतिः॥

– संगीतदामोदर, स्तबक 4

नृपोपाधि में पंचवाद्य या पंचशब्द

हमारे यहाँ प्राचीन ताम्रानुशासनों और शिलालेखों में अनेक राजाओं-महाराजाओं द्वारा 'पंचमहाशब्द' की उपाधि धारण करने के साक्ष्य मिलते हैं। ये शब्द वाद्यों से ही उत्पन्न होते थे। संगीत-दामोदरकार ने इसका निहितार्थ देते हुए माना है कि युद्ध के मैदान में देवताओं के हृदय में तोमर या बर्छे के समान कँपकँपी उत्पन्न करने वाले मधु नामक असुर के साथ भगवान विष्णु के युद्ध में तत् आदि वाद्यों व सिंहनादों से जो कोलाहल हुआ, उसको कदाणवादों द्वारा 'पंचशब्दी' कहा गया। तत् आदि चार प्रकार के वाद्यों और सेनाओं के हुंकार-रव से युक्त सिंहनादों से पंचशब्दी वाद्य का भाव लिया गया है अर्थात् सिंहनाद के साथ चार प्रकार के वाद्यों को जोडने से वाद्य पाँच प्रकार के बन जाते हैं-

निलिम्पहृत्कम्पन तोमरेण रणे मुरारेर्मधुनाऽसुरेण।
अभूत तताद्यैरपि सिंहनादैः सा पंचशब्दीति कणादवादैः॥
ततादिभिरेतैश्चतुर्भिर्वाद्यैश्चमूनां सिंहनादैश्च सा पंचशब्दीति वाद्यमभूत्।
सिंहनादेन सह वाद्यं पञ्चविधं भवतीत्यर्थः॥

– संगीत दामोदर, स्तबक 4

इसी प्रकार बाजों को यात्राकाल में शकुन साधक भी माना गया है। चारों प्रकार के वाद्यों- घन, सुषिर, तत् और थाप वाद्यों के वादन का प्रस्थान काल में सुनाई देना शुभ माना जाता रहा है। शकुन शास्त्रों के आधार पर इनका परिचय दिया जा सकता है-

भेरी- ढोल, ताशे अथवा धौसा को भेरी कहा जाता है। यह सामान्यतया युद्ध का वाद्य माना गया है। श्रीमद्भगवदगीता में शंख, पणव, आनक, गोमुख जैसे वाद्यों के साथ भेरी की भी गणना की गई है। वादन के दौरान इनका घोष तुमुल होता था-

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानक गोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यत स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥

– गीता 1, 13

वर्तमान में इसका आशय बड़े ढोल से लिया जा सकता है। ये किसी न किसी अवसर पर बजते रहते हैं। वाल्मीकि 'रामायण' में कई स्थानों पर भेरी का उल्लेख आया है।

मृदंग- मुरज को मृदंग कहा जाता है। गोलाकर पकी हुई मिट्टी के मोटे भुंगल पर चमड़ी चढ़ाकर मृदंग की रचना की जाती है। यह भी एक प्रकार का ढोल ही है और थाप कोटि का वाद्य है।

मद्दल- यह मृदंग का ही एक रूप है। आकार में बड़ा होने से इसको महामृदंग या मद्दल कहा जाता है। लोकांचल में इसको मादल या मांदल के नाम से भी जाना जाता है। दक्षिण-पूर्वी प्रांतों में इसे मर्दल कहते

हैं। वर्तमान में गवरी आदि नृत्य-नाट्यों के प्रदर्शन के दौरान मद्दल का वादन होता है। शकुन में इसका मधुर वादन स्वर प्रशस्त माना गया है।

शंख- समुद्र से उत्पन्न होने वाला शंख सुपरिचित प्राकृतिक वाद्य है। यह घोंघा नामक जीव का आवासीय खोल होता है। यह सुषिर वाद्य है और इसको बजाना 'दघ्मु' कहा जाता है। युद्ध ही नहीं, पूजा-आराधना के समय भी इसे प्रमुखता से बजाया जाता है। इसी कारण इसे मारू-वाद्य के रूप में जाना जाता है। गीता (1, 18) से विदित होता है कि सेनाएँ और सेनापतियों के अपने-अपने शंख होते थे। युद्ध के आरंभ होने से पहले इनका वादन किया जाता था। शंख स्वर या ध्वनि का वादन मांगलिक होता है। यह जयघोष का नाद करता है। शंखनाद करना किसी कार्य का आरम्भ करना भी कहा जाता है। शंख को कुबेर की नवनिधियों में से एक माना जाता है। दक्षिणावर्त और वामावर्त स्वरूप में शंख मिलते हैं।

चित्रः जयेन मिस्त्री

वीणा- संगीत-शास्त्र में वीणा का बड़ा महत्व रहा है। यह तत् कोटि का वाद्य है। सिंहभूपाल ने 'संगीत रत्नाकर' पर अपनी टीका में याज्ञवल्क्य का मत उद्धृत करते हुए वीणा वादन को संगीत साधना में श्रेष्ठ माना है-

वीणावादन तत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमार्ग नियच्छति॥

इसमें कहा गया है कि वीणा वादक को श्रुति और जाति का विशारद होना चाहिए। उसको ताल का ज्ञान होना चाहिए। इसका वादन करने वाला मोक्ष मार्ग का अभिलाषी होता है। संगीतशास्त्रों में अनेक प्रकार की वीणाओं का नाम मिलता है। संगीतराज में आया है कि एकतन्त्री, वनकुल, चित्रा, त्रितन्त्रिका, विपंचि, कालापिनी, मत्तकोकिला, पिनाकी, किन्नरी, निःशकवीणिका, शततन्त्री, कूर्मा, घोषवती, शारंगी, वल्लकी, त्रिशरी, अलावाठंकरी, रावणहस्तिका, अर्द्धचन्द्रा इत्यादि वीणा को देववाद्य माना गया है, इस कारण इसका स्वर सुनाई देना शुभ होता है। (संगीतराज, वाद्यरत्नकोश, परीक्षण प्रथम 21-26)

कालयात्रा के सहचर

वाद्यों के साथ देवताओं के संबंध के मूल में वाद्यों की लकड़ी और उसके बहुलता से प्रयोग होने से देवता का किसी स्थान विशेष से संबंध जाना जा सकता है। नारायण का जल के साथ संबंध होना उनके शंख वाद्य से भली प्रकार जाना जा सकता है। श्रीकृष्ण के वनविहारी या व्रजी होने के मूल में वेणु या मुरली, वांशी या वंशी एक अच्छा प्रमाण है, किन्तु यह उदाहरण अपेक्षाकृत परवर्ती इसलिए है कि उसके छिद्रों के साथ स्वर का संबंध मानव ने जानकर ही उसको बनाया था, मगर भुंगल रूप में उसका प्रयोग पुराना है। इसी प्रकार डमरू में काष्ठ, सूत और चर्म तीनों का प्रयोग होता है और वह बहुत सुनियोजित वाद्य प्रतीत होता है, अतः वह परवर्ती हो सकता है। हाँ, इससे भी पुराना श्रृंगी वाद्य है, जिसे सींगड़ी या सींग भी कहा जाता है, इसमें फूँक देने पर स्वर के निकास और विस्तार की अवधारणा का अनुमान मानव ने बहुत पहले कर लिया होगा।

शिल्पकला में वाद्य

भारतीय संस्कृति में संगीत प्रतिमाओं की प्राचीन समृद्ध परम्परा रही है। नटराज की प्रतिमा इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। देव प्रासादों में रूपसी अप्सराएँ, देवांगनाएँ, गंधर्व प्रतिमाएँ, वाग्देवी, मातृकाएँ तथा गायन-वादन-नृत्य के पाषाण फलक प्रभूत मात्रा में मिलते हैं। मूर्तिकला और संगीत दोनों ही ललित कला के समृद्ध स्वरूप हैं। दोनों का अपना-अपना विधान, संधान और भावनात्मक अनुदान है। दोनों का अलग-अलग स्वरूप होते हुए भी परस्पर प्रगाढ़ अन्तर्सम्बन्ध है। भावनात्मता भव से उपजी दोनों कलाएँ अपने सौंदर्य के माधुर्य से अनुप्राणित हैं। मूर्तिकला किसी ठोस माध्यम को आकार देती है, वहीं संगीत कला रसोन्मेष को साकार करती है। चेतना के स्तर पर दोनों कलाएँ एक-दूसरे से संपृक्त, आत्मसात और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी दोनों का एक ही फलन मानस-पटल पर प्रसृत अमूर्त संवेदनाओं, अनुभूतियों, मनोभावों, मनोदशाओं और रागात्मक वृत्तियों का प्रत्यक्षीकरण है। एक दृश्य तो दूसरी श्रव्य किन्तु संगीत के समावेश से पाषाण प्रतिमा भी जीवंत होकर नर्तन एवं वादन दृश्य को साकार करने लगती है। जिस प्रकार गायन, वादन और नृत्य के समुच्चय से निराकार संगीत साकार हो रसानुभूति कराता है, उसी प्रकार संगीत का कोई भी तत्व मूर्तिकला में समाविष्ट होता है तो वह अपने चाक्षुष सौन्दर्य से उसी सांगीतिक दृश्य को मूर्तिमंत कर जीवंत कर देता है। एक संगीतकार तो दूसरा शिल्पकार किन्तु दोनों का एक ही रचनाधर्म है, संगीत को साकार करना। उसके प्रत्यक्षीकरण से रसानुभूति की प्रतीति कराना और अनुभवेन्द्रियों को परितृप्त करना।

सुर, लय, ताल और गायन-वादन-नृत्य के विविध रूपाकार जब शिल्पकार के अन्तस में गहरे समाकर मन को उद्वेलित करते हैं तो उसके कलामन में संगीत के संस्कारों का संचरण होने लगता है और उसकी रचनाधर्मिता में कला का ऐसा स्फुरण होने लगता है कि संगीत मूर्तिमयी होने के लिए मचल उठता है। छैनी-हथौड़ी की ताल पर उसके अन्तर्मन में समाया निराकार संगीत प्रतिमा के रूप में आकारित होकर जीवंत हो उठता है। मूर्ति चाहे गायन, वादन, नृत्य अथवा नृत्य -मुद्रा,

हस्त-मुद्रा या वाद्ययंत्र बजाते हुए हो, अपने हाव-भाव या दिव्य स्वरूप के साथ प्रभासित होने लगती है तथा भावनात्मक स्तर पर संगीत की रसानुभूति कराने लगती है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संगीत प्रतिमाओं के बिना मंदिर स्थापत्य या देवशिल्प की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

पुरातन काल में राजाश्रय में जो कलाएँ फली-फूलीं, उनमें शिल्पकला समस्त कलाओं पर भारी रही और पाषाणमय होकर चिरायु हो गई। मन्दिर-मण्डप, कूप-वापी और ताल-तलैया आदि सभी स्थापत्य बहुत कलात्मक रूप में आज भी स्थिर हैं, जो अचल आश्चर्य के रूपक लगते हैं, जैसे शिल्पकारों ने मौलिक सृजन की प्रतिस्पर्धा जीतने का प्रयास किया हो। ये सब कार्य आए दिन होने वाले युद्ध और अन्यान्य आतंक के दौर में भी अविराम रहे। कितना अचरज होता है कि वाद्यों के सुर किसी भी काल में मन्द नहीं पड़े। राग-रागिनियों का विकास होता रहा और वे शिल्प के अंगीभूत होते रहे।

मेवाड़ के महाराणा कुम्भा का काल (1433-1468 ई.) संगीत के संरक्षण और संवर्धन के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जो प्रवृत्तियाँ इस काल में चलीं, वे महाराणा रायमल्ल के काल (1472-1509 ई.) तक निरन्तर रहीं। तत्कालीन राजधानी चित्तौड़गढ़ ही नहीं, कुम्भलगढ़, अचलगढ़, देलवाड़ा, रणकपुर, नागदा आदि कला के केन्द्र रहे। वहाँ संगीत के गायन-वादन-नर्तन जैसे तीनों रूप, सूड, नाटक तथा नट-नटी के करतब भी लोकानुरंजन के हेतु बने। संगीतराज के पाँचों कोश ही नहीं, गीत-गोविंद की रसिकप्रिया टीका, सूडप्रबन्ध, छन्द चूड़ामणि, रसिक सर्वस्व, भरतसंगीत, तालार्णव आदि ग्रन्थ ही नहीं, तत्कालीन मूर्तियों में मण्डित मुद्राएँ, पदचारी और भाव भंगिमाएँ इसके प्रमाण हैं। इस कालावधि की मूर्तियों में नर्तकियों के मुखकमल, भ्रूलता और नर्तन की लीलाएँ रमणीय रूपक लगती हैं-

मुख पंकजरंगेऽस्मिन् भ्रूलता नर्तकी नवा।
लीलानृत्यं करोतीति रम्यं रूपकरूपकम्॥

– गीतगोविंद की टीका 3, 13

इस काल में अनेक रागों का प्रचलन था, जो अनेक ताल, लय, आलाप से विभूषित थे। इनमें ललिता, गुर्जरी, धनाश्री, भैरव, गौण्डकरी, देशाक, मालवश्री, केदार, मालवीय, आदिगौण्डक, स्थानगौण्ड, श्रीराग, मल्हार, वराटिका और मेघराग स्मरणीय है-

तालो वर्णयती रागाः क्रमादष्टादश स्मृताः।
मध्यमादिश्च ललितो गुर्जरी तथा॥
धनाश्री भैरवो गौण्डकृतिर्देशांकिकापि च।
मालवश्रीश्च केदारमालवीयादि गौण्डकौ॥
स्थानगौण्डश्च श्रीरागो मह्लारश्च वराटिका।
मेघरागश्च भद्रावद्धोरणीनियता इमे॥
यावद् रागं पदानि स्युः प्रान्ते पाठ स्वराणि तु।
क्वचित्क्वचिद् गतालापभूषितानि यथारुचि॥
मिथः प्रियोक्तिसम्भारविप्रलम्भरसानि च।
यत्र स्यात्स प्रबन्धोऽयं रागराजि विराजितः॥

– उपर्युक्त 10, 19

चित्तौड़गढ़ के कीर्तिस्तम्भ (लोकप्रिय नाम- विजय स्तम्भ) के दक्षिणी द्वार पर कटार लिए करतब दिखाती जिस नर्तकी को मूर्तिमान किया गया है, वह स्वरूप अद्भुतजी मन्दिर और रणकपुर के चौमुखा मन्दिर पर भी देखने को मिलता है। इसको देखकर लगता है कि मानो नायिका के भ्रूपल्लव रूपी धनुष कटाक्षपात तरंग रूपी बाण तथा कर्णपालि रूपी मौर्वी से मनोज विश्वविजय करने निकला हो। यह 'गीतगोविंद' के इस गेय वसंत-तिलका छंद का प्रतिरूपण है-

भ्रूपल्लवं धनुरपांगतरंगितानि बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण।

अद्भुतजी मन्दिर में जो नायिका मूर्तियाँ इतस्ततः नृत्यरत उत्कीर्ण हैं, वे भी अपने नटन से अभिनय को साकार करती प्रतीत होती हैं। मूर्तियों में जो नाट्य लक्षण लक्षित हैं, वे भरत के 'नटशब्दो रसे मुख्यः' का अर्थ देती हैं कि नट शब्द का मुख्यार्थ रस है और दर्शक इस रस को ग्रहण करते हैं- श्रीजयदेवभणितमिदमधिकम्। इन मूर्तियों में नायिकाएँ अपने हाथों में ढक्का, वेणु, मुरज, मंजीर आदि वाद्यों का वादन करती हुई और ताल देती हुई दिखाई देती हैं। उनका अपना नर्तनभाव राग में देशांक संज्ञक भी कहा गया है-

प्रतिमण्ठक तालेन रागे देशांकसंज्ञिते।

– उपर्युक्त 4, 10

इस काल की मूर्तियों ही नहीं, चित्रों में नर्तन को विशेषरूप से दिखाया गया है। अलंकरणों में नूपुर, छोटे-छोटे घुंघरुओं वाली करधनी, मेखला (रसन), मणिजटित (मरकत) वलय, वस्त्रों में निचोल और परिवेश में लताकुंज का प्रयोग पूरी तरह शास्त्रीय दिखाने प्रयास किया गया है। ये अनुराग में अनुरक्त और रसाभास की स्थिति के लिए आवश्यक भी कहा गया है-

अनुरागोऽनुक्तायां रसावह इति स्थितिः।
अभावे त्वनुरागस्य रसाभासं जगुर्बुधाः॥

– उपर्युक्त 7, 4

इस काल में मण्डप रचना सहित नाट्यशालाओं के निर्माण की परम्परा थी। कुम्भा ने संगीतराज में कहा है कि उचित विधि-नियम से बनी नाट्यशालाएँ जय, आयु और कीर्ति प्रदान करने वाली होती हैं-

एवं विधान संयुक्तं नाट्यवेश्म भुवोविभुः।
जयाः युकीर्तिजननमन्यथा न शुभावहम्॥

– नृत्यरत्नकोश 1, 1, 42-53

इनके निवेशावसर पर मृदंग, पटह, शंख, दुंदुभि आदि वाद्यों के वादन के साथ दिक्पालों की पूजा की जाती थी। नाट्यशाला की सुन्दरता-शोभा के लिए कुंभा ने चित्रांकन-मूर्त्यांकन का निर्देश किया है।

इन चित्रों को अनेक विषयों को केंद्र में रखकर बनाने का निर्देश किया है। 'विचित्र चित्र संयुक्ता वात्स्यायन विनिर्मितैः' कहकर कुम्भा ने स्त्री-पुरुषों के मुदित, रंजन भावादि को उभारने का शास्त्रोचित निर्देश दिया है। कुंभा का मत है कि प्रबन्धानुसार चित्रों और मूर्तियों को बनाना चाहिए। उनको लोकरुचि के अनुसार इस तरह बनाया जाए कि वे सबको आकर्षित करते हों। वहाँ पर अनेक शास्त्रीय नाटकों की गतिविधियों को दर्शाएँ ताकि दर्शक उनको क्रमिक रूप से देखते रहें।

संगीतराज में यह निर्देश भी दिया गया है कि अंकन के अंतराल पर लताओं-वल्लरियों की पंक्तियों को दिखाया जाए। चित्रों में पिण्डीभेदबंध को दिखाएँ। इन रचनाओं को गीतगोविंद रूपक के अनुसार भी दिखाया जाना चाहिए। 'नृत्यरत्नकोश' में दक्ष चित्रकार को 'चित्रकर्मठ' बताया गया है। उसके लिए निर्देश है कि वह भित्तियों पर शोभाकारक मुद्राओं सहित नाना भावों, रसों से पूरित मूर्तियों का आलेखन करें और नेपथ्य वेश्म, द्वार, रंगपीठ, रंगशीर्ष, स्तंभ, षट्दारु, कोष्ठकादि को चित्रों से सुन्दरतम दिखाने का सुलाघव प्रयास करे। (उपर्युक्त 1, 1, 94-100) इसी कारण इस काल के रणकपुर, चित्तौड़गढ़ आदि के मन्दिर में नाट्य-नर्तन का रूपांकन मिलता है।

देवशिल्प और संगीत

देवालयों और अन्यान्य आस्थामूलक स्थलों के निर्माण और नियोजन में स्थापत्य तथा अलंकरण के लिए शिल्पविद्या बहुत महत्वपूर्ण रही है। यह विश्वकर्मीय ज्ञानानुभव से प्रेरित मानी जाती है। शिल्प वह कला है जो नयन और मन को लुभाती है। इसमें मानवीय समाज की गतिविधियों को स्वर्गिक आनन्द के कुतूहल के रूप में दिखाया जाता है- पर्याप्त रूप से श्रमसाध्य तथा यथारूप गढ़ाई और बुनाई के कारण ही वे चारु और कारु दोनों ही रूप में प्रत्यक्ष होती हैं। महाभारतकार का मत है-

अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा।
मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम्॥

– उद्योग. 100, 2

इनमें संगीतकला को साक्षात् करना बहुत ही सुविचारित और प्रतीकात्मक बोधन कहा जा सकता है। इसमें अन्विति, समविभाग, वर्णच्छटा, समृद्धि, अलंकरण, मुक्त, जीवन्तता आदि तत्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मिलते हैं। संगीत के गुणों के लिए महर्षि वाल्मीकि का मत है-

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम्॥

– रामायण बालकाण्ड, 4, 8

संगीत के लिए विश्वकर्मीय निर्देश

सूत्रधारों ने प्रत्येक पुर-नगरों का सरोवर और संगीत की समृद्धि से परिपूर्ण होना आवश्यक माना है-

सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणा वेणु निनादितम्।
तत्राप्सरः संघैर्नृत्यद्भिरूपशोभितम्।

और

नानागीतविधानज्ञैः देवानामपि दुर्लभैः।

इसी प्रकार देवालयों में अपनी कला में संगीत को दिखाने का अनेक प्रयास किया है। चित्रकला और मूर्तिकला में गायन-वादन और नृत्य के अन्यान्य कलारूपों को चित्रित या मूर्तिमान किया जा सकता है। शिल्पकार के लिए ऐसा विश्वकर्मीय निर्देश (चित्रसूत्रम् 8, 14-15) है।

मन्दिर में शिव के वाम, अघोर व ईशान जैसे विभिन्न रूपों को दिखाया जाना चाहिए और लास्य, ताण्डव नृत्य सहित वैताल (ताल देने वाले) को बनाएँ-

शिवरूपं च कर्तव्यं वामाऽघोरमीशानकम्।
लास्यं ताण्डवं नृत्यञ्च वैतालं च विशेषतः॥

नारद और तुम्बरु के साथ वाद्य वादकों को दिखाएँ और सिद्धि-बुद्धि के साथ नृत्य करते गणेश को दिखाएँ-

नारदस्तुम्बरुश्चैव वादित्रैर्विविधैः सह।
सिद्धिबुद्धिसमायुक्ते नृत्यकृद् गणनायकः॥

ऋषियों की मूर्तियाँ अस्सी हजार प्रकार की तथा चार हजार गोपिकाएँ होती हैं, जिनके साथ कृष्ण को वृत्तीय परिकर में दिखाया जाना चाहिए-

अष्टाशिति सहस्त्राणि ऋषि रूपाण्यनेकधा।
चतुस्सहस्त्र गोपीयुक्त कृष्णः परिकरैर्वृतः॥

स्त्रियों को जोड़ियों के साथ में लोकांचल में प्रचलित लीलाओं को करते हुए दिखाएँ और मिथुनाकृतियों, प्रमथगणों को कमलपत्र वल्लरियों से शोभायमान करें-

स्त्रीयुग्मसंयुते रूपं लोकलीलां प्रदर्शयेत्।
मिथुनैः पत्रवल्लिभिः प्रमथैश्चय शोभयेत्॥

इन्द्रादि लोकपालों को नृत्य करते या चलायमान दिखाएँ ऐसे ही चलित रूप में सूर्यादि ग्रह, बारह राशियों, सत्ताईस नक्षत्रों, आठ आयों व आठ व्ययों तथा नौ ताराओं के रूप बनाएँ जाने चाहिए-

इन्द्रादि लोकपालाश्च नृत्यकुर्वीत ते सदा।
भास्करादि ग्रहः कार्या द्वादश राशयस्तथा॥
सप्तविंशतिर्नक्षत्रा कर्तव्यानि प्रयत्नतः।
अष्टावायाश्चाष्टव्यया नवतारा रूपकम्॥

संगीत के सातों स्वरों, छः रागों और छत्तीस रागिनियों तथा बारह मेघ रूपों को दिखाने का प्रयत्न करना चाहिए-

सप्तस्वराश्च षड्रागाः षट्त्रिंशत्वरागिनिकाः।
द्वादशमेघरूपाणि कर्तव्यानि प्रयत्नतः॥

संगीत प्रेमी यक्ष, संगीत रसिक गन्धर्व, विद्या, पन्नग, किन्नर आदि देवताओं से नृत्य मण्डप को शोभित करना चाहिए और उसकी विशेषता के लिए इलिका, तोरण, गज, सिंह व विरालिका की रचना भी

करनी चाहिए–

यक्ष गन्धर्व विद्याया: पन्नगा: किन्नरास्तथा।
अनेक देवता नृत्यमण्डपे परिवेष्टिता:।
इलिकातोरणैर्युक्ता गजसिंहविरालिका॥

इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तरीय चित्रसूत्र में किन्नरों को दो प्रकार से बनाए जाने का निर्देश हैं– मनुष्य जैसे मुख वाले (नृवक्त्रा) और हयविग्रहा (घोड़े जैसे शरीर वाले)। अन्य के रूप में मनुष्य जैसा देह और घोड़े जैसा मुँह कहा गया है। जो घोड़े जैसे मुँह वाले किन्नर होते हैं, उनको समस्त गहने धारण करवाएँ–

अश्ववक्त्रास्तु रकर्तव्या: सर्वालंकारधारिण:।

किन्नरों को गीत गाते हुए और वाद्यों से युक्त और कान्तिमय बनाना चाहिए–

गीतवाद्यसमायुक्ता द्युतिमन्तस्तथैव च।

अवलोकन से स्वर-दर्शन

देवादि के दर्शन हेतु आँख प्रथम इन्द्रिय है। वह सबसे पहले सभी इन्द्रियों को अनुभव बाँटती है और सभी इन्द्रियों का सुख लेती है– दर्शनजन्य अपेक्षा और तद्वत भावानुभूति उसका गुण है। शिल्पकार इसीलिए देवालयों को संगीतमय करते हैं। देवालयों की भित्तियों, स्तम्भों और मूर्तियों में संगीत के तीनों अंगों– गायन, वादन और नर्तन को दिखाया जाता रहा है। यह संगीत के मानवीकरण का प्रयास है। स्वर को किसी वाद्य से और नृत्य को नर्तनरत स्त्री अथवा पुरुष से और रंजकता या रसबोध को आजू-बाजू या दीर्घा में बैठे हुए दर्शकों से दिखाया जाता है। कहा गया है कि ऐसा अंकन मंगलकारी भी होता है–

मंगल्यं परमं चैतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।

– चित्रसूत्र 9, 38

मन्दिर के संगीत शिल्पों से श्रद्धालुओं या दर्शकों को देहयष्टि के साथ ही वस्त्र विन्यास, अलंकरण और उनकी बनावट-सजावट की जानकारी तो होती है ही, प्रस्तुति के रूप में अंग-संचालन, चरण, करण, अनुसरण, वरण और धरण को समझने में सहायता मिलती है, जैसा कि नन्दीकेश्वर के मत से सूत्रधार मण्डन ने कहा है कि हस्त, पद, मुख, दृष्टि, रस, अभिनय, ताल और भाव मूर्तियों में लक्षित होते हैं। नृत्य मूर्तियों का मुख अनेक भंगों से युक्त किया जाता है, नेत्र व हाथ अभिनय में तत्पर होते हैं, उनकी दृष्टि हाथों की ओर, मन दृष्टि की ओर उन्मुख, भाव मन की ओर तथा रस भाव की ओर उन्मुख होता है। नृत्य प्रतिमाएँ तभी सार्थक हैं, जब मुख गीत को, हस्त मुद्राएँ गीतार्थ को, नेत्र गीत के भाव को और पाँव ताल को प्रदर्शित करते प्रतीत हों–

भंगे भंगे मुखं कुर्याद्धस्तौ दृष्टिं च नर्तने।
हस्तकाद्यं भवेल्लोके कर्मणोऽभिनयेऽखिलम्॥

– अभिनय दर्पण और देवतामूर्ति प्रकरण, 8, 122

हमें ज्ञात रहना चाहिए कि देवालयों में मध्यकालीन रागों का

अंकन नहीं मिलता, क्योंकि उसका विकास 15वीं-16वीं सदी के दौरान हुआ और चित्रण प्रथमत: सामने आए, लेकिन मूर्तिकरण नहीं हुआ। हाँ, ऊँट-सवारी के रूप में मारूराग, सर्प-सुन्दरी के रूप में आसावरी, शिवाराधना के रूप में भैरवी आदि रागों के उत्स खोजे जा सकते हैं। पुराणों में देवालयों में गीतादि के प्रबन्ध, वाद्य-वादन व नृत्य-आयोजन को पुण्यकारक माना गया है–

दत्त्वा च गीत धर्मज्ञा गन्धर्वै सह मोदते।
स्वयं गीतेन सम्पूज्य तस्य चानुचरो भवेत्॥

– विष्णुधर्मोत्तर. 3, 341, 18-19

शिल्पकारों ने भारतीयता के गूढ़ार्थ और प्रतीकात्मकता के साथ ही नृत्य के प्रदर्शन, अनुकरण और वाद्य संगत से प्रत्यक्ष दर्शन, रसग्रहण, भावग्रहण के अवबोधन का प्रयास किया है। एक शिल्प सहस्राधिक समझाइश पर भारी पड़ता है। मन्दिरों के शिल्प में संगीत को प्रधानतया किसी वाद्यवृन्द अथवा गायकदल या फिर नृत्य मण्डली के मूर्ति रूप में उत्कीर्ण किया जाता है। भारतीय मन्दिरों में उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक जो भी शिल्प मिलते हैं, वे गीत-संगीत सहित नर्तन के प्रमाण होते हैं। यह अध्येताओं के लिए इस अर्थ में महत्वपूर्ण होता है कि कोई वाद्य अथवा नृत्य किस काल में समाज का अंग रहा। ये प्रतीकात्मक रूप में मन्दिर-संस्था को संगीतकला के पोषण केन्द्र के रूप में भी परिभाषित करते हैं। यहाँ हमें नाट्यशास्त्र की मान्यता को देखना चाहिए जिसमें कहा गया है कि ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग तथा कर्म नहीं है, जिसे नाट्य के माध्यम से प्रदर्शित नहीं किया जा सके–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यत्र दृश्यते॥

– नाट्य, प्रथम अध्याय

वाद्य और तौर्यत्रिक अंकन

शिल्प में वाद्य और वाद्यवृन्द का तौर्यत्रिक अंकन बहुत स्पष्टता के साथ किया गया मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर में नाट्यशास्त्र की तरह ही चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है–

चतुर्विधमातोद्यं ततं सुषिरं घनमवनद्ध च।
ततं वीणादि, सुषिरं वंशादि, घनं तालादि, अनवद्ध मुरजादि॥

– विष्णुधर्मोत्तर. 3, अध्याय 19

यह भी कहा गया है कि वीणा, इकतारा आदि तन्नी–वाद्य भगवान विष्णु को बहुत प्रिय हैं, इनके दानादि के प्रयोग–पूजन से धर्मशील गाणपत्यलोक को प्राप्त होता है–

वाद्यानामपि देवस्य तन्नीवाद्यं सदा प्रियम्।
तेन सम्पूज्य वरदं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥

– उपर्युक्त 3, 341, 20–21

वाद्य, लोक समाज के अधिकार, पहचान और प्रतिष्ठा के सूचक भी होते हैं। वे किसी सम्प्रदाय के लक्षण (लाँछन) भी माने जाते हैं। वाद्य शुभ के निमित्त होते हैं। प्राचीन सभ्यताओं के उत्खनन में वाद्यों की प्राप्ति हुई हैं। वाद्यों की पूजा होती है। वे शान्तिकर्म, पूजन और पाद्य में स्मरणीय होते हैं। देवताओं के हाथों में अनेक प्रकार के वाद्य होते हैं। भगवान् शिव के हाथ में डमरू और श्रृंगी, देवी सरस्वती के हाथ में वीणा, श्री विष्णु के हाथ में शंख सर्वत्र मिलते हैं। इन देवताओं के गणों के हाथ में भी बाजे होते हैं।

चित्तौडग़ढ़, जावर, रणकपुर आदि के मन्दिरों में ढक्का जैसा युद्ध वाद्य, मृदंग जैसा संगत वाद्य और वेणु जैसा टेर वाद्य उत्कीर्ण किया हुआ मिलता है। महाराष्ट्र, तेलंगाना, कर्णाटक, केरल और तमिलनाडु के मन्दिरों में अनेक वाद्यों का अंकन हुआ है, जिनमें लोकवाद्य के रूप में डफली, बीन, झाँझ और बीन प्रमुख है। मथुरा की कला में वेणुगोपाल की मूर्तियाँ मिली हैं– वृत्तस्फुटित रूप में वेणुवादक श्रीकृष्ण को दर्शाया गया है। उदयगिरि की एक गुफा में ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व की वेणुवादक की मूर्ति मिली है। कनकमठ मुरैना आदि स्थानों से सर्वाधिक लोकप्रिय रूप में मुरली और मुरलीधर की मूर्तियाँ मिली हैं। शिल्प की भाषा में बाँसुरी के अंकन से सुख–चैन, डमरू से क्रोधन, वीणा से भक्ति और सहिष्णुता, बीन से भय के शमन, मृदंग–मुरज से लीनता, ढक्का से युद्ध का घोष, तुरही से लोक अभिसूचन और ढप से फागुन की चांचर राग का प्रदर्शन किया जाता है।

कूर्मपुराण में पर्वतों के विवरण के रूप में जो वर्णन दिया गया है, उनमें वाद्यों के नाम वाले मन्दिरों का विवरण ज्ञात होता है। मंदिरों की प्रारम्भिक बीस शैलियों का नामकरण मेरु, मन्दर, हेमकूट, कैलास, गारुड़, श्रीशृंग, पारियात्र, हंस, दुन्दुभि आदि के नाम पर ही हुआ है–

सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः।
सरांसि विमला नद्यो देवानामालयानि च॥

पारियात्र महाशैल पर महालक्ष्मी के जिस पुर का विवरण है, वह भीनमाल नगर से तुलनीय है। वहाँ के रमणीय प्रासाद घण्टा व चामर से विभूषित (रम्य प्रासादसंयुक्तं घण्टाचामर भूषितम्) और इतस्ततः नृत्य करती हुई अप्सराओं के समूह से सुशोभित (नृत्यद्भिरप्सरः संघैरितश्चेतश्च शोभितम्), मृदंग एवं मुरज की ध्वनि से गुंजायमान (मृदंग मुरजोद्घुष्टं), वीणा और वेणु की टेर से निनादित (वीणा वेणु निनादितम्), गन्धर्व तथा किन्नरों से आकीर्ण (गन्धर्व किंनराकीर्णं) और उन कलाओं के सिद्धों आवृत्त (संवृतं सिद्धपुंगवैः) दिखाई देते थे। इस विवरण में संगीत की रसानुभूति व्यंजित है। (कूर्म. पूर्व 46, 37–39)

कहना न होगा कि मन्दिरों में संगीत शिल्प एक प्रकार से रस–प्रेषण का विचार लिए होते हैं और ये मूर्तियाँ बहुधा ऐसे स्थानों पर लगाई जाती हैं, जहाँ दर्शक की अनायास दृष्टि पड़ती हो। संगीत विद्या को तकनीक आधारित और अभ्यास साध्य मानकर 'गांधर्ववेद' के रूप में आदर दिया गया है। यही नहीं, यह तीसरे उपवेद के रूप में आदरस्पद रहा है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अच्छी मूर्तियाँ और चित्र देखने से बुरे सपने नहीं आते। इससे गृहदेवता प्रसन्न होते हैं, जहाँ अंकन होता है, वह स्थान कभी शून्य नहीं होता–

दुःस्वप्रदर्शनं हन्ति प्रीणाति गृहदेवताम्।
न च शून्यमिवाभाति यत्र चित्रं प्रतिष्ठितम्॥

इन मूर्तियों में शय्यासन स्थान, आसन, पुरुष–स्त्री स्थान, अंगकर्म, उपांगिका, हस्त, आहार्य, सामान्य अभिनय, गति प्रचार, रस, भाव, रहस्यमुद्रा, नृत्तशास्त्र और नृत्तसूत्र को दृष्टिगत रखा जाता है, जैसा कि विष्णुधर्मोत्तरीय चित्रसूत्र में कहा गया है– **त्तेऽपि नोक्तं तच्चित्रात्तत्र योज्यं नराधिप।** (चित्रसूत्र, पृष्ठ 92 व 95)

वाद्य शिल्पों का सौन्दर्य विधान

देवालयों का शिल्प अपने मूलरूप में सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने का हेतु होता है। इसमें भी संगीत मण्डलियों और नृत्यरूपों के अंकन और उनकी जड़ाई के पीछे शिल्पकार का ध्येय होता है– देवस्थापत्य का सौन्दर्यकरण। जिस तरह किसी भी नृत्य प्रस्तुति और अभिनय में वेशभूषा और मुखभूषा सहित वेश वैचित्र्य का महत्व होता है, वैसे ही स्थापत्य में संगीतमय शिल्प का महत्व है जो अपनी विशेषताओं के कारण दर्शक के मनोमस्तिष्क में राग और रंजन का सुख देता है। संगीत से ही किसी क्षेत्र के स्पन्दनमय होने की सुखद अनुभूति होती है। इसीलिए महाभारत में कहा गया है– **तत्र दिव्यानभिप्रायान् ददर्श कुशिकस्तदा।** (महाभारत, अनुशासन पर्व 54, 2)

देवालयों के स्थापत्य में बाहरी और भीतरी दो प्रकार के सौन्दर्य की रचना की जाती है। बाहर जहाँ दिशाओं और उनके कोनों (विदिशाओं) में इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान जैसे लोकपालों की प्रतिष्ठा होती है जो मन्दिर को एक यन्त्र के रूप में निरूपित करते हैं, वहीं जगती से लेकर शिखर तक अनेक विध

सौन्दर्यीकरण किया जाता है। मण्डप की संवरणाएँ सिर के सुन्दर केश-विन्यास की तरह मनोहारी लगती हैं। नागर, वेसर और द्राविड़ शिखरों के सौन्दर्य के लिए शृंग, उरुशृंगादि के साथ-साथ वृत्त स्फुटित और कोष्ठकों में नृत्यरत देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं, जो किसी पर्वत शिखर पर उल्लास में थिरकते देवगणों की मान्यता की पोषक लगती हैं। वृत्त स्फुटित अथवा तरंगायित गोलाई वाले फलकों में नृत्यरत बहुभुजी शिव और अनेकायुधधारी गणेश को दिखाये जाने के मूल में दूर से ही मन्दिर को देवलीला स्थली के रूप में प्रकट करते हैं- ये मन्दिर की सजीवता के सूचक भी होते हैं- दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः।

रंग-शीर्ष की रचना में सौन्दर्य को सजीव करने के मूल में यह विचार रहा है कि दर्शकों को आत्मिक सुख मिल सके। जैसा नाट्य-मण्डप के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है, वैसा ही मन्दिरों के आकार, बनावट में सभी दृष्टिकोणों से सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करना सूत्रधार आवश्यक मानते हैं। इसके लिए नृत्यरत मूर्तियाँ बहुत उपयोगी मानी गई हैं। क्षीरार्णव में कहा गया है कि देवालयों में चतुर्दिक ताण्डव लास्यादि नृत्य करते हुए दिग्पालों, लोकपालों और वेतालादि को दिखाएँ। विशेषकर थर के स्थान पर, शाखाओं और स्तम्भ के विस्तार में नृत्यरूपों को दिखाया जाना चाहिए-

दिग्पालं ताण्डवनाट्यं लास्यं लोके वैतालश्च।
प्रकृतेषु पुनर्निमितेषु नृत्यं कुर्याच्चतुर्मुखे।।

– क्षीरार्णव 20, 39-40

यही नहीं, मण्डोवर के जंघा प्रदेश में लोकपालों और दिग्पालों के स्वरूपों को अति आनन्दमय भाव से युक्त करने का निर्देश भी ग्रन्थकार ने दिया है। रथ और प्रतिरथ में देवांगना के स्वरूपों को वाद्यवादकों के साथ नृत्य करते युगल रूप में दिखाने और लास्य ताण्डवादि ताल से नृत्य करते हुए दिखाने का भी निर्देश है। उनको आयुध तथा वाहन के साथ उत्सवी रूप में बनाने तथा थिरकते एवं ताल देते सेवक-गणों को दिखाया जाना चाहिए-

लोकपालश्च दिग्पालाः अतीवानन्दपूरिताः॥
रथदेवादीनां तत्र नृत्यं वादित्रं संयुताः।
लास्यस्ताण्डवश्चैव तालानां च विशेषतः॥
आयुधैर्वाहनैर्युक्ता नृत्यं कुर्वन्ति देवताः।
उत्सवं देवालये च विशेणेण चतुर्मुखे॥

– उपर्युक्त 22, 82-84

यह स्मरणीय है कि देवालयों में वेताल को भ्रमरी के चतुर्दिक ताण्डव नृत्य करते दिखाए जाने का निर्देश है। कुबेर के साथ पद्मिनी को लीला करते हुए और उसकी गति को शोभास्पद दिखाने की मान्यता रही है। इन्द्र के साथ रम्भा को बाण तथा वीणा लिए, उर्वशी को बाँसुरी लिए, त्रिलोचना को ताल-मंजीरे और काँसिया लिए हुए और मंजुघोषा को नृत्य करते हुए दिखाया जाता रहा है। इस प्रकार वृक्षार्णव और क्षीरार्णव के पाठभेद से 24 अथवा 32 देवकन्याओं को नृत्यरूप में दिखाने के मूल में यह ध्येय रहा है कि मन्दिर अपने आप में स्वर्गिक सौन्दर्य का सुखस्थान प्रतीत हो। इनके नाम भी स्वयं में सौन्दर्य के प्रतीक हैं-

मेनकादय ईशान्याद्या ततस्थानां च प्रदक्षिणे।
लीलावती विधिश्चिता सुन्दरी शुभभामिनी॥
हंसावली सर्वकला तथा च कर्पूरमंजरी।
पद्मिनी गूढशब्दा च चित्रिणी चित्रवल्लभा॥
गौरी गान्धारिकाश्चैव देवशाखा मरीचिका।
चन्द्रावली चन्द्ररेखा सुगन्धा शत्रुमर्दिनी॥
मानवी मानहंसा च स्वभावा भावमुद्रिका।
मृगाक्षी उर्वशी रम्भा भुजघोषा जया तथा॥
विजया चन्द्रवक्त्रा च कामरूपा च संस्थिता।

– उपर्युक्त 22, 103-107

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि जंघाप्रदेश में ईशानादि कोण के क्रम से मेनका, लीलावती, विधिचित्ता, सुन्दरी, शुभगामिनी, हंसावली, सर्वकला, कर्पूरमंजरी, पद्मिनी, गूढशब्दा, चित्रिणी, चित्रवल्लभा, गौरी, गान्धारी, देवशाखा, मरीचिका, चन्द्रावली, चन्द्ररेखा, सुगन्धा, शत्रुमर्दिनी, मानवी या मानिनी, मानहंसा, सुस्वभावा, भावमुद्रिका, मृगाक्षी, उर्वशी, रम्भा, भुजघोषा, जया, विजया, चन्द्रवक्त्रा और कामरूपा- इन देवांगनाओं को नृत्य करते हुए बनाया जाता रहा है। नाट्यशास्त्र में स्त्री के सौन्दर्यगुणों के सन्दर्भ में ललित या सौकुमार्य, विहृत, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रगल्भ, उदार और लावण्य आदि का जैसा विवेचन किया गया है, वह इन नृत्य प्रतिमाओं में परिलक्षित हो, ऐसा लय-ताल, कलापात सहित प्रयास किया जाता है- लयातालकलापात प्रमाणनियताक्षरम्। यहाँ संगीत के सन्तुलित रूप का संकेत है। कहना न होगा कि विविधता यदि सौन्दर्य का प्रमुख लक्षण है तो शिल्प में विविधता लाने के लिए और उसकी शोभा में अभिवृद्धि के लिए गायन, वादन तथा नृत्य की भूमिका को स्वीकार किया गया है-

यथा वर्णादृते चित्रं न शोभोत्पादन भवेत्।
एवमेव विना गानं नाट्यं रागं न गच्छति॥

इसका आशय है कि जिस पर रंग के अभाव में चित्र शोभाकारक नहीं होता, वैसे ही वाद्य (गान/संगीत) के बिना प्रस्तुति शोभास्पद नहीं होती। यहाँ राग शब्द प्रिय, शोभनीय और सुन्दरता के अभिप्राय को लिए है।

लेखक - वरिष्ठ साहित्यकार, भारतीय विद्याविद्
और संस्कृत के वैज्ञानिक ग्रंथों के खोजकर्ता हैं।
संपर्क : विश्राधरम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर,
उदयपुर 313001 (राज.) मो. 9928072766

■

संगीत वाद्यों का अद्भुत संसार

डॉ. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

संगीत प्रकृति का अद्भुत वरदान है। सकल सृष्टि संगीतमय है। प्रकृति का एक-एक कण गायन, वादन और सतत नर्तन करता दिखाई देता है। लय, ताल और सुर का साम्राज्य अवर्णनीय है। जो इसके नजदीक जाता है, वही इसका आनंद प्राप्त कर पता है, अन्य तो संसार में आते हैं और अपनी यात्रा पूरी करके चले जाते हैं। वह नाद ही है जो प्रकृति के चर और अचर को जोड़ता है। कल-कल निनाद करती नदी, नद, निर्झर, पशु-पक्षियों का विविध स्वरों में कलरव, गायन, वादन और नृत्य के रूप में चहुँदिशि अपना साम्राज्य स्थापित करते किए दिखाई देते हैं। यह स्पष्ट करता है कि संगीत का उद्भव ही प्रकृति का उपहार है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है की प्रकृति के जन्म से ही संगीत का जन्म हुआ है। भारतीय देवी-देवताओं के हाथों में विविध वाद्यों का होना इस बात का द्योतक है कि संगीत पुरातन है। भगवान शंकर के हाथों में डमरू, उनके द्वारा किया गया तांडव नृत्य, गणेश के हाथ में मृदंग, माता सरस्वती के हाथ में वीणा, नारद जी के हाथ में एकतारा आदि ऐसे उदाहरण है जिनको नकारा नहीं जा सकता। संगीत में स्वर, ताल और लय का समन्वय रहता है। यह मानव ने प्रकृति से ही ग्रहण किया है। मानव निर्मित संगीत में स्वर, ताल, लय आदि के लिए विविध वाद्यों की आवश्यकता हुई और विविध वाद्यों का आवश्यकतानुसार समय-समय पर सृजन होता चला गया। भारतीय संगीत में वाद्यों के चार प्रकारों का वर्णन मिलता है। जिनका विवरण निम्नवत है:

1. तत-वितत या तन्त्री वाद्य।
2. सुषिर वाद्य।
3. अवनद्ध वाद्य।
4. घन वाद्य।

नाट्शास्त्र के 28वें अध्याय में आचार्य भरत ने वाद्यों के चार प्रकार बताएं हैं -

'ततं चैवानद्धं च घनं सुषिरमेव च,
चर्तुविध तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ।'

नाट्य शास्त्र 28/1

ततं तन्त्रीगतम् ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्,
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते ।

नाट्य शास्त्र 28/2

तत तंत्री, अवनद्ध पुष्कर वाद्य, घन ताल, सुषिर वंशी वाद्य हैं।

शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में निम्ननांकित रुप से चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है:

शुष्कं गीतानुगं नृत्यानुगमन्यद द्रयानुगम,
चतुर्धेति मतं वाद्यं तत्र शुष्कं तदुच्यते ।
यद्विना गीत नृत्ताभ्यां तद्गोश्टीत्युच्यते बुंधे ।।

संगीत रत्नाकर

शुष्क - स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने वाले वाद्य हैं।

गीतानुग - गायन की संगत वाले वाद्य हैं।

नृत्यानुग - नृत्य की संगत वाले वाद्य हैं।

द्रैयानुग - गायन और नृत्य की संगत वाले वाद्य हैं।

आधुनिक विद्वान मृदंगाचार्य पंडित रामशंकर पागल दास जी ने वाद्यों के साढ़े तीन प्रकार बताए हैं -

बाजे साढ़े तीन हैं, यह है मतौ प्रवीन ।
तार खाल अरु फूंक पुनि, अर्ध ताल स्वरहीन ।।

मृदंगाचार्य स्वामी पागलदास

स्वामी पागलदास के अनुसार वाद्य साढ़े तीन प्रकार के हैं। 1.तार वाले वाद्य, 2. खाल वाले वाद्य 3. फूंक से बजने वाले वाद्य 4. आधे में वे वाद्य हैं जिनमें न स्वर है और न ही ताल ।

परन्तु अधिकांश विद्वानों ने वाद्यों के चार प्रकार ही माने हैं जिनका विवरण निम्नवत है -

तत - वितत या तन्त्री वाद्य -

तत-वितत या तन्त्री वाद्यों के अन्तर्गत तार वाले समस्त वाद्य आते हैं जो उंगली, विशेष प्रकार की अंगूठी अथवा गज से बजाये जाते हैं। इन वाद्यों में तानपूरा, सितार, सरोद, वायलिन, गिटार, वीणा, इसराज, सारंगी, सारंधा, ताउस, बैंजो आदि आते हैं।

तानपूरा -

वीणा से प्रकट भयो, ऋषि तुम्बरु नाम धरयों,
गायन को खास साज़, तानपूरा जानिये ।।1।।
चार तार बाजत हैं, विविध रंग साजत हैं,

षडज प्रबल रहे सदा, वाद्य मधुर मानिये ।।2।।
खरज षडज, मध्य षडज, और सहायक नाद होत,
पंचम हू साजत है, तार प्रथम पहचानिये ।।3।।
कबहुँ मध्यम और निषाद, बाजत है खास राग,
पंचम को छाँड़ि देत, शेष तार बजाइये ।।4।।
मिलें मधुर चार तार, विविध नाद प्रकट होत,
कहत 'ब्रजरंग' गुनी, तानपूरा मनाइये ।।5।।

तानपूरा शास्त्रीय गायन का आधारभूत वाद्य यंत्र है। इसे तंबूरा भी कहा जाता है। तानपूरा एक प्राचीन वाद्य है जिसका निर्माण तुंबरु ऋषि ने किया था जो तत्कालीन प्रसिद्ध गंधर्व थे तथा नारद जी के शिष्य थे। वे इंद्र और विष्णु जी के समक्ष गायन किया करते थे, ऐसा शास्त्रों में उल्लेख प्राप्त होता है। तानपूरा में चार तार होते हैं, जिन्हें प-स अथवा म-स आदि स्वरों में मिलाया जाता है। कुछ विशेष रागों में जिनमें पंचम या माध्यम नहीं होता उनमें पंचम वाले तार को निषाद से मिलाया जाता है। स्त्री और पुरुषों के तानपूरे आधार स्वर के अनुसार अलग-अलग होते है। यह एक बड़ी लौकी के तुंबे से निर्मित होता है। मिरज के तानपूरे जग प्रसिद्ध हैं।

2. सितार –

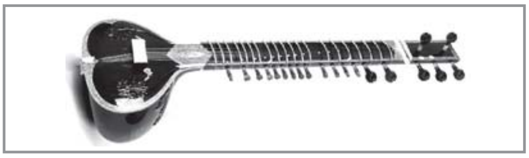

सितार के आविष्कारक के रूप में अमीर खुसरो को माना जाता है। इसका आविष्कार 13वीं सदी में हुआ, परंतु उस समय सितार में केवल चार तार होते थे। वर्तमान सितार 18वीं शताब्दी की देन है। सितार का सबसे पहले उल्लेख 1739 ई में मोहम्मद शाह रंगीला के शासनकाल में लिखित 'मुरक्का-ए-देहली' में सर्वप्रथम मिलता है। सितार का स्वरूप वीणा से लिया गया जान पड़ता है। 9वीं और 10वीं शताब्दी में निर्मित मंदिरों के भित्ति चित्रों में इस प्रकार की आकृतियां पहले से ही उपलब्ध हैं। आज का सितार सात तारों का सितार है। इसमें अनुनाद हेतु भी तार लगाये जाते हैं जिन्हें तरबें कहते हैं। आज यह संगीत का एक बहुप्रचलित वाद्य यंत्र बन गया है। इसकी आकृति वीणा से काफी मिलती है। इसे एक विशेष प्रकार की अंगूठी जिसे मिजराव कहते हैं, से बजाया जाता है। सितार को प्रचारित करने में पंडित रविशंकर, उस्ताद विलायत खान, पंडित निखिल बनर्जी आदि जैसे दिग्गज कलाकारों का विशेष योगदान है।

3. सरोद –

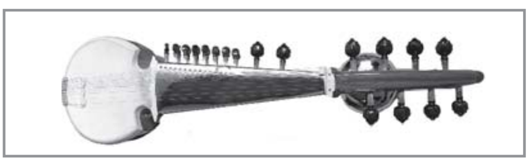

अति मधुर तार साज़, मोहत गुनियन को आज,
रबाब को विशुद्ध रुप, सरोद को पहचानिये ।।1।।
सोहे मूल चार तार, दो खरज और दो चिकार,
गोदी रख बाजत है, आनन्द रस प्रमानिये ।।2।।
बाजत जवा के संग, नक्काशी विविध ढंग,
तुम्बी चर्माच्छादित है, चमकत वक्ष जानिये ।।3।।
सागौन काष्ठ से बनत, राग अति मधुर बजत,
बाबा के प्रचार सो, सरोद बजत मानिये ।।4।।
अली अकबर, अमजद अली, बाजो सरोद भाँति भली,
कहत 'ब्रजरंग' आज, सरोद गुन बखानिये ।।5।।

सरोद भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक लोकप्रिय वाद्य है। इसका जन्म अफगानिस्तान में रवाब से हुआ। रवाब से विकसित यह वाद्य लगभग 16वीं शताब्दी में भारत आया और भारतीय संगीतज्ञ का प्रिय वाद्य बन गया। भारतीय संगीतज्ञों ने इसमें कुछ आवश्यक बदलाव करके इसे हिंदुस्तानी संगीत के उपयोगी बनाया है। सरोद में 17 से 25 तार होते हैं। इसकी मधुर ध्वनि संगीत रसिकों को आनंद प्रदान करती है। इसे सितार की तरह एक पिक से बजाया जाता है जिसे जवा कहते हैं। सरोद भी वीणा परिवार का ही एक वाद्य यंत्र है। सरोद प्राय: सागवान या तुन की लकड़ी से बना होता है। यह बिना पर्दे का साथ है। इसके वादन में मींड़ का प्रयोग काफी सुगमता से होता है। सरोद को भारत में प्रचलित करने के लिए उस्ताद अलाउद्दीन खान का नाम सर्वोपरि है। इसके प्रमुख वादकों में उस्ताद अलाउद्दीन खान, उस्ताद हाफिज अली खान, उस्ताद अली अकबर खान, उस्ताद अमजद अली खान, पंडित सुनील मुखर्जी, उस्ताद आशीष खान, उस्ताद ध्यानेश खान, पंडित तेजेन्द्र मजूमदार, पंडित बुद्ध देवदास गुप्ता, आदि का नाम उल्लेखनीय है।

4. सारंगी –

गुनिजन मधुर साज़ सारंगी ।
सौ सौ रंग दिखावे अपने, चलत चाल बहुरंगी ।
आदिम साज़ जानों साधक जन, शोभित जग सौ रंगी ।।1।।
बजत नहीं सम्वाद करत है, छवि दरशावे जंगी ।
ज्यों ही गज फेरत वादक जन, है जावत गुनि संगी ।।2।।
जो गायक जन रखत सारंगी, गान न आवत तंगी ।
'ब्रजरंग' साधो बड़े जतन ते, मन भावे सारंगी ।।3।।

सारंगी भारत का प्राचीन वाद्य है। भारत में सारंगी के विभिन्न स्वरूप पाये जाते हैं। गायन विद्या के सबसे नजदीक अगर कोई वाद्य है तो वह सारंगी ही है। सारंगी मानव गले के सबसे नजदीक वाद्य है जो गले की

हूबहू नकल कर सकता है। सारंगी को सौ रंगी भी कहते हैं जो गायन के विविध पक्षों अर्थात 100 रंगों को दिखाने में समक्ष है। सारंगी पिनाकी वीणा से विकसित हुआ वाद्य है। इससे मिलते जुलते वाद्यों में सारिंदा, ताउस, रावण हत्था आदि अनेकों वाद्य हैं जो सारंगी के समान ही हैं। पुरातन काल में यह घुमक्कड़ों या घुमंतू जनजातियों का वाद्य यंत्र था जो इसे बजा बजाकर एक-एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे तथा उससे हुई आय से अपना जीवन यापन करते थे। आज की सारंगी उस लोक सारंगी का ही परिष्कृत स्वरूप है। यह किसी भी प्रकार के संगीत हेतु पूर्णत: उपयुक्त है। सारंगी सागौन की लकड़ी से निर्मित होती है। इसके ऊपर चमड़ा मढ़ा होता है। इसमें मूल रूप से तीन तांत के तार होते हैं तथा मूल तारों के नीचे अनुगूंज के लिये तरबें लगी होती हैं। इसे गज से बजाया जाता है जिसमें घोड़े की पूंछ के बाल लगे होते हैं।

5. संतूर –

वर्तमान में संगीत जगत में संतूर एक प्रचलित वाद्य है यह कश्मीर राज्य में लोक संगीत और सूफी संगीत में बजाये जाने वाला एक लोकप्रिय वाद्य है। इसे कश्मीर का जन सामान्य का वाद्य भी कहते हैं। कश्मीर की वादियों से निकलकर आज यह वाद्य संपूर्ण भारत में सुप्रचलित वाद्य बन गया है। इसमें लगभग 100 तार होते हैं इसलिए इसे शततन्त्री वीणा भी कहा जाता है। संतूर की उत्पत्ति लगभग 1800 वर्षों से पूर्व ईरान में मानी जाती है। ईरान से चलकर संतूर भारत के कश्मीर प्रांत में आया और यहां संगीतज्ञ के दिल में बस गया। यह चतुर्भुजाकार का बक्सा स्वरूप वाद्य है जिसके ऊपर तार लगे होते हैं। इसमें दो-दो मेरु की कम से कम 15 पंक्तियां होती हैं। इसे अखरोट की लकड़ी की मुड़ी हुई दो डंडियों से बजाया जाता है। इसको लोकप्रिय बनाने में पंडित शिवकुमार शर्मा एवं पंडित भजन सोपोरी का महत्वपूर्ण योगदान है। पंडित भजन सोपोरी ने इसमें दो अतिरिक्त तार लगाकर मीड़ का प्रयोग भी खूबसूरती से किया है। उनका यह प्रयोग संगीत प्रेमियों को खूब भा रहा है।

6. वीणा –

गुनिजन ! वीणा नाद करे ।
आदि काल प्रकटी जगती पर, सुर सौन्दर्य भरे ।
मात शारदा खूब बजाई, तन्त्री नाद वरे ।।1।।
विविध रुप शोभित वीणा के, भाँति भाँति बिखरे ।
देव, दनुज, मुनि शोध करयों है, सुर श्रुति मेल परे ।।2।।
ग्राम, मूर्च्छना, राग बने हैं, गुनियन ध्यान धरे ।
भरत मुनि और शारंगदेव ने, करे प्रयोग खरे ।।3।।
संगीत शास्त्र प्रकट्यो वीणा ते, मुनिजन सिद्ध करे ।
कहें 'ब्रजरंग' वीणा स्वर प्रकटे, शास्त्र यही उचरे ।।4।।

वीणा भारत का प्राचीन वाद्य है। इसका माता सरस्वती के हाथ में होना इसकी प्राचीनता का स्वयं बखान करता है। प्राचीन काल में केवल दो ही वाद्य होते थे जिनमें समस्त सुर वाद्यों को वीणा तथा समस्त ताल वाद्यों को मृदंग कहा जाता था। संगीत शास्त्रों में वीणा के अनेकों स्वरूप मिलते हैं – जैसे रूद्र वीणा, विचित्र वीणा, सरस्वती वीणा, दत्तात्रेय वीणा, चित्र वीणा काच्छपी वीणा, वल्लकी वीणा, मोहन वीणा आदि। वीणा का उल्लेख ऋग्वेद और सामवेद में भी मिलता है। बिना शब्द स्वयं किसी तार वाले वाद्य की ओर इंगित करता है। आज रूद्र वीणा और विचित्र वीणा का प्रयोग हिंदुस्तानी संगीत में तथा सरस्वती वीणा का प्रयोग कर्नाटक संगीत में देखा जा सकता है। मोहन वीणा का सृजन पंडित विश्वमोहन भट्ट जी की देन है। उन्होंने ही इसको प्रचार-प्रसार करके चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया है। प्रसिद्ध वीणा वादकों में आज उस्ताद असद अली खान, उस्ताद बहाउद्दीन डागर, उस्ताद मोहिउद्दीन डागर, डॉ.लालमणि मिश्र, पंडित रमेश प्रेम, डॉक्टर जयंती कुमारेश, मीरा कृष्णन, ज्योति हेगडे आदि प्रमुख हैं।

7. वायलिन –

बेला अद्भुत साज़ है, हरत हिया गुनि आज ।
मधुर ध्वनि मोहत सदा, नहिं जानत कोई राज ।।1।।
इटली में पैदा भयो, सोलह सदी में जान ।
दो शताब्दी पूर्व में, भारत पहुँचो आन ।।2।।
अतिथि बनि आयो यहाँ, पैठ बनाई खूब ।
राज करत गुनियन हिया, मधुर सुरन रहे डूब ।।3।।
देश विदेश में बजि रह्यों, विविध रुप संगीत ।
अजब अनौखो साज़ ये, दुनियाँ लई है जीत ।।4।।
चार तार को साज़ ये, बरनत रंग छत्तीस ।
एकल - संगत जब बजे, दरश करावे ईश ।।5।।
प्रथम सुरन को साधि के, कर सरगम अभ्यास ।
'ब्रजरंग' पल्टा खूब कर, बेला बजेगा खास ।।6।।
चहुँदिशि बेला बजि रह्यों, गीत-वाद्य के संग ।
'ब्रजरंग' नृत्य संगीत में, खूब जमावत रंग ।।7।।

वायलिन या बेला विश्व का सर्वाधिक प्रचलित एवं सुपरिचित वाद्य

है जो पश्चिमी संगीत के साथ-साथ भारतीय संगीत में भी खूब बजाया जाता है। भारत में वायलिन हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होता है। सुगम और फिल्मी संगीत में भी यह खूब प्रचलित है। वायलिन 16वीं शताब्दी में उत्तरी इटली में विकसित हुआ। 17वीं शताब्दी तक आते-आते यह इटली में खूब प्रयुक्त होने लगा। भारत में यह वाद्य 19वीं शताब्दी में यूरोपीय मिशनरियों द्वारा लाया गया। भारत में सर्वप्रथम इसका प्रयोग चर्च संगीत में किया जाता था। 19वीं शताब्दी में कर्नाटक संगीत के विद्वान बालास्वामी दीक्षितार ने वायलिन को भारतीय संगीत में शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तर भारत में पंडित वी.जी. जोग, विदुषी एम. राजन, विदुषी संगीता शंकर आदि के महत्वपूर्ण योगदान से आज हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत में वायलिन खूब प्रचलित है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में वायलिन का प्रयोग कुछ ज्यादा ही है। खैर वायलिन एक ऐसा वाद्य है जिसमें संगीत की प्रत्येक गतिविधि खटका, मीड़, मुर्की, आलाप, आदि सभी सारंगी के समान पूर्ण दक्षता से बजाए जा सकते हैं। यह वाद्य विदेशी वाद्य होते हुए भी आज पूर्णत: भारतीय संगीत में प्रयोग होने वाला वाद्य बन गया है।

इन वाद्यों के अतिरिक्त इस श्रेणी में अनेकों वाद्य आज प्रचलित हैं जिनका प्रयोग भी भारतीय संगीत में किया जा रहा है जिनमें गिटार, मेंडोलियन, बैंजो, इसराज, तार शहनाई आदि हैं।

सुषिर वाद्य -

सुषिर वाद्य वे वाद्य कहलाते हैं जो वायु या फूंक आदि के प्रयोग से बजते हैं। सुषिर वाद्यों का इतिहास बहुत पुराना है। इनका वर्णन ऋग्वेद, सामवेद, नाट्य शास्त्र आदि के साथ-साथ अन्य अनेकों ग्रन्थों में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र के अध्याय 30 में 13 श्लोकों में सुषिर वाद्यों का संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में वाराणसी वामसी, पावा, मुरली, कहला, टुडंगी, तुनवा, कुक्का, श्रृंग, और शंख जैसे अनेकों वाद्यों का उल्लेख किया है। आज प्रचलित कुछ सुषिर वाद्यों का विवरण निम्नवत प्रस्तुत है -

1. बांसुरी -

मुरलिया अतिशय मन भावे ।
सुनत मधुर धुन या बैरन की, राधे दौरि आवे ।।1।।
राज करत कान्हा अधरन पे, दूरि नहीं जावे ।
गौवे चरावत रास रचावत, हियरा हरषावे ।।2।।
हरे बाँस की बाँसुरिया, गुनियन नाच नचावे ।
या मुरली ने लूट्यो है जग, जन मन तरसावे ।।3।।
सुनत तान कान्हा मुरली की, जड़ चेतन गावे ।
'ब्रजरंग' बरनी न जाय मुरलिया,शब्द नहीं पावे ।।4।।

बांसुरी भी अति प्राचीन एवं प्रचलित वाद्य है। इसका उल्लेख वेदों, पुराणों, महाभारत, रामायण के साथ-साथ अनेकों अन्य संगीत ग्रन्थों में पाया जाता है। बांसुरी को मुरली, वेणु, वंशी, वामसी तथा दक्षिण भारत में कोलालू और पिल्लनकरोवी आदि नामों से जाना जाता है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में 18 प्रकार की बांसुरियों का उल्लेख किया है। वेदों में नांदी नाम की बांसुरी का वर्णन मिलता है। सर्वविदित है बांसुरी लीलाधर श्रीकृष्ण का प्रिय वाद्य रहा है। उनका बांसुरी वादन समस्त ब्रजवासियों को अति आनंदित कर देता था। श्रीकृष्ण की बांसुरी में इतना आकर्षण था कि बृजवासी नर-नारी उनके बांसुरी वादन को सुनकर सम्मोहित हो जाते थे और सम्मोहन में उनके पास खिचे चले आते थे। श्री कृष्ण की बांसुरी के लिए अनेकों कवियों ने अपने अपने शब्दों में खूब लिखा है। कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

गजब की बांसुरी बजती थी जब वृंदावन बसैया की,
करूं तारीफ मुरली की या मुरलीधर कन्हैया की ।
जहां चलता था ना काम, तीर और कमानो से,
विजय नटवर की होती थी वहां मुरली की तानों से ।।

बांसुरी एकमात्र ऐसा वाद्य है जो शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, फिल्म संगीत, लोक संगीत एवं जनजातीय संगीत सभी जगह लोकप्रिय है। बांसुरी एकमात्र ऐसा वाद्य है जो सकल भूमंडल में प्रत्येक देश और प्रत्येक कोने में विविध नामों से बजाई जाती है। बांसुरी मूलत: बाँस की होती है जिसमें कुछ-कुछ दूरी पर कम से कम 7 छिद्र होते हैं। प्रयोगधर्मी कला साधकों ने इन छिद्रों में कुछ बढ़ोतरी भी की है लेकिन वह आम नहीं है। आजकल बांसुरी पीतल, लोहा, स्टील, लकड़ी, प्लास्टिक पाइप आदि अनेकों रूप में मिलती है। बाँस से निर्मित बांसुरी की मधुरता कुछ अलग ही होती है। साधारणत: बांसुरी एक से डेढ़ फुट तक की होती है परंतु आजकल इसे विभिन्न प्रकार की लंबाई चौड़ाई में भी देखा जा सकता है। आगरा निवासी इंजीनियर श्री दिनेश शांडिल्य ने सबसे छोटी 2 इंच की एवं सबसे बड़ी 6 फुट की बांसुरी का निर्माण किया था तथा उसका प्रयोग अनेकों कार्यक्रमों में प्रस्तुतियाँ देकर दर्शकों एवं श्रोताओं को आश्चर्यचकित भी किया था। इसका लेखक प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनका प्रमाण गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रिकॉर्डस एवं लिम्का बुक आफ वर्ल्ड रिकॉर्डस में अंकित है। वर्तमान सुप्रसिद्ध बांसुरी वादकों में पंडित पन्नालाल घोष, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया, पंडित नित्यानंद हल्दीपुर, पंडित राजेंद्र प्रसन्ना, पंडित सुंदरलाल गंधर्व, पंडित रोनू मजूमदार, चेतन जोशी आदि हैं।

2. शंख -

शंख भारतीय संस्कृति और धर्म में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शंख की उत्पत्ति समुद्र मंथन से हुई है, ऐसी पौराणिक मान्यता है। शंख को सर्वप्रथम भगवान विष्णु ने ही धारण किया था। समुद्र मंथन में से निकले 14 रत्नों में से शंख एक है। शंख ध्वनि पूजा, यज्ञ, धार्मिक पाठ, अनुष्ठान, भजन, वंदना, कीर्तन, नाटक, आदि में विशेष रूप से बजाया जाता है। शंख बजाने से नकारात्मक ऊर्जा दूर हो जाती है, ऐसी मान्यता है। शंख दक्षिणावर्ती और वामवर्ती दो प्रकार के होते हैं। दक्षिणावर्ती शंख

शुभ माना जाता है। शंख का उपयोग युद्ध में संकेत स्वरूप भी होता था। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण ने पान्चजन्य नामक शंख बजाया था।

3. शहनाई –

द्वार पे बाजत शहनाई ।
देत संदेश भूप आवन को, अरु मंगल धुन भाई ।।1 ।।
मंगल वाद्य कहत गुनिजन सब, प्रकटत तरुणाई ।
आदि वाद्य कहलावत जग में, सुनत न कठिनाई ।।2 ।।
जनजाति और लोक संगीत में, बिसरत ना जाई ।
शास्त्रीय और सिने संगीत में, चहुँदिशि अति छाई ।।3 ।।
विविध रुप अरु विविध ढंग में, उपजत रानाई ।
बिसमिल्लाह खाँ ऐसी बजाई, गुनियन अति भाई ।।4 ।।
आजादी के महापर्व पर, बाजी शहनाई ।
कहें 'ब्रजरंग' ये साज़ अनौखो, बरनत नहीं आई ।।5 ।।

शहनाई भारत का अति लोकप्रिय वाद्य है। इसे मंगल वाद्य भी कहते हैं। शहनाई मांगलिक कार्यों, शादियों, पूजा-पाठ, मंदिरों, अनुष्ठानों, दरबारों में राजाओं के आगमन के समय शहनाई वादन होता था। शहनाई लकड़ी से निर्मित वाद्य है जिसमें पत्ते से निर्मित रीड से बजाया जाता है। शहनाई भारत के अधिकांश प्रान्तों में बजाये जाने वाला वाद्य है। शहनाई को लोकप्रियता के चरम पर उस्ताद बिस्मिल्लाह खान ने ही पहुँचाया है। उस्ताद बिस्मिल्लाह खान साहब के सत्प्रयासों से शहनाई घर, मंदिर, किले के द्वार से देश के प्रतिष्ठित मंचों पर पहुंची है, इसमें उस्ताद बिस्मिल्लाह खान साहब का विशेष योगदान है। आज शहनाई प्रतिष्ठित मंचों, संगीत समारोहों, सुगम संगीत कार्यक्रमों, फिल्म संगीत आदि सभी जगह सभी जगह खूब बज रही है। आज के प्रसिद्ध शहनाई वादकों में उस्ताद बिस्मिल्लाह खान, पंडित अनंत लाल, पंडित भोलानाथ प्रसन्ना, पंडित जगन्नाथ, उस्ताद अली मोहम्मद खान के साथ-साथ कई युवा कलाकार अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं जिनमें लोकेश आनन्द, भास्कर नाथ, योगेश शंकर आदि प्रमुख हैं। दक्षिण भारत में शहनाई को नागश्वरम् के नाम से जाना जाता है।

4. हारमोनियम बनाम सम्वादिनी –

सुमधुर वाद्य संवादिनी संवाद करत सब संग ।
गायन, वादन, नृत्य में, भरत अनेकों रंग ।।
अति प्रचलित वाद्य ये, घर – घर छायो आज ।
बैठक सभा सम्मेलन में, बजत खूब यह साज ।।

हारमोनियम – आज देश का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य है जिसे संवादिनी, पेटी बाजा आदि अनेकों नामों से जाना जाता है जो एक लंबी विकास यात्रा के पश्चात लोकप्रियता के शिखर पर आ पहुँचा है। यह वाद्य हर गली, मोहल्ले, चौपाल, मंदिर, बस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, छोटे और बड़े मंच, आकाशवाणी आदि सभी स्थानों पर पाया जाता है। यद्यपि यह वाद्य भारतीय वाद्य नहीं है परन्तु इसकी लोकप्रियता ने इसे जन सामान्य का वाद्य बना दिया है और भारतीयों ने इसे अपने सिर आंखों पर बिठाया है। आज यह वाद्य जन-जन के मन में बसा हुआ है।

इसका जन्म फ्रांस में एलेक्जेंडर डेवेन द्वारा हुआ है। उन्होंने हारमोनियम को 9 अगस्त 1840 को पेटेंट कराया था। इस प्रकार हारमोनियम वाद्य के जन्मदाता के रुप में फ्रांस के एलेक्जेंडर डेविन को ही इसका श्रेय जाता है। यह फुट पंप हारमोनियम अर्थात पैरों से संचालित होने वाला वाद्य था।

भारत में यह वाद्य फ्रांसीसी व्यापारियों और मिशनरियों द्वारा सन 1900 के अंत में आ पहुंचा लेकिन इसका आकार प्रकार काफी बड़ा था। भारत में कोलकाता के द्वारिकानाथ घोष ने 1875 में हाथ से बजाने वाला हारमोनियम डिजाइन किया। जिसमें धोंकनी और ग्राम इत्यादि लगाकर उसको एक नया स्वरूप प्रदान किया, साइज छोटा किया और हल्की लकड़ी का प्रयोग किया जिससे एक आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सुविधाजनक रहे। द्वारकानाथ द्वारा निर्मित हारमोनियम काफी हल्का था और सीखने के लिए भी आसान था। नोबेल पुरस्कार विजेता गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस वाद्य का विरोध किया क्योंकि यह वाद्य पश्चिमी स्वरों के आधार पर निर्मित हुआ था इसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए उपयुक्त गुण उपलब्ध नहीं थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के कथन पर ऑल इंडिया रेडियो ने 1 मार्च 1940 को भारतीय प्रसारण सेवा जो आकाशवाणी का पूर्ववत नाम था, ने हारमोनियम का आकाशवाणी से प्रसारण पूरी तरह से बंद करा दिया। यह प्रतिबंध 30 वर्षों तक चला। अंत में पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी के निकटतम व्यक्ति कहे जाने वाले सूचना प्रसारण मंत्री श्री बी.सी. केसकर के सत्प्रयासों से सन् 1970 से हारमोनियम का प्रसारण पुन: प्रारंभ हुआ। आज हारमोनियम पूरी तरह से एक स्थापित वाद्य है। इसको प्रतिष्ठा दिलाने में मुख्य रुप से भैया गणपत राव, पंडित अप्पा जलगांवकर, पंडित पुरुषोत्तम वालाबलकर, पंडित मनोहर चिमोटे, पंडित भीष्म देव बेदी, पंडित गोविंद राव पटवर्धन, पंडित तुलसीदास बोरकर, पंडित आर.के. बीजापुर, पंडित गोविंद राव टेंबे, पंडित ज्योति गुहा, पंडित सोहनलाल शर्मा, पंडित पी. मधुकर, पंडित बच्चू भाई भंडारे, पंडित बंधु भैया चौगुले, पंडित जयराम पोतदार, उस्ताद मेहमूद धौलपुरी, उस्ताद भूरे खाँ आदि विद्वानों के कठिन परिश्रम से

हारमोनियम पूर्ण विकसित वाद्य रुप में विकसित हो रहा है। यह हमारे इन गुरुजनों का ही योगदान है। युवा पीढ़ी के हारमोनियम वादकों में आज प्रचुर सम्भावनायें दिखाई देती हैं जो इस वाद्य की प्रतिष्ठा में निरन्तर वृद्धि करेंगे।

बाजत है मधुर साज़, जन - जन हिय करत राज,
संगत में खूब बजत, जानिये संवादिनी ।।1।।
दूर देश प्रकट भई, रसिकन ने हाथ गही,
घर - घर में सोह रही, मधुर धुन सम्वादिनी ।।2।।
सुगम होय या शास्त्रीय, लोक में हरत जीय,
ताल वाद्य संग बजत, जन जानें संवादिनी ।।3।।
सोहे विविध रुप रंग, चेंजर सफरी वृहद अंग,
महफिल में राज करत, मधुर धुन संवादिनी ।।4।।
गनपतराव अप्पा जी, तुलसीदास, सोहन लाल,
भूरे खाँ, चिमोटे जी, दी पहचान संवादिनी ।।5।।
नौटंकी, नाटक में, सांग और रसिया में,
गली, सड़क, मंदिर में, बाजत संवादिनी ।।6।।
फर्श से अर्श तलक, छाय रह्यों ये ही साज़,
बाल युवक गुनियन संग, राजत संवादिनी ।।7।।
'ब्रजरंग' बरनों न जाय, हियरा अत ही लुभाय,
संगीत को खास साज़, सुमधुर संवादिनी ।।8।।

अवनद्ध वाद्य -

अवनद्ध वाद्य वे वाद्य होते हैं जो खाल या चमड़े से मढ़े होते हैं। आजकल कुछ वाद्यों में चमड़े के स्थान पर प्लास्टिक का उपयोग भी होने लगा है। अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग मूल रूप से ताल देने के लिये होता है। इन वाद्यों को हाथ या लकड़ी से बजाया जाता है। ये वाद्य लकड़ी अथवा मिट्टी से निर्मित होते हैं। अवनद्ध वाद्य सबसे प्राचीन वाद्य हैं। भगवान शंकर के हाथ में डमरू इस बात का सशक्त प्रमाण है। जब सभ्यता का उदय हुआ, आदि मानव जंगलों में निवास करता था। जानवरों का शिकार करता था। शिकार के पश्चात वह उसी जानवर की खाल को किसी खोखली लकड़ी पर मढ़ना सीख गया और उसे लकड़ी या हाथ से बजाना भी सीख गया। सब मिलजुलकर उसे बजाते थे और उसका आनंद मनाते थे। धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार के ढोल इत्यादि ताल वाद्यों का सृजन हुआ और लोक संस्कृति के विकास के साथ विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का विकास हुआ। राजा महाराजाओं के शासनकाल में इन वाद्यों का खूब प्रयोग हुआ और दुंदुभी, भेरी, आवज, दमामा, नगाड़ा, आलिंग्य, ताशा, ढोलक, ऊर्ध्वक, हुडुक्का, मर्दल, मादल, मृदंगम, चेंडा आदि अनेकों वाद्यों का जन्म हुआ। अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख नाट्य शास्त्र, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में भी मिलता है। इन वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य की संगति में विशेष रूप से होता है। कुछ अवनद्ध वाद्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है -

1. पखावज -

बाजत है मृदंग वाद्य, नाच रहीं अप्सरा,
तीन लोक नाद छायो, धाकिटतक धुमकिटतक धा-तधा-
थाप मृदंग अति सुरंग, देव गंधर्व गान करत,
मुदित नटराज आज, नृत्य करत मधु भरा ।।1।।
ब्रह्मा ने रच्यो साज़, झूमत है प्रकृति आज,
चर्म आच्छादित कर्यों, कनक चूर्ण है धरा ।
तूर्य वीणा संग बजत, देवन को हियरा हरत,
नारद हू मुदित होत, आनन्द रस है झरा ।।2।।
दोऊ पाख बाजत है, धुरपद हू गावत है,
रसिकन रिझावत है, नाद होत मद भरा ।
गणेश बजरंगबली, अनेक देव बजाई है,
अर्जुन हू निपुण वाद्य, बजावत है हिय भरा ।।3।।
पखावज कहत गुनी, मृदंग वाद्य उपजी है,
पणव के पटाक्षर ने, मृदंग शास्त्र है वरा ।
सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलयुग हू बाज रही,
कहत 'ब्रजरंग' मृदंग, वाद्य है अति खरा ।।4।।

पखावज एक प्राचीन काल वाद्य है। इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा जी द्वारा हुई है। पखावज को सर्वप्रथम गणेश जी ने बजाया है ऐसे अनेकों प्रमाण मिलते हैं। चूंकि यह मिट्टी से निर्मित था इसलिये इसका नाम मृदंग पड़ा। यह ध्रुपद - धमार गायन शैली के साथ बजने वाला उपयुक्त वाद्य है। भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र में सर्वप्रथम मृदंग का वर्णन त्रिपुष्कर वाद्य के रुप में मिलता है। त्रिपुष्कर वाद्य के तीन भाग थे - आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्न। ऊर्ध्वक और आलिंग्न खड़े हुये वाद्य थे तथा आंकिक को गोद में लेकर बजाया जाता था। यही आंकिक कालांतर में विविध परिवर्तनों के पश्चात मृदंग कहलाया।

पखावज शब्द पक्ष और आवज से मिलकर बना है, जिसका तात्पर्य है दोनों पक्षों से बजने वाला वाद्य। आज पखावज पूरे देश में प्रचलित है। दक्षिण भारत में इसे मृदंगम के नाम से जाना जाता है। आज इसके अनेकों घराने तथा शैलियाँ हैं जिनमें कोदऊ घराना, पर्वत सिंह घराना, नाना पानसे घराना, मक्खन पखावजी का घराना आदि। वर्तमान समय के प्रसिद्ध पखावज वादकों में पंडित पर्वत सिंह, पंडित माधव सिंह, पंडित विजय सिंह, पंडित कोदऊ सिंह, स्वामी पागल दास, मक्खन पखावजी, पंडित अयोध्या प्रसाद, पंडित तोताराम शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

2. तबला –

साधक जानि लेओ तबला ।
गायन, वादन, नृत्य न होवे, मानत गुनी भला ।
प्राचीन काल प्रकट्यो पुष्कर ते, आज बन्यो है बला ।।1।।
ताल शास्त्र विकस्यो तबला ते, गुनियन अजब ढला ।
तबला बिना संगीत अधूरा, छः छः घरन पला ।।2।।
ख्याल, भजन, ठुमरी अरु टप्पा, गज़ल में बहुत चला ।
बिन तबला कोऊ नहीं पूछे, अधूरी तीनों कला ।।3।।
दिल्ली, अजराड़ा अरु लखनऊ, फर्रुखाबाद में पला ।
बनारस और पंजाब बढ़्यो है, कहत 'ब्रजरंग' लला ।।4।।

तबला आज सर्वाधिक प्रचलित ताल वाद्य है। तबला शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, फिल्म संगीत, लोक संगीत आदि सभी जगह समान रूप से अपना विशेष स्थान रखता है। तबले की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का मत है कि पखावज के दो टुकड़े करने से तबले की उत्पत्ति हुई है, परंतु लेखक का मत है कि त्रिपुष्कर वाद्यों में ऊर्ध्वक से इसका जन्म हुआ है। आज का तबला ऊर्ध्वक का परिष्कृत रुप है।

कुछ विद्वानों का मत है कि इसका अविष्कार 13वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि संगीतज्ञ अमीर खुसरो ने किया है परन्तु यह तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। 13वीं शताब्दी से पूर्व तबले के स्वरुप जैसे ताल वाद्यों के भित्ति चित्र अनेकों गुफाओं में देखने को मिलते है।

आज तबले की अनेकों शैलियों प्रचलित हैं जिनमें 6 घराने – दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फर्रुखाबाद, बनारस और पंजाब आदि प्रमुख हैं। तबले के दो भाग होते हैं जिन्हें दाँया या तबला और बाँया या डुग्गा कहते हैं। तबले को प्रसिद्धि दिलाने में पंडित सामता प्रसाद गुदई महाराज, पंडित किशन महाराज, उस्ताद अल्ला रक्खा, उस्ताद हबीबुद्दीन खान, उस्ताद जाकिर हुसैन, पंडित आनंद गोपाल बन्धोपाध्याय, पंडित विक्रम घोष, पंडित शंकर घोष, उस्ताद इनाम अली, पंडित सुरेश तलवलकर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

2. ढोलक –

ढोलक बाज रही मतवाली ।
बजत कहरवा धागेनाती नकधिन, कबहुँ ताल अरु खाली ।
नर नारी सब नाचत गावत, रसिक बजावत ताली ।।1।।
बजत मंजीरा टिंनक टिंनक, संग देत खुशहाली ।
शामिल बाजे बजत और संग, हरष देत चहुँ आली ।।2।।
आदिकाल उपजी या जग में, लोक सुगम मनभाली ।
मुंडन व्याह अरु जन्म मरण में, नित ही बजत धुमाली ।।3।।
रखी रहत जब घर मंदिर में, दीसत भोली भाली ।
कहें 'ब्रजरंग' जब बजत रातभर, खूब करत रखवाली ।।4।।

ढोलक लोक जीवन का प्रमुख वाद्य है। यह भी एक पुराना वाद्य है। आज ढोलक के अनेकों स्वरूप देखने को मिलते हैं। यह देखने में पखावज जैसी ही लगती है परंतु इसमें स्याही नहीं लगी होती। इसका प्रयोग मूल रूप से लोक संगीत, सुगम संगीत, फिल्म संगीत, भजन, कीर्तन, कव्वाली आदि में प्रमुख रूप से होता है। ढोलक लकड़ी की बनी होती है। इसके दोनों मुखों पर चमड़ा मढ़ा होता है जो डोरी या रस्सी से बंधा। ढोलक एकमात्र ऐसा साज़ है जो घर-घर, गाँव-गाँव, गली-गली, मंदिर, गुरुद्वारे आदि सभी जगह मिल जाती है।

3. ढोल –

ढोल ढोलक का वृहद रूप है। ढोल देश के कोने-कोने में बजने वाला वाद्य है। प्रादेशिक रुप से इसके आकार प्रकार में भिन्नता देखने को मिलती है। आमतौर पर ढोल मांगलिक उत्सव, तीज-त्यौहार, विशिष्ट आयोजनों, शादी-विवाह, भजन-कीर्तन आदि में देखने को मिलता है। यह जन साधारण का वाद्य है।

4. नाल –

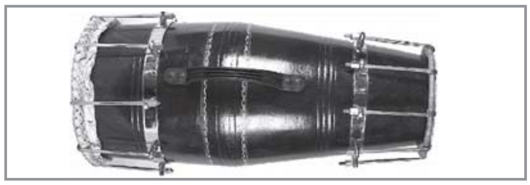

नाल ढोलक और तबले का मिश्रित स्वरूप है। यह ढोलक की तरह दोनों ओर से बजाया जाता है। इसमें दाई ओर की खाल पर स्याही लगी होती है और बाई ओर ढोलक की तरह मसाला लगा होता है। नाल में डोरी या रस्सी की जगह लोहे के पेच लगे होते हैं। नाल का प्रयोग मुख्य रूप से सुगम संगीत और फिल्म संगीत में होता है। लावणी नृत्य में नाल की संगत उपयुक्त मानी जाती है।

5. नगाड़ा –

नगाड़ा दो भागों में होता है। एक छोटा और एक बड़ा। दोनों ही भाग चमड़े से मढ़े होते हैं। नगाड़ा दो लकडियों से बजाया जाता है जिसे चोब कहते हैं। नगाड़े का प्रयोग मूल रूप से रामलीला, रासलीला, नौटंकी, भगत, साँग, रसिया आदि में विशेष रुप से होता है। इसका प्रयोग लोक संगीत में भी अक्सर देखने को मिलता है। आज यह वाद्य विलुप्तीकरण के कगार पर है जिसका मूल कारण इसका विशाल स्वरूप है। नगाड़े के छोटी नगाड़ी को बार-बार सेककर बजाया जाता है। इसलिये इस वाद्य में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हरियाणा में नगाड़ा वादकों ने इसमें काफी परिवर्तन किये हैं और छोटे-छोटे नगाड़े बनाये है। आज ये छोटे नगाड़े हरियाणा में खूब प्रचलित हैं। ये लाने ले जाने में भी सुलभ हैं तथा छोटी नगाड़ी में खाल के स्थान पर प्लास्टिक का उपयोग

किया जाने लगा है जिससे उसे सेकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अधिकांश हरियाणवी कार्यक्रमों में नगाड़ा प्राय: देखने को मिल जाता है। वर्तमान सुप्रसिद्ध नगाड़ा वादकों में तिरमोहन, उस्ताद रशीद खान, उस्ताद अन्न खान आदि का नाम उल्लेखनीय है।

घन वाद्य –

घन वाद्य वे वाद्य होते हैं जो किसी धातु, मिट्टी अथवा लकड़ी आदि से बने हों। इनका स्वतंत्र प्रयोग बहुत ही कम दिखाई देता है। ये वाद्य प्राय: अन्य किसी दूसरे ताल वाद्यों के साथ बजाते हुये देखे जा सकते हैं। इन वाद्यों में घन्टा, घड़ियाल, चिमटा, थाली, मंजीरा, खड़ताल, झाँझ, घुँघरु, गोंग आदि वाद्य आते है। इन वाद्यों का उपयोग लोक संगीत, सुगम संगीत, भजन, कीर्तन, समूह गान आदि में दिखाई देता है। असम, नागालैंड, मेघालय आदि पूर्वोत्तर राज्यों में समूह नृत्य में बाँसों का उपयोग स्वतंत्र स्वरूप को दर्शाता है, परंतु अधिकांशत: ये वाद्य समूह गायन, वादन और नृत्य में देखे जा सकते है। घन वाद्य की श्रेणी में जलतरंग, नलतरंग, पट्टी तरंग, काष्ठ तरंग आदि वाद्य भी आते हैं जो धातु, मिट्टी, लकड़ी आदि के बने होते हैं। कुछ घन वाद्यों का वर्णन निम्नवत है:

1. जलतरंग:

जलतरंग चीनी मिट्टी के प्यालों से निर्मित वाद्य है। जलतरंग में प्यालों में पानी भरकर वादक स्वर स्थापित करके बजाते हैं। जलतरंग की तरह लोहे की पट्टियों से बना पट्टी तरंग, नल के पाइप के टुकड़ों से बना नल तरंग, लकड़ी के टुकड़ों से बना काष्ठ तरंग आदि देखे जा सकते हैं। आजकल इन वाद्यों का प्रयोग बहुत कम देखने को मिलता है। ये वाद्य संगीत की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में खरे नहीं उतरते। सम्भवत: इन्हीं कारणों से ये वाद्य विलुप्तीकरण की कगार पर है। जलतरंग वादकों में श्री घासीराम निर्मल, श्री जैन कुमार जैन, श्री राम स्वरुप प्रभाकर का नाम उल्लेखनीय है।

2. मंजीरा:

मंजीरा लोक संगीत, भाव संगीत, भक्ति संगीत आदि में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। दक्षिण भारत में मंजीरा का उपयोग शास्त्रीय संगीत में भी किया जाता है। मंजीरा विशेष रुप से पीतल, लोहा, कांसा आदि धातुओं से निर्मित होते हैं। इसके दो हिस्से होते हैं जो डोरी से बंधे होते हैं। मंजीरा छोटे, मध्यम और बड़े साइज आदि कई प्रकार के मिलते हैं जिनका उपयोग आवश्यतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। मंजीरा पुराना वाद्य होते हुये भी आज खूब प्रचलित है।

3. घुंघरु:

छूम छननन बाजे घूंघरवा ।
पग पैंजनी बाजी कान्हा के, रघुवर मनहरवा ।।1।।
रम्भा, मेनका, उर्वशी नाचीं, देवन मन्दरवा ।
सुर, नर, मुनि रीझे घुंघरु पे, जानत गुनिजनवा ।।2।।
राजा महाराजा दरबारन, नाचे नर्तक वा ।
घुंघरु पहिर मगन भई मीरा, छाँड्यो निज घरवा ।।3।।
अर्जुन ब्रहन्नला बनि नाच्यो, विराट प्रासादनवा ।
नृत्य विविध उपजे घुँघरु संग, बरनत 'ब्रजरंग'वा ।।4।।

घुंघरु नृत्य का महत्वपूर्ण अवयव है। घुंघरु के बिना नृत्य का आनन्द अधूरा माना जाता है। घुंघरु प्राय: पीतल के होते हैं, लेकिन कांसे और लोहे के घुंघरु भी यदा कदा देखने को मिल जाते हैं। घुंघरु दो और चार मुँह के होते हैं। ये विभिन्न साइज के देखे जा सकते हैं। सबसे छोटे घुंघरु पाजेब और करधनी में जड़े होते हैं। मध्यम वर्गीय घुंघरु नृत्य में उपयोग होते हैं। शास्त्रीय नृत्य में प्राय: चार मुँह बाले घुंघरु ही प्रचार – प्रसार में हैं। बड़े-बड़े घुंघरु लोक नृत्यों में प्रयोग किये जाते है। लोक जीवन में बड़े बड़े घुंघरु पशुओं के गले में भी बाँधे जाते हैं।

4. खड़ताल:

लोक जीवन में खड़ताल का प्रयोग अक्सर देखा जा सकता है। खड़ताल प्राय: भजन, कीर्तन, सत्संग आदि में बजने वाला वाद्य है। आजकल इसे विद्यालयों के कार्यक्रमों में छोटे छोटे बच्चों द्वारा भी बजाते हुये देखा जा सकता है। यह लकड़ी का बना होता है जिसमें पीतल या लोहे की मंजीरे जैसी गोल गोल चकरियाँ लगी होती हैं जो अपनी मधुर धुन प्रदान करती हैं। इसे एक हाथ या दोनों हाथों से बजाया जाता है।

5. चिमटा:

चिमटा लोक संगीत का प्रमुख वाद्य है। इसे प्राय: लोकगीत, भजन, कीर्तन, सत्संग आदि में बजते हुये देखा जा सकता है। साधु संत भी प्राय: इसे अपने साथ रखते हैं। यह प्रत्येक मठ, मंदिर, गुरुद्वारे में आसानी से उपलब्ध है। यह लोहे का बना होता है तथा घरेलू चिमटे से काफी बड़े आकार का होता है। इसकी दोनों टाँगों में गोल गोल चकरी जैसी लगी रहती हैं जो अपनी विशेष ध्वनि प्रदान करती है। भारतीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले अनगिनत वाद्यों को इस आलेख में प्रस्तुत करना एक दुरुह कार्य है। वाद्यों की चारों श्रेणियों का संक्षिप्त वर्णन और कुछ वाद्यों का सचित्र और साधारण विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आशा है कि विद्यार्थी, संगीत प्रेमीजन, शोधार्थी एवं जिज्ञासु इस आलेख से लाभान्वित होंगे।

लेखक: विद्वान संगीतकार हैं।
संपर्क : 353, भूतल, सूर्य नगर फेस – 2, सेक्टर – 91, फरीदाबाद – 121013
हरियाणा सम्पर्क – 9999539998, 9868361132

■

गोण्ड जनजाति समूह के वाद्य

लक्ष्मीनारायण पयोधि

जनजातीय परंपरा में संगीत सहज जीवनशैली का अभिन्न अंग है। यह उल्लास अथवा दुख की अभिव्यक्ति का ही नहीं, वरन् श्रम की थकान को आनंद में संतरित करने का स्वभावगत उपक्रम भी है। मन की तरंगें जब शब्द का रूप धारण करती हैं तो संगीत अपनी लय-ताल के साथ उस गीतात्मक अभिव्यक्ति का सहचर बन जाता है। इस समस्त उद्यम में निसर्ग की प्रेरणा प्रमुख होती है। हम कह सकते हैं कि संगीत की उत्पत्ति सृष्टि के कार्य-व्यापार से ही हुई है। हवा के वेग और जल के प्रवाह से उत्पन्न स्वर-लहरियाँ, बादलों का गर्जन, बिजली की चमक, वर्षा की टिप-टिप-छन-छन, खगदल और पतंगों की लयबद्ध उड़ान, वृक्षों और फ़सलों का झूमना - ये सब संगीत और नृत्य के प्रेरक तथा उत्पत्ति के कारक रहे होंगे।

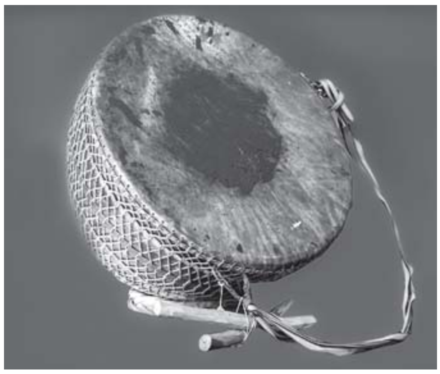

गोण्ड जनजाति समूह के लोग आदिम युग से ही प्रकृति के निकट रहते आये हैं। अत: सृष्टि के लय-ताल उनकी रग-रग में रक्त के साथ संचरित होते हैं। आदिम मनुष्य निसर्ग की लीलाओं पर जब-जब मुग्ध हुआ होगा, उसने अपनी देह के किसी अंग से आनंद को व्यक्त किया होगा - उछलकर, ताली बजाकर, किलकारी मारकर या सीटी बजाकर। इसी प्रकार नृत्य-संगीत की तीनों क्रियाओं का आविष्कार हुआ होगा-उछलने से नृत्य का, ताली बजाने से ताल का और किलकने या मुँह से सीटी बजाने से गायनकला का। ये तीनों ही क्रियाएँ मनुष्य की आनंदानुभूति की चरमावस्था और उसकी परम अभिव्यक्ति हैं।

संगीत और नृत्य का परस्पर रागात्मक संबंध है। सृष्टि में उपस्थित लय ने मनुष्य को अनुकरण की प्रेरणा दी है। लय का अनुकरण ही संगीत की सृष्टि का मूल स्रोत है। मनुष्य ने सृष्टि से नाद की विभिन्न शैलियों के आरोह-अवरोह को आत्मसात कर अपनी कल्पना से उन्हें संगीत की लय-ताल और राग-रागिनियों में रूपांतरित किया। कोया पुनेम (गोण्ड समुदाय) के पुरखों ने पशु-पक्षियों और कीट-पतंगों की स्वर-भंगिमाओं, देह- मुद्राओं, पत्थर और धातुओं की टकराहट एवं घर्षण तथा निसर्ग की स्वाभाविक क्रिया-प्रतिक्रियाओं से नृत्य-संगीत की परिकल्पना को साकार किया होगा। उन्होंने बादलों के घोर-गंभीर गर्जन सुन-सुनकर डमरू, डहकी, रूँजा, ढोल, मादल, मृदंग, गुदुम, नगाड़े, टिमकी-तुड़बुड़ी, डफ, खड़ताल आदि अवनद्ध वाद्यों को आकार दिया होगा। तड़ित (बिजली) की चमक और कड़क की ध्वनियों से प्रेरित होकर घंटी, घंटे, चिमटा, झाँझ, मंजीरे, ठिसकी, चटकोला या चुटकुला, कठकोला, कुंडीड (कुंडी), घुंघरू जैसे घन वाद्य बनाये होंगे। गोण्ड बताते हैं कि सूखी फलियों की छन-छन से घुंघरुओं के निर्माण की प्रेरणा मिली। बाँसवन में प्रवाहित हवा की स्वर-लहरियों ने बाँसुरी, अलगोजा, शहनाई, मोहरी, तोड़ी, मऊहर (बीन), रमतूला आदि सुषिर वाद्यों की कल्पना को जन्म दिया। गोण्डों ने आखेट के लिये प्रयुक्त धनुष की प्रत्यंचा से उत्पन्न टंकार को सुनकर ही बाना, चिकारा, किंदरी, कीकरी, (किन्नरी), जंतूर, तमूरा (तम्बूरा), धनुकुल आदि तत् (तंत्री) वाद्यों को आकार दिया। कुछ विद्वान संगीत की उत्पत्ति आखेटप्रिय जनजातियों के अस्त्र-शस्त्र (औज़ारों) से मानते हैं। धनुष की प्रत्यंचा की झंकार से प्रेरित वाद्य इसके उदाहरण हैं। अध्येता संगीतज्ञ भी आधुनिक सारंगी को जनजातीय वाद्य 'रेगड़ी' का परिष्कृत रूप मानते हैं। अंतर केवल इतना है कि 'रेगड़ी' की सीमा सिर्फ़ तीन या चार स्वरों तक है, जबकि 'सारंगी' का स्वर-विस्तार तीनों सप्तक तक होता है। शास्त्रीय वाद्य 'चन्द्र सारंग' भी आदिवासी वाद्य 'सारिन्दा' का विकसित रूप माना गया है।

अनेक प्रयोगधर्मी संगीतज्ञों ने नवाचार करते हुए न केवल परंपरागत आदिवासी धुनों का शास्त्रीय और उपशास्त्रीय संगीत के मानदण्डों के आधार पर परिष्कार कर उनके अनुरूप बनाया है, बल्कि पारंपरिक वाद्यों को भी उपयोग के योग्य बनाकर उन्हें लोकप्रिय वाद्यों की जमात में शामिल किया है। कुछ आदिवासी वाद्य इस वजह से छूट गये, क्योंकि वे पारंपरिक जनजातीय गीतों के अनुरूप तीन या चार स्वरों तक ही सीमित हैं, जबकि शास्त्रीय रागों में सप्तस्वरों का प्रयोग होता है। यद्यपि अधिकांश गोण्डी गीतों में पाँच स्वरों तक प्रयोग किये गये हैं। इसलिये इनमें शास्त्रीय रागों की छाया का आभास भी होता है। कई संगीतज्ञ यह मानते हैं कि ऐसे जनजातीय स्वर-संगतियों अथवा स्वर समूहों से ही

राग-रचना प्रारंभ हुई है। इन जैसे स्वर समूहों का विस्तार कर सप्तक (सात स्वर) में ढाला गया और उनका नामकरण कर उन्हें राग विशेष की श्रेणी में रखा गया। इन्हीं आधारों पर संगीतज्ञ मानते हैं कि सारी शास्त्रीय अथवा उपशास्त्रीय राग-रागिनियाँ आदिम संगीत की बुनियाद पर खड़ी हैं।

शास्त्रज्ञ कोहल के अनुसार नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज नामक पाँच प्रमुख ध्वनियाँ होती हैं। इस सिद्धांत के आलोक में विचार करें तो गोण्ड समुदाय के पारंपरिक तत् (तंत्री) वाद्य बाना, कीकरी, चिकारा, जंतूर तमूरा आदि नखज, बाँसुरी, अलगोजा, शहनाई, मोहरी, मऊहर (बीन) आदि सुषिर वाद्य वायुज, ढोल, मादल (माँदर), डहकी, डमरू, डफ, नगाड़ा, टिमकी आदि अवनद्ध (पुष्कर) वाद्य चर्मज, झाँझ, मजीरा, कुण्डीड, चटकोला (चुटकुले) आदि घन (ताल) वाद्य लोहज और कंठध्वनि यानी गायन, करतल (ताली), सीटी आदि शरीरज हैं।

आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में वाद्यों को चार वर्गों में बाँटा है : (1) तत् (2) अवनद्ध (3) घन (4) सुषिर। इसका उल्लेख इस प्रकार है :

''ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेय मतातोद्यं लक्षणात्वितम्।।''(28/1)

आचार्य भरतमुनि ने चारों प्रकार के वाद्यों के लक्षणों को भी स्पष्ट किया है :

ततं तन्त्रोकृतं ज्ञेय भवनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्चयते।।(28/3)

अर्थात् तत् तंत्री वाद्य, अवनद्ध पुष्कर वाद्य, घन ताल वाद्य और सुषिर वंशी वाद्य हैं। ऊपर हम गोण्ड समुदाय के पारंपरिक वाद्यों को वर्गानुसार भरतमुनि द्वारा उल्लिखित लक्षणों की कसौटी पर कस चुके हैं।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय, विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में वाद्य के लिये दो और शब्द मिलते हैं-वादित्र और आतोद्य। वाद्य शब्द की व्युत्पत्ति 'वद्' धातु में 'यत्' प्रत्यय लगाने से हुई है। इसी प्रकार 'वद्' धातु में 'णित्रन्' प्रत्यय लगाने से 'वादित्र' शब्द बना। वादित्र शब्द प्रमुख रूप से तत् यानी तंत्री (तार वाले) और सुषिर यानी फूँककर बजाने वाले वाद्यों के लिये प्रयुक्त होता आया है। 'आतोद्य' शब्द चारों ओर से ताड़न यानी पीटने की क्रिया के कारण प्रचलित हुआ। यह उक्ति इस तथ्य की पुष्टि करती है - 'आसमंतात् तुद्यते ताड्यते-इति आतोद्यम्।' आतोद्य अवनद्ध (ताल) और घन वाद्यों को कहा जाता रहा, क्योंकि ये आघात से बजाये जाते हैं। बजाने की क्रिया के कारण गोण्ड जनजाति के लोग वाद्य को 'बाजा' कहते हैं। बस्तर के मुरिया गीत का एक अंश देखिये :

'गुड़दुम-गुड़दुम-गुड़दुम बाजा बाजीला गोरीलोक।
गुड़दुम-गुड़दुम-गुड़दुम बाजा बाजीला।

इस गीत में 'गुड़दुम-गुड़दुम' ध्वनि है। ध्वनि बजाने से उत्पन्न होती है। बोलने के लिये भी मुखतंत्र अथवा यंत्र को सक्रिय करना पड़ता है। बिना उचित बलाघात के ध्वनि शब्द में रूपांतरित नहीं होती। इसलिये वाद्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है - 'वदति इति वाद्यम्।' अर्थात् जो बोलता है, वह वाद्य है। वाद्य शब्द का सामान्य अर्थ 'वादनीय' यानी वादन करने योग्य, अर्थात् बजाने लायक है।

वाद्यों की उत्पत्ति से संबंधित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। गोण्ड जनजाति समूह के लोग शिव के डमरू को आदि वाद्य मानते हैं। अवनद्ध वाद्य डहकी, या ढाक, या ढक्का डमरू के ही बड़े रूप माने जाते हैं। गोण्ड यह भी मानते हैं कि गोण्डी भाषा की उत्पत्ति शंभूशेक के डमरूनाद से हुआ है। आदिगुरु दौगुन या मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो ने डमरू की ध्वनियों को पहचान कर गोण्डी भाषा की रचना की। गोण्डी के अनेक शब्द डमरू के शब्दों से मेल खाते हैं। इसलिये गोएंदाडी(डमरू)वानी कहा गया, जो कालांतर में गोंडवानी कहलायी। डमरू की ध्वनियों से गोंडी शब्दों की रचना इस प्रकार की गयी-

डमरू ध्वनि में स्वर

अड़ंग, अड़ांग, इड़ंग, ईड़ांग, उड़ंग, उड़ांग, एड़ंग, ऐड़ांग, ओड़ंग, औड़ांग, अडंग, अड्डांग

गोण्डी-स्वर

अरं, अरां, इरं, ईरां, उरं, उरां, एरं, ऐरां, ओरं, औरां, अंगे, अडंगा

हिन्दी-स्वर

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः

डमरू ध्वनि में व्यंजन

कड़ंग, खड़ंग, गडंग, घड़ंग, अंगडा
चड़ंग, छड़ंग, जड़ंग, झड़ंग, भगंडा
टड़ंग, ठड़ंग, डड़ंग, ढड़ंग, ढड़ंगा
तड़ंग, थड़ंग, दड़ंग, धड़ंग, नगंड़ा
पड़ंग, फड़ंग, बड़ंग, भड़ंग, मड़ंग,
यड़ंग, रड़ंग, लड़ंग, वड़ंग, शगड़ा

षड़ंग, सड़ंग, हड़ंग, डंग, श्रंग, ज्ञंग इसी प्रकार डमरू की ध्वनियों के अनुरूप गोण्डी की गिनती भी है, जैसे-उंडूंग (उंदी, 1), रंडूंग (रंड, 2), मंडूंग (मूंद, 3), नालूंग (नालूंग, 4), संडूंग (संयुंग, 5) आदि।

बस्तर में प्रचलित युवा संस्कार गृह 'घोटुलगुड़ी' के अधिष्ठाता लिंगोपेन माने जाते हैं। मुरिया (गोण्ड की एक शाखा) समुदाय का विश्वास है कि लिंगो ही समस्त वाद्यों और रागों का सर्जक है। इसी विश्वास के साथ मुरिया युवा घोटुलगुड़ी में नृत्य-संगीत का अभ्यास करते हैं। बस्तर के सेमुरगाँव में लिंगोपेन की गुड़ी (मंदिर) है। एक कथा के अनुसार 'पूर्वकाल में पृथ्वी पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे। इनमें से एक 'तूर्यांग' था, जो तुर, तुरीय, तूर्य शब्दों का समानार्थी है। मान्यता के अनुसार इसी कल्पवृक्ष से मनुष्य को चार प्रकार के वाद्य प्राप्त हुए।

मानव विकास के जिस कालखंड का इतिहास उपलब्ध नहीं है, उसे अंधकार-युग माना जाता है। ऐसे कालखंड को इतिहास और

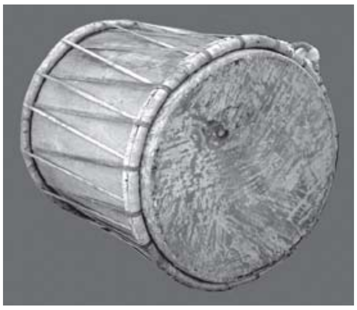

पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा चार भागों में बाँटा गया है :

(1) पूर्व पाषाणकाल (2) उत्तर पाषाणकाल (3) ताम्रयुग (4) लौहयुग। माना जाता है कि पाषाणकाल में मनुष्य पत्थरों से औज़ार बनाकर उनका उपयोग करना सीख गया था। इसी प्रक्रिया में उसे संगीत का ज्ञान भी हो गया। उत्तर पाषाणकाल में मानव कुछ और सभ्य हुआ। उसने संगीत और चित्रकला का परिष्कार तथा कुछ नयी खोजें कीं। ताम्रकाल में मनुष्य ने सामाजिक व्यवस्था में रहते हुए पारस्परिकता और निर्भरता को समझ लिया था। इस युग में संगीत और अन्य कलाओं के अनुशासन पर भी काम किया गया। संगीत का उपयोग देवाराधना में होने लगा। परधान (पठारी) गोण्ड यह मानते हैं कि संगीतप्रिय पड़ापेन (बड़ादेव/महादेव) ने साज या साजा वृक्ष के नीचे बाना बाजा देकर कहा था कि 'तुम (परधान) बजाओगे तो ही मैं प्रसन्न होऊँगा!' इसलिये परधान गोण्ड बाना को अनुष्ठानपूर्वक पूरी आस्था के साथ बजाते हैं। लौहयुग में मानव-सभ्यता अपने शिखर पर पहुँच गयी थी। संगीत का प्रयोग अनुष्ठान, पर्व-त्योहारों से लेकर संस्कार और सभाओं तक होने लगा। यह आनंद की अभिव्यक्ति और मनोरंजन का सबसे आकर्षक और प्रभावी माध्यम बन गया।

वैदिककाल में दुंदुभि, भूदुंदुभि, बाण, नाली, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग, आधारि आदि वाद्य प्रचलन में आ चुके थे। ऋग्वेदकाल में तंत्रीवाद्य वीणा के रूपाकार और तारों की संख्या के आधार पर अनेक प्रकार आविष्कृत हुए, जैसे-वीणा, काण्डवीणा, पिंछोला, कर्करिका, अलाबु वक्री, शततंत्री (संतूर) आदि। वैदिक साहित्य में शिव के डमरू, सरस्वती की वीणा, विष्णु के मृदंग, इन्द्र के वेणु, ब्रह्मा के करताल, नारद के तम्बूरे का उल्लेख मिलता है। रामायणकाल में अन्य वाद्यों के साथ मृदंग का प्रचलन बढ़ा। महाभारतकाल में कृष्ण की बाँसुरी और शंख जैसे वाद्य लोकप्रिय हुए।

प्राय: सभी मनीषियों ने यह माना है कि प्रकृति का वास्तविक और भव्य स्वरूप लय में प्रकट होता है। प्रकृति को नटी कहा गया है। उसकी लय में ही नर्तन भी समाहित है। इसलिये प्रकृति की लाड़ली संतान कोयतूर यानी कोया पुनेम (गोण्ड समुदाय) के लोग भी अपने आदिदेव मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो के नटराज रूप का अनुसरण करते हुए नृत्य की विभिन्न मनोहारी शैलियों की रचना करते रहे हैं। नृत्य उल्लास की अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम है। गोण्ड जब करमा, शैला, बिरहा, कहरवा, भड़ौनी, सुआ, सजनी आदि नृत्यों में तल्लीन होते हैं तो श्रम की थकान और जीवन के सारे परिचित-अपरिचित दुख अपना अस्तित्व भूलकर उनके आनंदोत्सव में शामिल हो जाते हैं। गोण्डों के नृत्यगीत की भाव-मुद्राएँ संगीत के प्रभाव के साथ चमत्कृत करती हैं। माँदर (मादल), ढोल, नगाड़ा, गुदुम, टिमकी, ठिसकी, चटकोले, कुंडीड (कुंडी), झाँझ, मजीरे, खरताल, (खड़ताल), मोहरी-शहनाई, बाँसुरी, अलगोझा, बाना, तमूरा (तंबूरा/इकतारा), चिकारा, किंदरी-कीकरी, जंतूर आदि पारंपरिक वाद्य गोण्ड स्त्री-पुरुषों के मन में उमंग, पाँवों में थिरकन और कंठ में नाद का संचार करते हैं।

कोयतूर यानी गोण्ड समुदाय का विस्तार भारत के विभिन्न राज्यों में है। इस आदिवासी समूह में अनेक सहजातियाँ भिन्न नामों से सम्मिलित हैं। भौगोलिक स्थितियों और परंपरा के अनुरूप इनके द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले वाद्यों के स्वरूप में अतंर पाया जाता है। हम यहाँ मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्य के गोण्ड जनजाति समूह के प्रमुख पारंपरिक वाद्ययंत्रों की वर्गवार यानी, तत् (तंत्री), अवनद्ध, घन और सुषिर की चर्चा करेंगे।

(अ) तत् (तंत्री) वाद्य : तंत्रियों अर्थात् तारों से युक्त वाद्यों को तत् वाद्य कहा जाता है। इन्हें उँगली, कोण या गज की सहायता से बजाया जाता है। गोण्ड समुदाय द्वारा प्रयुक्त इन वाद्यों को उनकी संरचना के आधार पर तत् वाद्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है :

(i) बाना : यह इस जनजाति समूह का प्रमुख वाद्य है। मान्यता के अनुसार 'पड़ापेन' ने पठारी यानी परधान को साजा वृक्ष के नीचे बाना दिया था। गोण्ड समुदाय का यह विश्वास है कि परधान द्वारा बाना बजाकर आह्वान करने पर पड़ापेन शीघ्र प्रसन्न होते हैं। खमार लकड़ी का खोखा बनाकर उसे गोह या बकरे के चमड़े से मढ़कर बाना तैयार किया जाता है। सारंगीनुमा इस वाद्य में बाँस या लकड़ी की खूँटियों की मदद से तीन या पाँच तार लगाये जाते हैं, जिन्हें खूँटियों से ही आवश्यकतानुसार कसा और ढीला किया जाता है। इसे बजाने के लिये एक छोटे कमान का प्रयोग किया जाता है, जिसकी प्रत्यंचा घोड़े के बालों से बनी होती है।इस वाद्य का वादन देवानुष्ठान और गाथा-गायन के लिये किया जाता है।

(ii) चिकारा : इसे कुछ लोग 'चिंकारा' या 'चिकाड़ा' भी कहते हैं। बस्तर के दण्डामी माड़िया इसे 'कीकिड़' कहते हैं। यह वाद्य लगभग दो फुट लम्बे सीधे और पोले बाँस के टुकड़े से बनाया जाता है। निचले सिरे पर लकड़ी का घट लगाकर उसे गोह के चमड़े से मढ़ा जाता है। ऊपरी सिरे पर दो या तीन खूँटियाँ होती हैं, जिनसे तीन या पाँच तार खींच कर नीचे बाँधे जाते है, जिनमें दोनों किनारे के तंत्रियों (तारों) के स्थान पर घोड़े की पूँछ के बाल प्रयुक्त होते हैं। बालों को गाद से रगड़कर कड़क बनाया जाता है। इसे कमान की प्रत्यंचा से ही रगड़कर बजाया जाता है, जिसमें घोड़े की पूँछ के बाल ही लगे होते हैं। यह अनूपपुर क्षेत्र के भिम्मा समुदाय का प्रमुख वाद्य है। बस्तर के मुरिया युवक किंदरी का प्रयोग प्राय: पूस पूर्णिमा को मनाये जाने वाले 'छेरता' पर्व पर टोली के साथ 'छेरता-गीत' के साथ करते हैं।

(iii) किंदरी : इसे किन्नरी, किनारी और किनेरी कहा जाता है।

अनूपपुर, मंडला, डिंडोरी, बैतूल, छिन्दवाड़ा क्षेत्रों में इसे केंदरी भी कहा जाता है। दो-तीन फुट पोले बाँस के टुकड़े के दोनों छोरों पर तूंबे के घट लगाये जाते हैं। ऊपर का घट छोटा और नीचे का बड़ा होता है। बाँस के आधार पर से दोनों घटों को पशु की नसों को सुखाकर बनायी गयी दो तंत्रियों से जोड़ा जाता है। तार बाँधने के लिये लकड़ी की खूँटियों का उपयोग किया जाता है। इसे भिम्मा (गोण्ड) समुदाय के लोग गाने के साथ बजाते हैं। बस्तर क्षेत्र में तारों के स्थान पर बाँस की पतली नसों का उपयोग भी किया जाता है। इसे उंगलियों के नखों से बजाते हैं।

(iv) कीकरी : यह वाद्य लगभग तीन फुट लम्बी लकड़ी को तराशकर बनाया जाता है। इसके निचले भाग में अनुनादक के रूप में कटोरानुमा तुम्मा (गोल लौकी का आधा कटा भाग) होता है, जिसे गोह के चमड़े से मढ़ा जाता है। ऊपर लकड़ी के गुटके रखकर तार कसे जाते हैं। इन्हीं गुटकों पर उंगलियाँ चलाकर सुर निकाले जाते हैं। बजाने के लिये एक डंडे में घोड़े की पूँछ के बालों को बाँधकर मधुमक्खी के छत्ते का मोम रगड़ा जाता है। डंडे में घुँघरू भी बाँधे जाते हैं, जो बजाते समय डंडे की गति के साथ छुनछुन करते हैं।

(v) जंतूर : यह वाद्य बैतूल क्षेत्र में अधिक प्रयुक्त होता है। इसकी संरचना भी कीकरी की तरह होती है। दोनों सिरों पर तूँबे के दो घट और खूँटियों से बँधे दो तार होते हैं। छोटी कमान में घोड़े के बालों की प्रत्यंचा चढ़ाकर घर्षण से इसका वादन किया जाता है।

(vi) सारंगी : अनूपपुर ज़िले के श्री शिवप्रसाद धुर्वे (ढुलिया) के अनुसार 'सारंगी की संरचना चिकारा जैसी ही होती है, किन्तु यह आकार में बड़ी होती है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई दोनों ही अधिक होती है। कुल सात या नौ तार लगाये जाते हैं, जिनमें से दोनों किनारे के तारों के स्थान पर घोड़े की पूँछ के बालों का उपयोग किया जाता है। इसे भी कमान से बजाया जाता है, जिसमें घोड़े की पूँछ के बाल लगाये जाते हैं। बालों में तनाव उत्पन्न करने के लिये माली वृक्ष की कोंपलों को मसलकर बनायी गयी गाद से रगड़ा जाता है। इससे बालों की झंकृति बढ़ जाती है।' रायसेन क्षेत्र में भी गोण्ड समुदाय द्वारा सारंगी वाद्य का उपयोग किया जाता है। गीतों के साथ सारंगी पर विलवारी, कहरवा, धिमरयायी आदि पारंपरिक धुनें बजायी जाती हैं। इस क्षेत्र में एक या डेढ़ फुट शीशम की सीधी लकड़ी को एक ओर घट का आकार देकर उस पर गोल डिब्बी लगायी जाती है, जिस पर से तार लाकर डण्डे वाले सिरे पर लगी खूँटी से बाँधकर कस दिया जाता है। इसे उँगलियों से बजाया जाता है।

(vii) ढुसिर : यह भी सारंगी कुल का ही वाद्य है। पोले बाँस के टुकड़े को नारियल खोल के अर्द्ध भाग से जोड़कर उसे गोहचर्म से मढ़ा जाता है। ढुसिर में घोड़े के बाल प्रयुक्त होते हैं। धनुष की प्रत्यंचा भी घोड़े के बाल से ही बनती है। यह बस्तर के मुरिया युवाओं का प्रिय वाद्य है।

(viii) डुमिर : इसका आधार मोटे तख्ते का होता है। आधार से बड़े तूम्बे के अनुनादक को जोड़ा जाता है। इस ढाँचे पर पीतल के दो तार कसे जाते हैं। डुमिर एक हाथ में गिटार की तरह रखकर दूसरे हाथ से बजाया जाता है। विवाह के अवसर पर इसका उपयोग किया जाता है।

(ix) तमूरा : इसे तंबूरा या तूमरा भी कहा जाता है। गोल लौकी (तूमा या तूंबा) के अनुनादक के कारण इसका नाम तूमरा या तमूरा पड़ा है। बाँस की पोंगली से तैयार इस वाद्य में एक तार लगे होने पर 'इकतारा' या 'रामबाजा' और तीन तार लगे होने पर 'टोयली'(मुरिया, बस्तर) कहलाता है। अनुनादक में मढ़े चमड़े पर तार की रगड़ से एक मिश्रित कर्णप्रिय ध्वनि उत्पन्न होती है।

(ब) अवनद्ध वाद्य : चमड़े से मढ़े वाद्यों को वितत् या अवनद्ध वाद्य कहा जाता है। ये पुष्कर वाद्य भी कहलाते हैं। इनका वादन हथेली, दण्ड (डंडे), चर्म या किसी अन्य ठोस के आघात से किया जाता है। ये विभिन्न आकार-प्रकार के हो सकते हैं।

(i) ढोल : सरई या बीजा वृक्ष के मोटे तने से दो, तीन या चार फुट काटकर उसे पोला किया जाता है। उसके दोनों सिरों को पशुचर्म से मढ़ा जाता है। दायाँ सिरा 'चनकार' और बायाँ सिरा 'गद' कहलाता है। चनकार को सिनकड़ी (बाँस की काड़ी) और गद को टेड़वा (लकड़ी की काड़ी) से बजाया जाता है। चनकार का चमड़ा पतला और गद का चमड़ा मोटा होता है। गद के चमड़े में 'मियान' (मधुमक्खी के छत्ते से बना मोम) लगाया जाता है, जिससे उसकी गूँज (ध्वनि) गंभीर हो जाती है। दोनों मुखों के पूड़ों को चमड़े की रस्सी से कसा जाता है। एक रस्सी गले में ढोल को लटकाने के लिये होती है। बैतूल, छिन्दवाड़ा, मंडला, डिंडोरी क्षेत्रों में ढोल का प्रयोग प्रमुख रूप से करपाड़ी, डंडार, शैला, करमा, बिरहा, भड़ौनी आदि विभिन्न नृत्यों में होता है। बस्तर के दण्डामी माड़िया बड़े ढोल का प्रयोग गौर (गवर) नृत्य में करते हैं। दण्डामी माड़िया देवानुष्ठान के अवसर पर 'पेन ढोल' बजाते हैं। पेन (देवता) को प्रसन्न करने के लिये बजाया जाने वाला यह ढोल आकार में छोटा (लगभग डेढ़ फुट) होता है।

(ii) माँदर : यह आकार और प्रकृति में ढोल और ढोलक से भिन्न वाद्य है। माँदर लकड़ी या मिट्टी के खोल को दोनों ओर से चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। इसका एक मुख चौड़ा और दूसरा सँकरा होता है। चमड़े को कसने के लिये बद्दी में चमड़े की रस्सी का उपयोग किया जाता है। मिट्टी के खोल का उपयोग किये जाने पर इस वाद्य को माटी माँदर कहा

जाता है। बस्तर के दण्डामी माड़िये नृत्य के साथ बड़े आकार के माँदल गले में लटकाकर दोनों हाथों से बजाते हैं। गोण्ड जनजाति समूह के अलावा बैगा, कोरकू, भील अगरिया आदि जनजातियों द्वारा भी इस वाद्य का प्रयोग किया जाता है। मान्यता के अनुसार घमसान देव को प्रसन्न करने के लिये यह वाद्य बजाया जाता है। करमा-शैला नृत्य का यह मुख्य वाद्य है।

(ii) टिमकी : इसे नगड़िया भी कहा जाता है। यह मिट्टी के पके हुए गहरे तसले (पैना) को बाँस की कमची (खपची)के सहारे चमड़े से मढ़कर बनाया जाता है। चमड़े को रस्सी से कसा जाता है। इसे कमर से बाँधकर बाँस की दो काड़ियों (कोला) से बजाया जाता है। 'तुड़बुड़-तुड़बुड़' ध्वनियों के कारण बस्तर क्षेत्र में इसे 'तुड़बुड़ी' कहा जाता है। इसका वादन नृत्य के समय ढोल के साथ विशेष रूप से किया जाता है।

(iii) माँदरी : यह एक शक्वाकार छोटा वाद्य है। यह माँदर का परिष्कृत रूप है। बस्तर के मुरिया इसे बजाते हुए एक आकर्षक नृत्य करते है, जिसे इस वाद्य की प्रमुखता के कारण माँदरी नृत्य कहा जाता है। यह

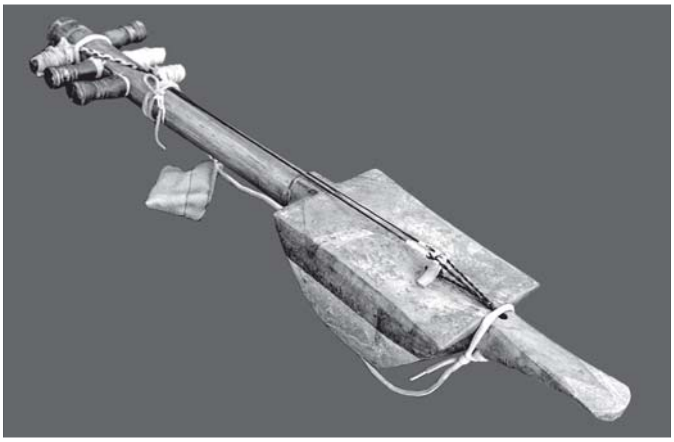

घोटुल युवाओं का प्रिय वाद्य है। बीजा, सिउना, महुआ, आम, या डूमर (गूलर) की लकड़ी के खोल को चमड़े से मढ़कर इसे बनाया जाता है। चमड़े को कसने के लिये सरदें बाँधी जाती हैं। चमड़े का गद वाला भाग लगभग दस इंच का तथा ताली वाला भाग लगभग सात इंच का होता है। इसे भी गले में लटकाकर दोनों हाथों से बजाया जाता है।

(iv) नगाड़ा : मिट्टी, लकड़ी, लोहे अथवा अन्य धातु के कटोरानमा बड़े खोल को चमड़े से मढ़कर नगाड़ा तैयार किया जाता है। यह जोड़ी वाद्य है। बायाँ 'टिन' (तारी) और दायाँ 'गद' कहलाता है। टिन की ध्वनि तीव्र और गद की ध्वनि मन्द्र होती है। तारी की ऊँचाई एक फुट और मुख का व्यास 14 से 16 इंच होता है। गद दो या सवा दो फुट ऊँचा होता है। इसके मुख का व्यास 16 से 18 इंच होता है। मुख के आकार का चमड़े का पूड़ा (पल्ली)बनाकर उसे रस्सी से कसा जाता है। यह एक प्राचीन वाद्य है। इसे नक्कारा भी कहा जाता है। आदिम जाति समुदायों द्वारा पूर्वकाल में इसका उपयोग सूचना-संदेश देने के लिये भी किया जाता था। एक ग्राम में कोई शुभ-अशुभ घटना घटने अथवा अन्य संकटकाल की सूचना आसपास के ग्रामों को नगाड़ा बजाकर दी जाती थी। अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं के लिये अलग-अलग प्रकार के ध्वनि-संकेत हुआ करते थे। युद्ध के समय योद्धाओं को उत्साहित करने अर्थात् उनमें जोश भरने तथा राजाज्ञा प्रसारित करने के लिये भी नगाड़े या दुंदुभि का उपयोग किया जाता था। वैदिककाल में भूदुंदुभि का प्रयोग भी आदिम समुदायों द्वारा किया जाता था। ज़मीन में गड्ढा खोदकर उसे वृषभचर्म से मढ़कर भूदुंदुभि वाद्य बनाया जाता था। इस वाद्य को वृषभ की पूँछ से बजाया जाता था। गोण्ड समुदायों द्वारा जन्म-विवाह, पूजा-अनुष्ठान, नृत्य आदि अवसरों पर मोहरी अर्थात् शहनाई के साथ नगाड़ों की जोड़ी (नर-मादा) का वादन किया जाता है। नगाड़े विभिन्न आकार के (छोटे-बड़े) होते हैं।

(v) गुदुम : यह भी नगाड़ा कुल का ही वाद्य है। गोण्ड समुदाय का यह एक प्रमुख वाद्य है। इसे लोहे अथवा पीतल के कटोरानुमा खोल में पका हुआ चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। चमड़ा कसने के लिये बद्दी लगायी जाती है। गूँज उत्पन्न करने के लिये राल और धूप को अरंडी तेल में मिलाकर चमड़े पर बीचोबीच लेप (गद) किया जाता है। इसे रबर की डंडियों से बजाया जाता है। पहले इसका उपयोग नृत्य के समय सहायक वाद्य के रूप में किया जाता था, परन्तु अब मण्डला, डिण्डोरी, अनूपपुर आदि क्षेत्रों के ढुलिया (गोण्ड की उपजाति) समुदाय द्वारा आविष्कृत आकर्षक गुदुम नृत्य में प्रमुख वाद्य के रूप में किया जाता है। इस नृत्य में प्रत्येक नर्तक द्वारा कमर में गुदुम बाँधकर अत्यंत उत्साहपूर्ण नृत्य की मोहक भंगिमाएँ रची जाती हैं। अब यह गोण्ड समुदाय का प्रभावी नृत्य बन गया है। इसके साथ शहनाई, टिमकी, बाँसुरी, डफ आदि वाद्यों का वादन किया जाता है।

(vi) तामक : तामक बस्तर के मुरिया समुदाय का वाद्य है। यह आकार-प्रकार में गुदुम जैसा होता है। यह लोहे अथवा लकड़ी के कढ़ाहीनुमा खोल में गोचर्म मढ़कर तैयार किया जाता है। गूँज के लिये चमड़े पर मध्य भाग में तेल और धूप मिश्रित लेप किया जाता है। तान के लिये चमड़े की बद्धी कसी जाती है। वादन के लिये रबर के दो बराबर डण्डों का उपयोग किया जाता है। तामक वाद्य परब नृत्य में पेन ढोल का सहायक होता है।

(vii)ढोलक : यह ढोल, मादल और मृदंग की तरह का वाद्य है। इसे साल, सागौन, आम, नीम, डूमर (गूलर) आदि की लगभग दो फुट लम्बी और आठ एवं दस इंच असमान व्यास की लकड़ी के खोल में दोनों ओर बकरे का चर्म मढ़कर बनाया जाता है। दोनों ओर के चर्म को कसने के लिये दोनों के बीच खोल के ऊपर से सलीके से रस्सी बाँधी (बद्दी) जाती है, जिसमें लोहे के छल्ले लगाये जाते हैं। खोल का गद वाला मुख बड़ा और दूसरा ताली वाला मुख छोटा होता है। यह भी शक्वाकार होता है। अर्थात् खोल का मध्यभाग ऊँचा होता है। यह प्रमुख रूप से गायन के

साथ ताल के लिये प्रयुक्त होता है।

(viii) डहकी : यह वाद्य डमरू जैसा (दोनों छोर यानी मुख बड़े और मध्यभाग सँकरा होता है। इसे लगभग एक फुट की लकड़ी के खोल से बनाया जाता है, जिसके दोनों मुख चमड़े से मढ़े होते हैं। ताल मिलाते हुए चड़े को कसने के लिये चमड़े की बद्दी का उपयोग किया जाता है। इसे चमड़े के पट्टे से कमर में बाँधकर हाथों से बजाया जाता है। डहकी आकार में डमरू से बड़ी होती है। बादी और ओझा (गोण्ड की उपजातियाँ) कलाकार पारंपरिक गायन में इसका उपयोग करते हैं। ओझा समुदाय का प्रमुख वाद्य होने के कारण बस्तर में इसे 'ओझापर्रा' कहा जाता है। लहकी नृत्य के समय घोटुल के चेलिक (मुरिया युवक) इसे उत्साहपूर्वक बजाते हैं। इसलिये इसे 'हुलकी माँदरी' भी कहा जाता है। भीली क्षेत्र में 'गायणा' इसे ढाक कहते हैं। इस वाद्य का उपयोग गाथा-गायन में अधिक किया जाता है। यह एक तरफ़ लकड़ी से और दूसरी तरफ़ हथेली से बजाया जाता है।

(ix) रूँजा : ढुलिया वादक शिवप्रसाद धुर्वे (ग्राम-बीजापुरी, ज़िला-अनूपपुर) ने बताया कि रूँजा डमरू कुल का एक पारंपरिक वाद्य है, जिसकी बनावट डहकी जैसी होती है। अंतर सिर्फ़ इतना है कि इसे एक ओर से बजाया जाता है। यह गोह या बकरी के चमड़े से मढ़ा होता है।

(x) मृदंग : सिवनी क्षेत्र के गोण्ड समुदाय की मान्यता के अनुसार होलिका-दहन पर पहली बार मृदंग बजाया गया था। इसलिये पारंपरिक रूप से इस वाद्य के साथ होली में फाग गाया जाता है। बीजा लकड़ी के लगभग 2 फुट लंबे खोल में दोनों ओर चमड़ा मढ़कर मृदंग बनाया जाता है। उत्तर-पूर्व और दक्षिण भारत के आदिवासी समुदायों द्वारा भी नृत्य के समय इसका उपयोग किया जाता है। मृदंगम् कर्नाटक संगीत का प्रमुख वाद्य है। वैदिक साहित्य के अलावा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी इस वाद्य की चर्चा है। यह गोण्ड जनजाति का पारंपरिक वाद्य है।

(xi) ढपला : इसे डफ भी कहा जाता है। लकड़ी के तीन-चार इंच चौड़े बत्ते का लगभग एक-डेढ़ फुट परिधि का छल्ला तैयार कर उसकी एक ओर बाँस की कमची या लोहे के रिंग की सहायता से चमड़ा मढ़ा जाता है। इसे कंधे से लटकाकर बायें हाथ से पकड़ा जाता है। फिर हथेली या बारीक डंडे से बजाया जाता है।

(xii) चंग : यह वाद्य पेंडरा लकड़ी या पीतल के लगभग एक फुट व्यास के छल्ले पर एक ओर लोहे के कोंड में चमड़े से मढ़ा होता है। इसे तर्जनी में लोहे का छल्ला फँसाकर बजाया जाता है। यह ढपले जैसा ही दिखायी देता है। यह छिन्दवाड़ा (गोण्ड) और श्योपुर (सहरिया) क्षेत्रों में प्रचलित है।

(xiii) ताशा : इसे तास और तासिया भी कहा जाता है। नगारची द्वारा प्रयुक्त यह वाद्य मिट्टी के पके हुए अर्द्ध वर्तुलाकार पात्र को चमड़े से मढ़कर तैयार किया जाता है। यह एक मुखी वाद्य है। इसे प्रायः विवाह के अवसर पर ढोल के साथ बजाया जाता है।

(xiv) तुरम : यह टिमकी या तुड़बुड़ी जैसा वितत् वाद्य है। इसे तुडुम भी कहा जाता है। 'तुरम' तूर्यम शब्द का अपभ्रंश है। यह एक मुखी वाद्य है। बस्तर में इसे सल्फी या बीजा वृक्ष के तने के टुकड़े को कटोरा जैसा आकार देकर बनाया जाता है। मुख को गोचर्म की पल्ली से मढ़ने के लिये चमड़े की बद्दी का ही उपयोग किया जाता है। तान के लिये बद्दी की आड़ी-तिरछी रस्सियों को कसा जाता है। वादक ज़मीन पर बैठकर तुरम को दोनों पैरों के बीच फँसाकर डंडों से बजाता है। यह बस्तर में मुरिया और दोरला समुदाय के युवाओं का प्रिय वाद्य है।

(xv) गोगा ढोल : यह एक मुखी ढोल है, जो नगाड़े जैसा दिखायी देता है। लगभग चौदह इंच गहरे लकड़ी के खोल के मुख पर गोचर्म मढ़कर उसे रस्सी से ढोल के चारों ओर से कसा जाता है। लगभग एक फुट लंबे डंडे से इसका वादन किया जाता है।

इनके अलावा 'परांग ढोल', 'नवात बाजा', 'रायगिड़ी बाजा' , 'ढुढुतता' आदि अवनद्ध वाद्यों का उपयोग बस्तर के गोण्ड समुदाय में प्रचलित हैं।

(स) घन वाद्य : काष्ठ, लोहा, पीतल अथवा अन्य धातुओं से निर्मित ऐसे वाद्य, जो परस्पर टकराने से ध्वनि उत्पन्न करते हैं, घन वाद्य कहलाते हैं। गोण्ड आदिवासी समूह के कुछ प्रमुख घन वाद्य ये हैं :

(i) कुंडीड : इसे घुलघुला भी कहते हैं। यह छोटे घुंघुरुओं और घंटियों को मोटे तार में पिरोकर बनाया जाता है। घुंघुरुओं की संख्या अधिक होती है। दो या तीन कतारों में। बीच-बीच में घंटियाँ अपनी कलात्मक धमक के साथ उपस्थित रहती हैं। बस्तर का ककसाड़ नर्तक जब इसे कमर से बाँधकर नृत्य-भंगिमा के साथ हिचकोले खाता है तो कुंडीड वाद्य छन-छन, टन-टन की मधुर स्वर-लहरियों से वातावरण में उत्साह भर देता है। घुलघुला मुरिया समुदाय का प्रिय घन वाद्य है।

(ii) ठिसकी : ठिसकी गोण्ड स्त्रियों का वाद्य है। करमा-शैला की धुन पर जब गोण्ड स्त्री-पुरुष थिरकते हैं तो ठिसकी स्त्रियों के हाथों की उमंग बनकर उनके पैरों की थिरकन से प्रतिस्पर्द्धा करते प्रतीत होते हैं। सागौन या बीजा लकड़ी के लगभग एक फुट लम्बे दो टुकड़ों को कलात्मक आकार देकर तार से दोनों गटकों को इस प्रकार जोड़ा जाता है

कि तार को दोनों हाथों से ऊपर-नीचे खींचने पर वे परस्पर टकराकर ध्वनि उत्पन्न कर सकें। गीत की धुन पर लयबद्ध टकराहट से ठिसकी मधुर संगीत की सृष्टि करती है।

(iii) खड़ताल : लगभग सवा फुट लंबी सागौन की लकड़ी को तराशकर उसके दोनों सिरों को गोलाकार किया जाता है। बीच में खाँचा बनाकर लोहे अथवा पीतल की दो-दो चकरी तार के ज़रिये लगायी जाती हैं। बैतूल क्षेत्र में सीधी लकड़ी के एक छोर से दूसरे छोर तक तार या जंजीर में टीन की दो-दो पतरियाँ लगायी जाती हैं। डंडार नृत्य के समय नर्तकों द्वारा नृत्य-भंगिमाओं के साथ दोनों हाथों से लयबद्ध हिलाने पर चकरी (छोटे मंजीरे) टकराकर संगीत उत्पन्न करते हैं। इसे कई क्षेत्रों में झूला, झींका या झाँझर भी कहा जाता है।

(iv) तारे : पीतल या काँसे की डेढ़ से तीन इंच व्यास की दो तश्तरियों (प्लेटों) के बीच छिद्र कर उनमें सुतली डालकर लकड़ी के गुटकों से पकड़ने योग्य बनाया जाता है। दोनों हाथों से रस्सी के सहारे एक-एक तारा पकड़कर आपस में किसी भी धुन पर लयबद्ध रूप से टकराया जाता है। टकराहट से उत्पन्न झनझनाहट ही संगीत बन जाता है। तारे जैसे दिखने के कारण इन्हें तारे कहा जाता है। कहीं-कहीं मंजीरे या चिटकुल भी कहा जाता है।

(v) झाँझ : काँसे के दो बड़े चंद्राकार तश्तरियों के मध्य भाग में गड्ढे होते हैं, जिनमें रस्सी डालकर मूठें बनायी जाती हैं, जिन पर सूती कपड़ा लपेटा जाता है। इन्हें पकड़कर दो हाथों से दोनों तश्तरियों को परस्पर टकराया जाता है। झनझनाहट की ध्वनि के कारण इन्हें झाँझ कहा जाता है। यह सहायक वाद्य है।

(vi) घुंघरू : इसे मुयांग भी कहा जाता है। काँसे या पीतल के चालीस-पचास घुँघरुओं को कलात्मक बुनावट के साथ पिरोया जाता है। नृत्य के समय गोण्ड स्त्री-पुरुष इन्हें दोनों पैरों में बाँध लेते हैं। घुँघरू के खोल में डले धातु के कंकड़ (छर्रे) के कारण नृत्य की लय और पद-संचालन के साथ ये छन-छन की ध्वनि के साथ बजने लगते हैं।

(vii) पैजना : यह भी पैरों का वाद्य है, जो नृत्य के साथ प्रयुक्त होता है। इसे पैड़ी भी कहा जाता है। बस्तर का मुरिया समुदाय इसे 'कटवाकिंग' के नाम से जानता है। यह लोहे या पीतल से बना एक पोला वाद्य है, जिसमें उसी धातु की गुटिकाएँ होती हैं। नृत्य की लय के साथ गुटिकाएँ पैजना से टकराती हैं, जिससे मधुर ध्वनि निकलती है।

(viii) झँझरी : यह लगभग दो फुट लंबा और एक फुट चौड़ा आयताकार वाद्य है। बीच में कटी हुई चकतियों में तार में फँसाकर दो-दो लोहे की चकरियाँ लगायी जाती हैं। इसे एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ की उँगलियों से बजाया जाता है। छिन्दवाड़ा क्षेत्र में छोटी, मध्यम और बड़ी झँझरियाँ प्रयुक्त होती हैं।

(ix) चुटकुले : सागौन लकड़ी के गुटकों के दोनों छोरों को V आकार में काटा जाता है। गुटकों के पीछे उँगली फँसाने के लिये रस्सी बाँधी जाती है। जोड़े को उँगलियों में फँसाकर बजाया जाता है। काठ यानी काष्ठ से बने होने के कारण रायसेन क्षेत्र में इस वाद्य को 'कठकोला' कहा जाता है। उमरिया क्षेत्र में लकड़ी के गुटकों को बाँस की कमानी खींच कर आपस में टकराया जाता है। इस क्षेत्र के गोण्ड इस वाद्य को 'चटकोला' कहते हैं।

(x) पीपरपान : पीतल धातु का अंडाकार जोड़ा। दोनों के पृष्ठ भाग पर उँगलियाँ फँसाने के लिये छल्ले बने होते हैं। दोनों भागों में कलात्मक ढंग से घुँघरुओं के गुच्छे लगाये जाते हैं। एक ही हाथ के अंगूठे और उँगलियों में दोनों भागों को फँसाकर परस्पर लय में टकराया जाता है, जिससे धातु के टकराने के साथ घुँघरुओं की मिश्रित ध्वनि निकलती है। पीपरपान का उपयोग बैतूल क्षेत्र में नृत्य के समय महिलाएँ करती हैं।

(xi) सीपनी : रायसेन क्षेत्र में सीपियों का उपयोग वाद्य के रूप में किया जाता है। सीपियों को घिसकर चमकदार और आकर्षक बनाकर उन्होंने दोनों हाथों से किसी भी धुन पर बजाया जाता है।

(xii) ठुड़का : लकड़ी के अर्द्ध वृत्त का खोल बनाकर उसमें लकड़ी का ही गुटका लटकाया जाता है, जो हिलने पर खोल से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करता है। यह एक प्रकार का घंटा है, जो अब लोहे का भी बनाया जाता है। पशुओं के गले में बाँधा जाने वाला ठुड़का ककसाड़ नृत्य में बस्तर के मुरिया नर्तकों की कटि (कमर) की शोभा ही नहीं बनता, बल्कि संगीत का हिस्सा भी बनता है। कमर को खास ढंग से हिलाने पर ठुड़का से उत्पन्न समवेत ध्वनि कर्णप्रिय लगती है।

(xiii) तिरडुड्डी : यह बस्तर के दण्डामी माड़िया स्त्रियों का प्रिय वाद्य है। गवर (गौर पशु) नृत्य के समय युवतियाँ अपने दायें हाथ में लाठी की तरह एक लोहे की छड़ी रखती हैं, जिसे नृत्य की मुद्राओं के साथ ज़मीन पर पटकती है। छड़ी के शीर्ष भाग पर 'इतापल्ली' (लोहे के बड़े घुँघरू के गुच्छे) लगे होते हैं, जो आघात के कारण बज उठते हैं। इसे उजीड़ भी कहा जाता है।

(द) सुषिर वाद्य : मुँह से फूँककर वायु के सहयोग से बजाये जाने वाले वाद्य सुषिर वाद्य की श्रेणी में आते हैं। गोण्ड जनजाति समूह में

इस प्रकार के वाद्यों की समृद्ध परंपरा रही है। इस समूह के कुछ प्रमुख वाद्य ये हैं :

(i) बाँसुरी : गोण्ड जनजाति समूह के परधान और ढुलिया द्वारा सामान्य बाँसुरी सहायक वाद्य के रूप में ढोल, माँदर, टिमकी, गुदुम, शहनाई आदि वाद्यों के साथ बजायी जाती है। बाँसुरी एक से डेढ़ फुट लम्बे पोले-पतले बाँस से बनायी जाती है। इसके ऊपरी छोर पर गाँठ के नीचे फूँकने के लिये एक छिद्र किया जाता है। मध्य भाग से निचले छोर तक चार या पाँच छेद होते हैं, जिन पर दोनों हाथों की उँगलियाँ रखकर सुर निकाले जाते हैं। इसे अधरोष्ठ यानी निचले होंठ पर रखकर फूँका जाता है। बैतूल के गोवारी (चरवाहा) यानी ठाठिया समुदाय द्वारा लगभग चार से छह फुट लंबी विशेष बाँसुरी प्रयुक्त की जाती है, जो इस समुदाय की पहचान है। इसकी समवेत ध्वनियाँ अत्यंत मधुर और मोहक होती हैं। देखने में यह बाँसुरी चरवाहे की लाठी जैसी प्रतीत होती है, जिसे वे सुंदर ढंग से सजाकर रखते हैं। ठाठिया नृत्य का प्रमुख आकर्षण यह बाँसुरी होती है। बस्तर के मुरिया समुदाय के लोग बाँसुरी को 'सुलुड' और भीलांचल में 'पावला' कहते हैं। वादन की दृष्टि से यह आड़ी और खड़ी दोनों प्रकार की होती है। बुंदेलखंड क्षेत्र में सीधी बाँसुरी की जोड़ी से बनाये वाद्य को 'अलगोजा' या 'अलगुंजा' कहा जाता है।

(ii) तुरही : यह वाद्य भैंस के सींग से बनाया जाता है। सींग के पृष्ठ भाग में छेद करके वहीं से फूँककर बजाया जाता है। पहले तुरही को हकुम या अकुम कहा जाता था। हकुम की साँकेतिक ध्वनियों के माध्यम से शुभ-अशुभ सूचनाएँ गाँव की बिरादरी या आसपास के गाँवों तक पहुँचायी जाती थीं। तुरही की खण्डित लय मृत्यु का संकेत होती थी। प्राचीनकाल में युद्ध का आरंभ तूर्यनाद यानी तुरही बजाकर किया जाता था। इसे रणभेरी कहा जाता था।

(iii) तोड़ी : यह वाद्य तुरही का परिष्कृत रूप है। इसे घड़वा लोग 'बेलमेटल' या काँसे से तैयार करते हैं। तोड़ी तुरही यानी सींग जैसी ही घुमावदार होती है, एक ओर से चौड़ी और क्रमशः सँकरी होती हुई। इसे सँकरे भाग में बने छिद्र से फूँककर बजाया जाता है। इसकी ध्वनि तीव्र होती है।

बस्तर में ताड़ के पत्तों से भी तोड़ी बनायी जाती है। देवानुष्ठान, मड़ई आदि की सूचना तोड़ी बजाकर दी जाती है।

(iv) रमतूला : रायसेन क्षेत्र में तोड़ी की तरह का एक वाद्य होता है, जिसे रमतूला कहा जाता है। रमतूला का आकार टेढ़ा-मेड़ा, किन्तु सींग जैसा ही एक छोर से सँकरा तथा क्रमशः दूसरे छोर की ओर चौड़ा होता है। इसे तोड़ी की तरह ही सँकरे भाग की ओर से बजाया जाता है। इसका स्वर तीव्र, किन्तु मोहक होता है। रमतूला बजाने का विशेष अभ्यास करना पड़ता है।

(v) शहनाई : यह प्राचीन सुषिर वाद्यों में से एक है। शहनाई मंगल वाद्य की श्रेणी में आता है। शीशम की एक-डेढ़ फुट लंबी लकड़ी को बाँस की तरह पोला करके उसमें बाँसुरी जैसे छिद्र किये जाते हैं, जिनसे सुर निकाले जाते हैं। मुँह की ओर पत्तियाँ लगायी जाती हैं, जिन्हें फूँकने पर कंपन से स्वर निकलता है। लकड़ी के निचले भाग में की पीतल की कटोरानुमा संरचना लगायी जाती है, जिससे कोमल स्वर-लहरियाँ वायुमंडल में फैलकर दूर तक जाती हैं। इसकी जोड़ीदार के रूप में में मोहरी भी होती है, जो गंभीर स्वर के लिये होती है। मोहरी की लंबाई 28 अंगुल होती है। शहनाई-मोहरी के छह भाग होते हैं, जिन्हें दशनारा, डाँडी, सुलखना, सली, चकती और पतरा कहा जाता है। इन सबसे मिलकर बनी शहनाई-मोहरी का स्वरूप धतूरे के पुष्प जैसा दिखाई देता है। गोण्ड जनजाति समूह के ढुलिया और परधान शहनाई-मोहरी के वादन में पारंगत होते हैं। डिण्डौरी ज़िले के ग्राम लालपुर निवासी ढुलिया शहनाई वादक मुरारीलाल भारवे अपने क्षेत्र में विख्यात हैं। बस्तर में मोहरी-बाजा (शहनाई-नगाड़ा) विवाह-प्रसंग में अनिवार्य माना जाता है।

(vi) जीका : इस वाद्य को हवा में उछालकर बजाया जाता है। इस विशेष वाद्य में वायु के प्रवेश से मधुर ध्वनियाँ निकलती हैं। बस्तर में मुरिया इसे जीका और दण्डामी माड़िया अटे कहते हैं।

(vii) कच-टेण्डोर : यह एक छोटा वाद्य है। लोहे के ढाँचे में एक जीभनुमा काँटा होता है, जिसे दाँतों से दबाया जाता है। जीभ में कंपन होने पर उसे हवा से धकेला जाता है। दाँत अनुनादक का काम करता है। इस वाद्य से बीन जैसी मोहक ध्वनियाँ निकलती हैं। बस्तर के मुरिया समुदाय की मान्यता है कि इसकी धुन पर सर्प नाच उठता है। मुरिया युवक इस वाद्य को पगड़ी में खोंसकर रखते हैं। बालाघाट क्षेत्र में इसे मोरशंख कहते हैं।

गोण्ड जनजाति समूह द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले अनेक पारंपरिक वाद्य लुप्त हो चुके हैं और अब उनके स्थान पर बाज़ार में उपलब्ध आधुनिक वाद्य ख़रीदकर उपयोग किये जाने लगे हैं।

स्तंभकार लेखकः आदिवासी संस्कृति और भाषाओं के अध्येता,
शब्दकोशकार और प्रतिष्ठित साहित्यकार है।
संपर्क : ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बागमुगलिया,
भोपाल- 462043 (म.प्र.) मोबा. 8319163206
Email : payodhiln@gmail.com

आलेख

भारत में वाद्य संगीत की परम्परा

प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास

भारतवर्ष में वाद्य संगीत की परम्परा बहुत समृद्ध रही है। भारतवर्ष में वाद्य के लिए परिभाषा प्राप्त होती है **'वदति इति वाद्यः'** अर्थात् जो बोलता है या जिसे बोलवाया जाए उसे वाद्य कहते हैं। बोलना यानि वद् और उसी से वादन और 'वाद्य' शब्द की व्युत्पत्ति होती है यानि वो उपकरण या वो यन्त्र जो बोलता है। वद् धातु की उत्पत्ति वाक् से होती है। चूँकि वाक् सर्वप्रथम मानव शरीर में धारण किया गया अत: मानव कण्ठ को भी वाद्य मानते हुए 'वीणा' की संज्ञा दी गई जिसे ईश्वरी वीणा या दैवी वीणा कहा गया और मनुष्य द्वारा निर्मित वीणा को मानुषी वीणा कहा गया। आगे चलकर मनुष्य शरीर को शारीरी वीणा और मनुष्य निर्मित काठ की वीणा को दारवी वीणा कहा गया। उपनिषदों में मनुष्य शरीर को गात्र वीणा की संज्ञा भी दी गई। 'वाद्य' संज्ञा का अपभ्रंश 'बाजा' है जिसका अर्थ है कोई भी सांगीतिक यंत्र या उपकरण।

वैदिक काल में अनेकानेक वाद्यों का उल्लेख मिलता है। यज्ञ स्थल पर विशालकाय गड्ढ़ा खोदकर उसपर बैल का चमड़ा मढ़ा जाता था और बैल की पूंछ से ही उसका वादन होता था। इसे भूमि दुंदुभि कहा जाता था। इसी प्रकार आडुम्बरी अथवा औदुम्बरी, करकरी और नाड़ी अथवा नाली वाद्यों का उल्लेख मिलता है। तंत्री वाद्यों में वाण नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है जिसमें सौ तंत्रियों को दस छिद्रों में पिरोया जाता था। पंडित लालमणि मिश्र ने नाड़ी अथवा नाली वाद्य को शहनाई जैसा रीडयुक्त सुषिर वाद्य कहा है। सुषिर वाद्यों में शंख प्रमुख था एवं इसके अतिरिक्त पकी हुई मिट्टी से निर्मित कई प्रकार की सीटियाँ भी प्राप्त होती हैं जिनमें दो, तीन, चार और पाँच छिद्र भी हुआ करते थे। सम्भव है इनसे किसी प्रकार की धुन भी निसृत होती थी। इस तरह यह निश्चित है कि वैदिक काल या उससे भी पूर्व भारतवर्ष में वाद्य परम्परा अत्यन्त समृद्ध थी।

प्राचीनकाल से हमें विविध प्रकार से वाद्य वर्गीकरण मिलते हैं। संगीत मकरंद के अनुसार पाँच प्रकार की महाध्वनियाँ होती हैं इनमें से चार बाह्य यानि बाहरी हैं:- नख़ज, वायुज, चर्मज एवं लौहज और पांचवी ध्वनि प्राकृतिक यानि दैवी है जो मानवीय कण्ठ है। भरत नाट्य शास्त्र में भरतमुनि वाद्यों का वर्गीकरण चार श्रेणियों में करते हैं तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर।

ततम् चैव वावनद्धम् च, घनम् सुषिरमेव च
आतोद्यम् लक्षणम् वितम्, चतुर्विधम् तुं विज्ञेयम्

भ. ना. शा. 28/1

भरतमुनि प्रणीत यह वाद्य वर्गीकरण भारत में 2000 वर्षों से भी अधिक समय से प्रचलित है और आज भी प्रासंगिक है। भरतमुनि वाद्यों की समष्टि को आतोद्य नाम से बुलाते हैं। उनके अनुसार तत् और अवनद्ध मुख्य वाद्य हैं जबकि सुषिर और घन प्रत्यंग वाद्य हैं। इनको इस तरह भी समझा जा सकता है कि तत् वाद्य स्वर के लिए और अवनद्ध वाद्य ताल के लिए प्रयुक्त होते हैं। सुषिर वाद्य और घन वाद्यों को सहायक वाद्य माना गया क्योंकि उनको मिलाने का (ऑन द स्पॉट ट्यून करने का) अवकाश नहीं होता।

उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य जगत में वाद्यों पर कार्यरत विद्वानों में प्रमुख रहे हॉर्नबॉस्टेल और कर्टसैक्स ने 1914 में संग्रहालयों के लिए वाद्यों की श्रेणी विभाजन करते समय भारत में हजारों वर्षों से प्रचलित भरतमुनि कृत वाद्य वर्गीकरण को ही सर्वोपरि मान्यता प्रदान की और पाश्चात्य वाद्यों को इसी के अनुरूप वर्गीकृत किया। हालांकि उनके सम्मुख सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित अनेकों अन्य श्रेणी विभाजन भी उपस्थित थे। भारतीय भरतमुनि कृत चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण को ही पाश्चात्य वाद्यों के वर्गीकरण के लिए उपयुक्त मानने के पीछे जो बात सबसे महत्वपूर्ण है वो है भरतमुनि कृत वाद्य वर्गीकरण का सबसे अधिक वैज्ञानिक होना। भरतमुनि ने किसी भी वाद्य में 'झंकृत' होने वाले हिस्से या पदार्थ को अपने वर्गीकरण का आधार बनाया जो ध्वनि के उत्पन्न होने का प्रमुख कारक होता है। उदाहरणत: तत् वाद्यों में आघात करने से झंकृत होने वाला प्रमुख हिस्सा वाद्य में लगी तंत्रियाँ हैं और वे ही ध्वनि निष्पादन का प्रमुख कार्य करती हैं। तंत्री से उत्पन्न ध्वनि की गूँज के लिए उस वाद्य में लगे तुम्बे और डाँड कार्यरत होते हैं। इसी प्रकार अवनद्ध वाद्यों में ढ़ाँचे के ऊपर लगाई गई पुड़ी या छावनी ध्वनि निष्पादन करती है और सुषिर वाद्यों में फूंकी गई वायु तरंगित होकर ध्वनि उत्पन्न करती है जबकि घन वाद्य जैसे मंजीरा या झांझ इत्यादि वाद्यों का पूरा ढ़ांचा ही झंकार उत्पन्न करता है। इस तरह चूँकि भरतमुनि का चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण पूरी तरह वैज्ञानिक और तार्किक है अत: इसे सम्पूर्ण विश्व में प्रामाणिक मानते हुए मान्यता प्राप्त हुई। अत: तत् वाद्यों को 'कॉर्डोफोनिक', अवनद्ध को 'मैम्ब्रानोफोनिक', सुषिर वाद्यों को 'एअरोफोनिक' और घन वाद्यों को 'इडियोफोनिक' संज्ञा दी गई। बीसवीं शताब्दी के अंत में विद्युत से (यानि इलैक्ट्रिसिटी से) चलने वाले वाद्य प्रचलित हुए हैं। कर्टसैक्स ने इन वाद्यों को 'इलैक्ट्रोफोनिक' संज्ञा प्रदान की है।

1914 में प्रचलित ये पाश्चात्य वाद्य वर्गीकरण अधुना तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है जो 'स्ट्रिंग', 'विन्ड' और 'पर्कशन्स' इस प्रकार है। यहां यह ध्यान देने वाली बात है कि 'पर्कशन्स' श्रेणी में पाश्चात्य विद्वान अवनद्ध और घन दोनों प्रकार के वाद्यों को वर्गीकृत करते हैं। किन्तु भारतीय संगीत में प्रचलित अवनद्ध वाद्य पश्चिम में प्रचलित 'ड्रम'

वाद्य से कहीं अधिक उन्नत और परिष्कृत हैं हमारे यहां प्रचलित पखावज, मृदन्गम, तबला और हमारे क्षेत्रिय और लोक वाद्यों की बनावट बहुत विकसित और तकनीकी दृष्टि से बहुत उन्नत है। साथ ही उनमें प्रयुक्त होने वाली 'स्याही' और उनकी पुड़ी में उपस्थित कई तहों के कारण उन पर जो 'बोल' बजाए जाते हैं उनकी संख्या अनगिनत है। पाश्चात्य संगीत में प्रचलित 'ड्रम' से इन वाद्यों की तुलना करना ठीक नहीं है। इसीलिए हमारे यहां अभी तक भरतमुनि प्रणीत वाद्यों की चार श्रेणियाँ ही प्रचार में हैं और अनन्तकाल तक प्रचारित रहेंगी।

प्राचीनकाल में वाद्य संज्ञा कई अर्थों में प्रयुक्त होती थी–

सर्वप्रथम एक वाद्य के अर्थ में

दूसरा विभिन्न तकनीकों के लिए भी वाद्य संज्ञा प्रयुक्त होती थी जिन्हें 'हस्त व्यापार' या 'धातु' भी कहा जाता था।

तीसरा किसी भी वाद्य पर बजाए जाने वाली विभिन्न शैलियों को भी वाद्य ही कहा जाता था। कालान्तर में इन्हें 'बाज' की संज्ञा भी दी गई। जैसे सितार पर बजायी जाने वाली शैलियाँ मसीतखानी बाज और रजारखानी बाज कहलाती थीं।

विचित्र वीणा वादक पं. लालमणि मिश्र

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में तंत्री वाद्यों एवं अवनद्ध वाद्यों पर बजाये जाने वाली अनेकानेक तकनीकों (धातु) का विषद् वर्णन मिलता है। पं. लालमणि मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संगीत वाद्य' में वीणा पर बजाए जाने वाले ऐसे अनेक हस्तव्यापारों की विस्तृत चर्चा करते हुए बताया है कि कैसे नाट्य शास्त्र में वर्णित विभिन्न तकनीकों का ही हम आज तक निर्वहन करते है।। ऐसी अनेक तकनीकें और अलंकार हैं जो एक हाथ के हैं और दोनों हाथ के हैं (एक हस्त और उभय हस्त कहा है)। इन ग्रन्थकारों में भरतमुनि, शारंगदेव एवं महाराणा कुंभा प्रमुख हैं जिन्होंने वीणा वादन की विस्तृत और गम्भीर चर्चा की है।

हमारे शास्त्रों में वाद्यों एवं वाद्य संगीत के विविध प्रयोगों पर भी चर्चा की गई है। भरतमुनि ने नाट्य के संदर्भ में वाद्यों के वादन की चर्चा की है। परन्तु शारंगदेव ने वाद्यों के नाट्य से इतर प्रयोगों की भी चर्चा की है जो बहुत महत्वपूर्ण है और उल्लेखनीय है –

शारंगदेव ने वाद्य संगीत के पाँच स्थलों पर प्रयोग बताए है –

1. इसमें पहला है किसी भी मांगलिक अवसर पर वाद्य प्रयोग
2. नाट्य में प्रयोग में उत्साह, क्रोध अथवा भय के संचरण में
3. गायक अथवा नर्तक को मध्य में विश्राम देने में
4. जन मानस को उत्साह एवं जोश से भरने के लिए
5. गायन और वादन में जो त्रुटियाँ हों उनको ढ़कने के लिए।

शारंगदेव द्वारा उपरोक्त वर्णित वाद्यों के विविध प्रयोग आज भी जस के तस देखे जा सकते हैं और प्रासंगिक हैं। प्राचीन ग्रन्थों में वाद्यों की संगति के लिए भी पर्याप्त निर्देश हैं जो क्रमश: गीतानुग, नृत्यानुग, द्वयानुग और शुष्क हैं।

गीतानुग – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है गीत की संगति करने वाला वाद्य प्रयोग गीतानुग है।

नृत्यानुग – नृत्य की संगति करने वाला वाद्य प्रयोग नृत्यानुग है।

द्वयानुग – जब वाद्य गीत और नृत्य दोनों की संगति करे वह वाद्य प्रयोग द्वयानुग है।

शुष्क – शुष्क को स्वतन्त्र वाद्य प्रयोग कहा गया है। शास्त्रीय संगीत में वाद्यों के एकल प्रदर्शन (सोलो परफोरमेन्स) का विकास इसी 'शुष्क' वाद्य प्रयोग की परम्परा से हुआ है। इसे निर्गीत, बहिर्गीत अथवा गोष्ठी भी कहा गया।

प्राचीन भारत में जुगल वादन एवं समूह वादन जिसे कुतुप कहा जाता था, इसकी परम्परा प्राप्त होती है। इनमें तत् कुतुप यानि तंत्री वाद्यों को समूह वादन, और वंश वृन्द यानि सुषिर वाद्यों का समूह वादन बहुत प्रचलित था।

अवनद्ध कुतुप का भी उल्लेख मिलता है जिसमें मृदन्ग, पणव और दर्दुर वाद्यों का मिलकर वादन होता था। इसको आजकल प्रचलित ताल वाद्य कचहरी भी कहा जा सकता है। इस तरह के समूह वादन हमारे लोक परम्पराओं में बहुत प्रचार में हैं। हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बल्कि दक्षिण में प्रचलित पंच वाद्यम के प्रयोग की परम्परा का बहुत प्राचीन काल से प्रचलन है।

प्राचीन ग्रन्थों में वादकों के गुण व दोषों का वर्णन मिलता है जिनमें वीणा वादक, वंशी वादक और मृदन्ग वादक प्रमुख हैं। यहाँ तक कि बाँसुरी और मृदन्ग वाद्यों के भी गुण दोषों की चर्चा मिलती है।

प्राचीन भारत में वाद्य निर्माण कला भी अत्यन्त उन्नत थीं। वाद्यों के निर्माण में लकड़ी (काष्ठ), हड्डियों, पशु की खाल एवं आंतों को किस प्रकार साफ करने और उनका संस्कार करना कि वो वाद्य निर्माण में प्रयुक्त की जा सकें, इस पर विस्तृत निर्देश प्राप्त होते हैं। वाद्य निर्माण में सभी प्राकृतिक सामग्री का प्रयोग होता था और सारे कार्य कारीगरों द्वारा हाथों से किए जाते थे। वाद्यों के निर्माण में किन–किन बातों का ध्यान किया जाए कि अच्छे वाद्यों का निर्माण हो इसके भी निर्देश मिलते हैं।

संगीत रत्नाकर में (वाद्य निर्माण के लिए) वाद्यों के विविध हिस्सों को बनाने के लिए मापने के लिए हस्त, वितस्ती, मुष्ठी, अंगुल और यव के प्रमाण दिए गए हैं। ये प्रमाण और क्रियाएं आज भी वाद्य निर्माताओं के द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं।

वाद्यों के अध्ययन की सामग्री विविध संगीत के संस्कृत ग्रन्थों में, सामान्य ग्रन्थों में और इतिहास के ग्रन्थों में टुकड़ों–टुकड़ों में बिखरी पड़ी हैं। प्राचीन मंदिरों, गुफाओं के भित्ति शिल्पों और चित्रों में भी वाद्यों की जानकारी मिलती है। इतने होते हुए भी हमारे प्राचीन ग्रन्थ वाद्यों पर कतिपय

जानकारियाँ नहीं दे पाते जिसके कारण कई वाद्यों के जन्म से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। लिखित सामग्री के अभाव में मौखिक परम्परा पर निर्भर करना पड़ता है जो कई बार बिल्कुल ग़लत हो सकता है और गम्भीर सवाल खड़े कर सकता है। उदाहरण के लिए अधुना प्रचलित सर्व लोकप्रिय वाद्य सितार व तबला के सम्बन्ध में लिखित प्रामाणिक जानकारी के अभाव के कारण आज तक हम उसे अपने वाद्य न मानकर ईरान से आए वाद्य या अमीर खुसरो के द्वारा बनाये वाद्य कहते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि सितार या तबला जैसा कोई भी वाद्य ईरान में या मध्य एशिया में प्रचलित नहीं है। और जहां तक अमीर खुसरो की बात है तो उनका जन्म 1253ई. का है और वे 70 वर्ष की उम्र तक जिए। इस प्रकार तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी में सितार का कोई ज़िक्र किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। सितार व तबला का पहला उल्लेख 18वीं शताब्दी में मिलता है। जिसमें स्पष्ट है कि इन दोनों ही वाद्यों का विकास अमीर खुसरो के लगभग 400 या 500 वर्ष पश्चात् हुआ।

प्राचीन काल में वाद्य निर्माण कला का पर्याप्त विकास हुआ जिसकी परम्परा आज भी चली आ रही है। जिन वस्तुओं में वाद्यों की निर्मिती होती है वो सभी वस्तुएं प्रकृति से प्राप्त होती है। बड़े-बड़े तुम्बे, बाँस, तुन, शीशम, सागवान और जैतून की लकड़ी के अलावा विभिन्न पशुओं की खाल, हड्डी और आँतों का इस्तेमाल बड़ी संख्या में आज भी वाद्य निर्माण में किया जा रहा है। किन्तु अधुना में इनमें से कई वस्तुएं वाद्य निर्माताओं को अप्राप्य होती जा रही है जिसके फलस्वरूप वाद्य बनाने वाले कारीगर इन परम्परागत वस्तुओं की जगह अन्य सिंथेटिक चीजों का इस्तेमाल करने लगे हैं। जैसे लकड़ी, हड्डी, हिरण के सींग, तुम्बे आदि के स्थान पर कुछ कारीगर नई चीजों का प्रयोग कर रहे हैं। वाद्यों की नाज़ुकता को देखते हुए कई नए वाद्य फाईबर ग्लास के बनाए जा रहे हैं। इस दृष्टि से फाईबर ग्लास की वीणा और इलैक्ट्रोनिक वीणा आदि उल्लेखनीय हैं।

वाद्यों को बनाने के अधिकांश काम अभी भी हाथों के द्वारा ही होता है और यह शिल्प अभी भी पीढ़ी दर पीढ़ी ही सिखाया जाता है। वाद्यों के निर्माण की ट्रेनिंग के लिए सरकारी और गैरसरकारी स्तर पर बहुत ही किंचित प्रयास किये जा रहे हैं जिसके चलते वाद्य निर्माण की कला बहुत पिछड़ती जा रही है। नई पीढ़ी के बहुत ही कम वाद्य निर्माता सामने आ रहे हैं। इसका एक कारण इस परम्परागत कार्य को सरकारी संरक्षण का अभाव है। वाद्य निर्माण कला को परम्परागत उद्योग का दर्ज़ा नहीं मिलने के कारण उन्हें सरकार से सहयोग प्राप्त नहीं होता। वाद्य निर्माताओं की अनेक समस्याओं को सुनने वाला और उनके निराकरण के लिए प्रयास किए जाने वाला कोई नहीं है। देश में ऐसी कोई संस्था नहीं है जहां वाद्यों का रख-रखाव कैसे हो इस पर कोई बात हो। यह विषय इतना विस्तृत है और आवश्यक है कि इसी पर एक विशेष सेमिनार किया जा सकता है।

इस लेख के अंत में भारतीय वाद्यों की कुछ विशेषताओं की चर्चा करना आवश्यक है जिनके आधार पर हम किसी भी वाद्य की भारतीयता सिद्ध कर सकते हैं:-

1. पहली विशेषता है भारतीय तंत्री वाद्यों में चौड़े और लम्बे घुड़च (ब्रिज) की उपस्थिति। ऐसा घुड़च हमारे लगभग सभी मिजराब से बजने वाले वाद्यों में मिलता है जैसे सितार, रूद्रवीणा, तंजौरी वीणा, विचित्र वीणा, गोटूवाद्यम, तम्बूरा या तानपूरा आदि।

2. दूसरी विशेषता है पर्दों वाले वाद्यों में पर्दों का उठा हुआ होना जैसा रूद्र वीणा, सितार, सूरबहार ओर तंजौरी वीणा में पाया जाता है।

3. तीसरी विशेषता है वाद्यों में विभिन्न सहतंत्रियों का होना जिन्हें चिकारी के तार, झारे के तार और तरब के तार कहते है।

4. हमारे अन्यान्य अवनद्ध वाद्यों में एक से अधिक तहों की पुड़ी बनाई जाती है। जिन्हें अंग्रज़ी में 'मल्टीपल लेयर्स' कहते हैं। यह हमारे देश की विशेषता है जो पखावज, मृगन्दम और तबला जैसे वाद्यों में पायी जाती है।

5. हमारे अन्यान्य अवनद्ध वाद्यों में खाल के बीचोंबीच स्याही लगाने की व्यवस्था है जिसका इतिहास बहुत प्राचीन है। भरत नाट्य शास्त्र में भी अवनद्ध वाद्यों पर लेप लगाने का उल्लेख मिलता है। हालांकि खाल पर जो लेप लगाया जाता है उसकी सामग्री हर युग में बदलती रही है। आज जो सामग्री स्याही के रूप में तबला पर लगाई जाती है वो बहुत उन्नत है और अनेकों कारीगरों ने मेहनत से उसे विकसित किया है।

6. हमारे सभी सुषिर वाद्यों का वादन हाथ से छिद्र बन्द करके किया जाता है। बाँसुरी, शहनाई और नागास्वरम् जैसे रीड युक्त वाद्य वादक की उंगलियों, उसकी साँस और होठ और जीभ के उचित तालमेल से ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

7. सातवीं और सबसे प्रमुख विशेषता हमारे भारतीय वाद्यों की यह है कि इन्हें सभी को एक मुख्य स्वर से मिलाया जाता है जिसे आधार स्वर अथवा 'टोनिक' कहते हैं। जैसा पहले भी कहा जा चुका है हमारे स्वर वाद्यों के अतिरिक्त हमारे अवनद्ध वाद्य भी अत्यन्त उन्नत हैं और उनको भी आधार स्वर से मिलाया जा सकता है। उनकी सारणा की जा सकती है। जैसा दूसरे देशों के अवनद्ध वाद्यों में नहीं होता है।

भारतीय वाद्यों की एक और विशेषता है इन वाद्यों में 'फाईन ट्यूनिंग' करने की व्यवस्था। सितार, सुरबहार, सारंगी, तानपूरा आदि वाद्यों में 'मनकों' की व्यवस्था होती है जिनसे तंत्रियों की खूँटी को छेड़े बिना बारीक सुरावट की जा सकती है। तबला और पखावज में सुर करने के लिए गट्टे होते हैं। गट्टों को ऊपर नीचे करके तबला को सुर किया जाता है और फाईन ट्यूनिंग के लिए 'गजरे' पर पुड़ी को हल्का सा दबाया जाता है।

हमारे लगभग सभी शास्त्रीय वाद्यों का विकास हमारे देश में फैले अनगिनत प्रान्तीय, लोक और जनजातिय वाद्यों से हुआ है। सम्भवत: हम आज उनको नहीं जानते हैं, उनको नहीं देख पा रहे हैं क्योंकि धीरे-धीरे हमारे लोक और जनजातिय वाद्यों पर नए ज़माने की छाया तेजी से गहराती जा रही है। लोक संस्कृति हमारी जड़े हैं, हमारी आत्मा हैं। इसका संवर्धन और संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है तभी हम अपने वर्तमान को समझ पाएंगे। यही बात हमारे वाद्यों पर भी लागू होती है।

लेखिका : दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में प्रोफेसर एवं भूत पूर्व डीन व विभागाध्यक्ष, वाद्यों पर शोधपरक ग्रंथ की लेखिका तथा राजस्थानी वाद्यों की विशेषज्ञा

■

आलेख

लोक संगीत

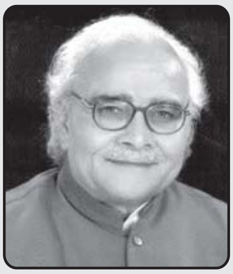

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

भरत (ई. पूर्व 200) के नाट्यशास्त्र में 'जाति-गान' का उल्लेख है। मतंग ने अपने बृहद्देशी (सन् 400 ई.) में देशी-संगीत का उल्लेख किया है- **अबला बाल गोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया।** गीयते सानुरागेण स्वदेशे देशि रुच्यते। अर्थात, नारी हो, बालक हो, गोपाल हो अथवा राजा हो। अपने-अपने जनपद में अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल अनुराग में डूब कर जो स्वत:स्फूर्त गायन करते हैं उस संगीत को लोग 'देशी-संगीत' कहते हैं।

राग ही राग की जन्मभूमि है '**गीयते सानुरागेण।**' राग अर्थात् हृदय में उद्वेलित होने वाली प्रीति। प्रीति का उद्वेलन हो फिर अपनी तरंग में हो- निजेच्छया । लोकसंगीत स्वत: स्फूर्त है, किसी बादशाह के आदेश की उसे क्या जरूरत। एक ने स्वर उठाया, दूसरे ने स्वर मिला दिया। तीसरा ताल बजाने लगा यही लोकसंगीत का उद्‌गम है। लोक संगीत राजा और रंक का अन्तर नहीं करता अबला हो या राजा हो अबला-बाल-गोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया। शास्त्रीय संगीत के ग्रन्थों में ऐसे अनेक रागों के नाम हैं जो देशज हैं, जैसे मेवाड़ा, जीतपुरी, मुलतानी गुर्जरी मालव आदि ।

लोकवृत्त मई जून 1987 में प्रकाशित अपने लेख 'भारतीय संगीत का मूलाधार' में सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ कुमार गन्धर्व ने लिखा था-'भारतीय संगीत का मूलाधार लोक-संगीत है। उसमें उन्होंने विस्तार से बतलाया है कि शास्त्रीय राग लोकधुनों में छुपे हुए रागों के विकसित स्वरूप हैं।'

संगीत को यह वरदान प्राप्त है कि वह श्रम को सहज बना देता है। कहार कंधे पर पालकी लेकर के सुदूर की यात्रा करते थे, रास्ते में गाते चलते थे। जहाँ कहीं पालकी को रख कर ठहरते थे, वहाँ भी नाच और गान करते थे। उनका विशिष्ट नाच, विशिष्ट ताल, विशिष्ट राग कहरबा बन गया। ताल की बात करें अथवा नाच की, कहरवा शब्द की सिद्धि कहार के बिना कैसे हो सकेगी ? ऐसे कितने ही राग है जो लोक से शास्त्र में पंहुचे ! भैरव और भैरवी तो जोगियों के राग हैं ही, अहीर-भैरव आभीर-राग को साथ ले आया। गूजरी रागिनी तोड़ी से मिली और गूजरी तोड़ी बन गयी। मालवी मालव लोगों का राग है। कालिंगड़ा कलिंग-जन का राग है। पंजाब खम्माज पूर्वी - पूर्वांचल, तिलंग-तेलंगाना, राग पहाड़ी, मुलतानी, हिंडोल, कान्हरा, भूपाली, जौनपुरी, वृन्दावनी सारंग और तिलंग राग की कहानी तो ये शब्द ही सुना रहे हैं । उपशास्त्रीय संगीत की चैती, ठुमरी, होरी, कबीर, बिदापत की लोकप्रियता का कारण भी लोक की धरती से जुडा होना ही है।

अपनी पुस्तक 'धरती गाती है' में देवेंद्र सत्यार्थी ने लोक-राग और लोक-संगीत पर एक टिप्पणी लिखी है, मल्हार को लेकर वे लिखते हैं कि

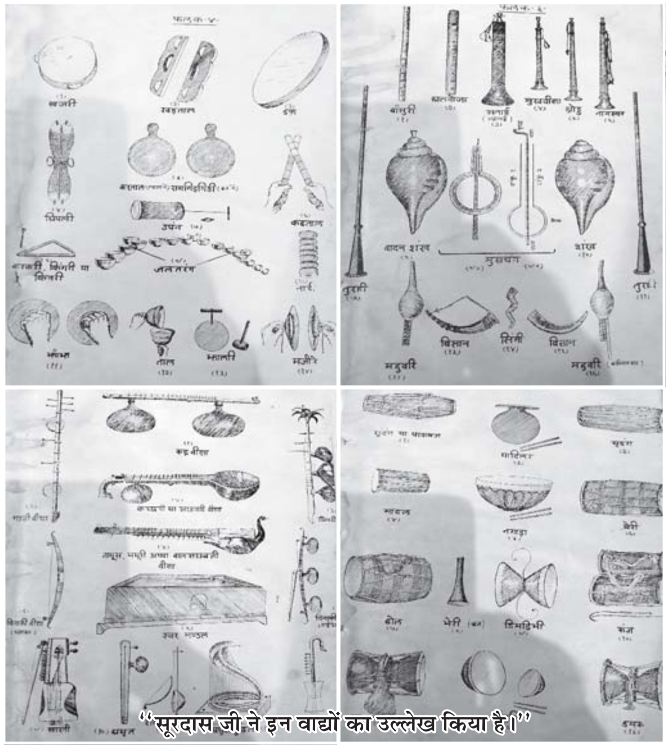

"सूरदास जी ने इन वाद्यों का उल्लेख किया है।"

'वर्षा में मेघ लोकगीत के लिए सामग्री जुटाता है। किसी न किसी रूप में प्रत्येक जनपद वर्षा-मंगल की प्रेरणा से झूम उठता है वर्षा में मल्हार गाया जाता है। ब्रज में सावन के गीत आज भी मल्हार कहलाते हैं, इनको लक्ष्य में रखकर यह बात कही जा सकती है की मल्हार प्रारंभ में लोकसंगीत की वस्तु रहा होगा आज भी कांगड़ा और शिमला के पहाड़ी प्रदेश में राग प्रचलित है। पूर्व बंगाल में मटियाल प्रचलित है। तानसेन के संबंध में यह किंवदंती प्रचलित है कि दीपक राग को गाने के कारण उनका समस्त शरीर झुलसा जा रहा था और वह इस तलाश में भटक रहा था कि कोई शुद्ध मल्हार गाकर उसे शीतल कर दें। कहते हैं कि एक ग्वालिन ने मल्हार गाकर उसकी वेदना को शांत किया था।'

लोक संगीत और क्लासिकल (शास्त्रीय) संगीत की तुलना करें तो एक बात बहुत स्पष्ट हो जायेगी, कि वे राग, गान की वे शैली जो आगे चल कर क्लासिकल संगीत की शोभा बनी, वे प्रारंभ में लोक की ही शैली थीं। लेनिन ने अपास्तोनाता-लोक संगीत के संबंध में कहा था कि 'पृथ्वी के नरक कुंड में स्वर्ग की सुषमा का अवतरण करने वाले धन्य हैं।'

लेखक: वरिष्ठ साहित्यकार अध्येता हैं।
सम्पर्क : 1828 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 13-12, पानीपत-132203 (हरियाणा) मोबा. 99960007186

■

आलेख

वाद्यों का उद्भव-विकास, स्वभाव एवं बर्ताव

डॉ. पूरन सहगल

लोक मान्यता है कि, त्रिपुर वध के पश्चात प्रसन्न होकर शिव नृत्यरत हो गये। उनके नृत्य को स्वर प्रदान करने के लिए ब्रह्मा ने त्रिपुर के रक्त से मिट्टी सानकर ढोल का निर्माण किया और उसी के चमड़े से उसे मढ़कर ब्रह्मा जी ने गणपति को ताल देने का आदेश दिया। तभी से ताल और वाद्यों की सृष्टि मानी जाती है। भले ही यह एक मिथ कथा हो किन्तु यह कथा ताल और लय के सामंजस्य का तालमेल तो निरूपित करती ही है। लोकवाद्य लोकानुरंजन के सशक्त माध्यम है। कोई भी त्योहार, उत्सव, अनुष्ठान और उमंग का अवसर हो, लोकवाद्यों की स्वर लहरियाँ धरती के अणु-अणु में व्याप्त हो सबरंग-सबरस की वर्षा कर देती है। इन वाद्यों की शक्ति अनंत कोटि की होती है, इसलिए विभिन्न देवताओं ने इन्हें अपना आश्रय बनाया। इनके सहारे शक्ति का विपुल संचरण कर सृष्टि के विकास का आलौकिक कौतुक किया। लोक की मनीषा अपरम्पार और अपौरुषेय है। इसी मनीषा ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप लोकवाद्यों की संरचना कर सृष्टि के विधि-विधान के समवेत किया। लोकमंगल को सहिष्णु बनाया तथा ताल-लय की तपन-लपन से राग-रंग देने का सद् भागीरथ प्रयास किया। प्रकृति की रज भूमि ने अपने अनूठे और अनुपम वाद्यों से लोकलीला को संगी बनाया। इस कारण वे वाद्य ही उस विधा की विशिष्ट पहचान बने। पाबूजी की पड़ के साथ बजने वाला रावणहत्था, देवनारायण की पड़ की गायकी को उदात्त माधुर्य देता जंतर, नवरात्रों में भारत गायकी का हाक देता ढोल, होली को हलरावण देता चंग जैसे वाद्य अपने रंग में बेमिसाल हैं। रेगिस्तान के नड़, खड़ताल, मुरली, सुरिंदा, मटकी जैसे वाद्यों ने पूरी दुनिया को सुरभित बनाया है। आदिवासियों में प्रचलित वाद्यों का अंदाज उनके अल्हड़पन की संजीदगी का शिखर बना हुआ है। धरती पर पहला पुरुष जो भी रहा होगा, वह धरती-पुत्र, प्रकृति-पुत्र, किंवा वन-पुत्र ही हुआ होगा, क्योंकि आज भी वन्य जातियों का समग्र जीवनचक्र वन की प्रकृति और उसके वैभव से जुड़ा हुआ है। वे तन की प्रत्येक हरकत, हवा-पानी, ताप-संताप तथा उत्सव-उमंग के सहभागी होते हैं। वे हर मौसम में वन की हर धड़कन के साथ अपनी सांस का सरगम मिलाते हैं। वनस्पतियों का वैविध्य उन्हें आकर्षित करता है। वस्तुत: आदिवासी समाज वाद्यों का प्रमुख साधक, वादक और आराधक माना जा सकता है। प्रकृतिजीवी यह समाज जीवन की जीवंतता को वाद्यों की लय-ताल से ही संवरता है। इस वन जीवी समाज ने प्रकृति से ही स्वर, लय, ताल, नृत्य, वाद्य और जीवन की जीवंतता का पाठ पढ़ा है। यदि हम वनजीवी समाज के वाद्यों पर एक सहज दृष्टि डालें तब हम पायेंगे कि, इन्होंने ये वाद्य प्रकृति की प्रेरणा से ही प्राप्त किये और फिर इन्हीं वाद्यों का विकास होता गया। वाद्य हमारे जीवन में एक अद्‌भुत ऊर्जा का संचार कर देने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इन्हें भलीभाँति समझने के लिए हमें अपने अतीत में लौटना पड़ेगा। वाद्यों का इतिहास बहुत पुरातन एवं रोचक तथा विचित्र है। अस्थि से लेकर काष्ट, बाँस एवं धातु तक आते-आते इसे हजारों वर्षों की लम्बी संघर्ष यात्रा करना पड़ी है। आज सुषिर वाद्य पूरे विश्व में अपनी गौरव गरिमा के साथ संगीत को प्राणमय करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने में सुषिर वाद्यों का बहुत बड़ा योगदान है। सुषिरवाद्य ही क्यों सभी प्रकार के वाद्यों की यही दिव्यता है। भारत में सबसे पहला सुषिरवाद्य कब बना होगा यह बता पाना सरल और सहज नहीं है। एक लोक विश्वास के अनुसार बाँसों से हवा के घर्षण ने मनुष्य को सुषिरवाद्य बनाने की प्रेरणा प्रदान की। इससे यह तो भासित हो रहा है कि, सुषिर का पहला और मुख्य आधार ''सीटी'' है। सीटी बजाना बहुत पुरानी और स्वाभाविक प्रक्रिया है। बाल-वृद्ध सभी सीटी बजा सकते हैं। यह एक शारीरिक क्रिया है। इसी क्रिया ने फूँक द्वारा बाजा बजाने की प्रेरणा दी होगी। हम ग्रामाचंल में देखते हैं कि, दोनों हाथों को शंखाकार जोड़कर अंगूठों के खोखले भाग से फूँक मारने पर एक शँख ध्वनि प्रकट कर कभी कोयल जैसी और कभी घुग्घु जैसी आवाजें निकाल कर संकेतिक संदेश प्रेषित किए जाते हैं। यदि हम एक बोतल के मुँह पर औंठ लगाकर थोड़ा सा तिरछा रख कर फूँक लगाएँ तब एक सीटी जैसी ध्वनि निकलती है। इस सहज किन्तु अनायास होने वाले खेल प्रयास से सीटी, शँख, फूंकनी, भौपू जैसे सुषिर वाद्यों का जन्म हुआ मानना होगा।

(1) सुषिर का अर्थ ही फूंक द्वारा या हवा के दबाव से बजने वाला वाद्य है। सुषिर का एक अर्थ आकाश भी होता है। आकाश में वायु ही सर्वव्यापी है। आकाश में तीव्र या तेज गति से हवा के बहने से इधर टकरा कर अनेक ध्वनियाँ प्रकट होती हैं। वे सब सुषिर श्रेणी में ही मानी जाती हैं। प्राचीन काल के प्राप्त वाद्यों में अस्थियों से निर्मित सीटी, तुरही, बाँसुरी जैसे सुषिर वाद्यों का मिलना भले ही हमें अचंभित करे किन्तु यह सत्य है एवं सुषिर वाद्यों का आदि स्वरूप है। आदिकालीन सुषिर वाद्यों में सबसे पहला सुषिर वाद्य बाँसुरी माना गया है। यह बाँसीनुमा सुषिर वाद्य विश्व के

अनेक देशों में प्राप्त हुआ है। सुषिर वाद्यों में दो वर्ग होते हैं। पहले वर्ग के सुषिर वाद्यों में कोई यौँत्रिक नली नहीं होती। इस वर्ग में बिगुल, तुरही, सींग तथा कई प्रकार की बाँसुरियाँ हैं। बाँसुरी आदि में अनेक भेद-विभेद होते हैं। दूसरे वर्ग में नलिका में नली या रीड़ लगी रहती है। पशुओं के सींग सबसे पुराने समय से ज्ञात तुरही है। सींग को यों तो आदिवाद्य माना ही जाता है किन्तु संगीत में इसका कोई योगदान नहीं माना जा सकता। वैसी आदिवासी संगीत में सींग प्रयुक्त होता है। लोक साहित्य में स्वाभाविक रूप से इस प्रकार की तुरही का संदर्भ कई संदर्भों में आता है। विशेष रूप से योद्धाओं के कथा प्रसंगों में इस प्रकार की सींग तुरही का वर्णन आता है। संस्कृत और तत्संबंधी भाषाओं में जातक कथाओं में तूर्य का वर्णन आता है। पालि के एक ''मिलिंद प्रश्न'' बौद्ध ग्रंथ में भी सिंग शब्द का उल्लेख मिल जाता है। महाभारत में ''गोविशनिका'' शब्द का प्रयोग मिलता है जो गाय के सींग की तुरही ही मान्य है। भागवत में कृष्ण को ''श्रृंग प्रिय'' कहा गया है। उसी प्रसंग में वे श्रृंग बजा कर जगाते हैं ऐसा उल्लेख भी है। ऐसी तुरही को ''श्रृंगी'' भी कहा गया है। तिरुचिन्नम

सौजन्य चित्र: डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू

प्रायद्वीप में सीधी तुरही की एक विशेष किस्म है। लम्बे और पतले वाद्य की जोड़ी प्राय: बजाई जाती है। कुछ दशक पहले दोनों तुरहियों को वादक एक साथ मिलाकर बजाता था। नेपाल में ऐसा होने का आभास है और इंडोनेशिया में 1300 ईस्वी की एक चाँदी से बनी 'ज्वारी' को भित्ति चित्रों में दिखाया गया है। आदिवासी समुदायों द्वारा भारत के कई अंचलों में अलगोजा बजाया जाता है। यह दो बाँसुरियों का जोड़ा सुषिर वाद्य है। शंख सर्वाधिक प्राचीन सुषिर वाद्य माना जाता है। भारत में ही नहीं मेक्सिको, पेरू, चीन जैसे अनेक देशों में भी शंख वाद्य लोकप्रिय रहा है। शंख भारत में कन्याकुमारी से कश्मीर तक एवं हिमालय सुदूर तक गुजरात से मेघालय तक सर्वत्र पाया जाता है। यद्यपि सुषिर वाद्यों में इस वाद्य का कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं होता तथापि पंच महावाद्यों में इसे स्थान प्राप्त है।

बाँसुरी एक महत्त्वपूर्ण सुषिर वाद्य है। इसे संगीत का महत्त्वपूर्ण वाद्ययंत्र माना जा सकता है। इसकी अनेक किस्में होती हैं। आदिवासी अलगोजा इसी बाँसुरी के जोड़ल्ले से सधता है। बाँसुरी की एक और किस्म भी होती है। इसका फूंक मारने वाला सिरा चपटा होता है। इसे मुंह में दबाकर फूंक द्वारा बजाया जाता है। इसे ''चंचु'' बाँसुरी भी कहा जाता है। यह नाम इसे इसकी चोंचनुमा फूंक मारने वाले मुंह के कारण मिला होगा। आड़ी बाँसुरी इसी वर्ग की एक भिन्न बाँसुरी है। जिसे आड़ी रखकर होठों की फूंक द्वारा बजाया जाता है। यह वेणु नाम से भी जानी जाती है। आदिवासी समुदायों के संगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक इसका यश स्थापित है। ऐसा ही एक सर्वज्ञात सुषिर वाद्य पुंगी है। इसे बीन, महुदी और नागस्वरम भी कहा जाता है। यह सपेरों द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य है। इसके निर्माण का वर्णन आगे किया गया है। पुंगी जैसा ही एक सुषिर वाद्य तारपो होता है जिसे घोंघा, खोगाड़ा और डोबरू आदि नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें पुंगी की छोटी किस्म के स्थान पर बड़ी किस्म की लौक लगाई जाती है।

हारमोनियम का सिद्धांत प्राय: मुख से फूंक मार कर बजाए जाने वाले वाद्यों के सिद्धांत पर निर्धारित किया गया है। हारमोनियम में काम करने वाले चार भाग होते हैं। परदे, वायुकोष्ठ चाबियां तथा रीड, वायुमंडल की हवा को अंदर ले जाने के लिए पर्दों में छिद्र बने रहते हैं। बाहर निकलने से रोकने के लिए चमड़े के कपाट होते हैं। इसी प्रक्रिया से यह संचालित होता है। हारमोनियम भी प्राचीन सुषिर वाद्य है। इसमें समय-समय पर अनेक सुधार होते रहे। आज यह संगीत का शीर्ष सहायक माना जाता है।

संगीत के लिए चारों वर्गों के वाद्यों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए हमें संक्षेप में वाद्यों के शेष तीन वर्गों पर भी संक्षिप्त चर्चा करना अनिवार्य होगी। सुषिर वाद्यों का महत्त्व भी शेष तीनों वर्गों तक वाद्यों अवनद्ध वाद्यों की संगत से ही प्रतिपादित एवं मुखर हो सकता है। ये चारों वर्ग संगीत के प्राणतत्त्व माने जाते हैं। सभी वर्गों के सम्वेत स्वरों से संगीत की लय लोच और स्वर परिपक्व होते हैं। संगीत मानव जीवन की एक दिव्य विद्या है जो हमें सदा जीवित और जीवंत बनाए रखने में सात्विक आनंद प्रदान करती है। संगीतात्मकता हमारे भीतर के तनावों को समाप्त कर सुखद और सुरम्य वातावरण का निर्माण करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भाव है। समस्त रस संगीत के चेरे होते हैं। समस्त अलंकार संगीत के अनुगामी, चारण एवं भांड माने जा सकते हैं।

मानव ने आदिकाल से संगीत को किसी न किसी रूप में अपनी दिनचर्या से जोड़ने का प्रयत्न किया है। दिन भर शिकार के पीछे दौड़ने वाला आदिमानव जब संध्या के समय अपने समूह में लौटता था और आग के अलाव के चारों ओर अपने साथी-संगियों के चक्राकार घूमता हुआ- हाँ-हाँ-हूँ-हूँ करता, तालियाँ बजाता, पैरों को धरती पर धमकाता हुआ आधी रात तक आनंद विभोर हो उठता था। तब उसकी हाँ-हाँ- हूँ-हूँ। तालियों की थपकियाँ, पैरों की धमक एक प्रकार का संगीत ही तो प्रकट करती थी। यही संगीत कालांतर में नृत्य और संगीत की युति के रूप

में परिमार्जित होता चला गया। उसी क्रम में वही मानव लकड़ी या बाँस के पतले-पतले डंडे लेकर जब चक्राकार घूमता था तब वे डंडे एक प्रकार के वाद्य ही तो होते थे। परस्पर टकरा कर ध्वनि करने वाले संगीत वाद्यों में वे डंडे प्रथम अवस्था माने जा सकते हैं। करतल ध्वनि, पैरों की धमक भी तो इसी श्रेणी में रखी जा सकती है। इन्हीं ध्वनियों एवं क्रियाओं के सहज संचालन से प्रकट मुद्राएँ ही आगे जाकर नृत्य के रूप में प्रकट हुई। इस प्रकार संगीत, नृत्य और वाद्यों का प्रथम सोपान आदिमानव ने सहज रूप से प्रारम्भ किया।

सभ्यता के विकास में वाद्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आदिम समय में संदेश भेजने के लिए विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ प्रचलित थीं जो प्राकृतिक माध्यमों द्वारा आपातकाल के समय संचार की प्रथा के रूप में अपनाई जाती थी। सींग के खाली भाग को मुंह से फूंक कर शंख ध्वनि की तरह ध्वनित किया जाता रहा है। इसी श्रृंखला में शनै-शनै विभिन्न प्रकार के माध्यमों से ध्वनि प्रकट करने वाले यंत्र निर्मित होते रहे और संगीत में अभिनव वाद्यों का उदय हुआ। सघन वन उत्तुंग शैल शिखरों के मध्य चांदनी रात में दूर तक गूंजती ध्वनियाँ सीधी हृदय पर प्रहार करती हैं, सहस्त्र धाराओं में फूट कर मन को उन्मत्त कर देने वाली स्वर लहरियाँ अपने आप में थिरकन होती है और मन नाच उठने को उत्सुक हो उठता है। वाद्य आदिवासी नृत्य एवं गीत के प्राण हैं। नृत्य की सफलता वाद्यों पर ही निर्भर होती है।

वाद्यों का संचालन जितना सशक्त होगा नृत्य का आयोजन उतना ही ओजस्वी बनता है। आकदम जातियाँ अपने वाद्य अपनी आवश्यकता के अनुसार कुछ अन्य समाज की सहायता से स्वयं ही बनाती हैं। मुख्य रूप से ढोल, टिमकी, नगाड़े, मंजीरे, चुटका, बिन्नूर आदि ही प्रचलित हैं।

ताल वाद्य- यह मांदर के नाम से पुकारा जाता है। मांदर दो प्रकार का होता है- बड़ी मादर 84 घर और छोटी मांदर 64 घर की होती है। मांदर बनाने का काम वैसे घासिया जाति करती है। मांदर का खोल (कुंडा) मिट्टी का बनाकर पका लेते हैं। उस पर बकरे का चमड़ा मढ़ा जाता है। इसे कसने के लिए चमड़े की डोरी लगायी जाती है। मांदर का गद (मसाला) चावल की लेई, कांच के चूरे तथा सरई के गोंद से बनता है। इसकी आवाज दूर-दूर तक गूंजती है। यह सैला तथा करमा नृत्य में अद्भुत ढंग से बजाया जाता है।

ढोल- इसका खोल लकड़ी का होता है। इस पर भी बकरे का चमड़ा मढ़ा जाता है। इसमें लोहे की पतली-पतली कड़ियाँ लगी रहती हैं। चमड़े अथवा सूत की रस्सी द्वारा ढोल कसा जाता है। फाग तथा सैला नृत्यों के समय ढोल का विशेष रूप से प्रयोग होता है।

टिमकी- कुम्हार मिट्टी से इसका (कुंडा) गढ़ता है और आंच में पकाता है। इसके मुंह पर भी बकरे का चमड़ा मढ़ा जाता है। इसे कसने के लिए चमड़े की डोरी लगी होती है। कोल डहकी, सैला-करमा नृत्य तथा फाग आदि के गायन में इसे बजाया जाता है। दो छड़ियों के माध्यम से इसके स्वर उभरते हैं। नगाड़ा- आदिवासी क्षेत्र में इसे चर्मकार या ढोलकिया लोक उत्सवों के अवसर पर बजाते हैं। नगाड़े जोड़ों में अलग-अलग होते हैं। जिसमें एक की आवाज पतली और दूसरी कर मोटी होती है। इसे लकड़ी की डंडियों से पीट कर बजाया जाता है। यह विशेषकर विरहा, गायन और शादी विवाह के अवसर पर बजाया जाता है।

ठिसकी- इसे बांस को धनुषाकार झुकाकर बनाते हैं, जिसमें गोल लकड़ी के गुटके लगे रहते हैं। करमा-सैला और रीना नृत्य गीतों के समय इसे बजाया जाता है। तंबूरा- यह एक प्राचीन बाद्य है। आदिवासी क्षेत्र में इसका प्रवेश अनुकरण पर हुआ होगा। इसे तम्बूरी के नाम से भी पुकारा जाता है। गोल लौकी(तूंबा) या कद्दू के सूखे खोल में बांस को लगाकर यह बनाया जाता है। इसमें तार या तांत का उपयोग होता है। इसे कसने के लिए बांस के डंडे में ऊपर की ओर खूंटियाँ लगी रहती हैं। भक्ति गीत गाते समय इस वाद्य का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

चिकारा- यह सारंगी का एक आदिवासी रूप है। लकड़ी के पोली खोल में नीचे की ओर गोह का चमड़ा लगा रहता है, ऊपर की ओर खूंटियों से कस कर तीन-चार तार लगाते हैं। इसे घोड़े के बालों से बने धनुष से बजाते हैं। इन बालों पर मालिन गोंद का रोदा चढ़ाते हैं।

मउहर- बांस के दो लम्बे पोले डंडों पर 4-5 छेद कर लिया जाता है। इसे फूंक कर बजाया जाता है।

चुटका- यह लकड़ी का दो भागों में बना होता है। इसे अनेक आकृतियों में खोद कर गढ़ा जाता है। स्त्रियां इसे एक दूसरे पर पटक कर बजाती है। दोनों हाथों से चुटका तालियों जैसी हल्की भारी ध्वनि में बजाया जाता है। यह सभी नृत्यों में सुशोभित होता है। कुछ चुटके धातु से ढाल कर बनाये जाते हैं। उसमें घुंघरु जुड़े होते हैं। लकड़ी के चुटकों की अपेक्षा इनकी ध्वनि मधुर होती है।

ढोल एवं ढोलक- ढोल बड़े-छोटे अनेक प्रकार के होते हैं। ढोल कुछ लम्बा आकार लिए हुए होता है। इसे बजाने का तरीका भी भिन्न-भिन्न है। बस्तर में बड़े ढोल छड़ियों के द्वारा बजाये जाते हैं। छत्तीसगढ़ के लोक नृत्यों में इसका महत्त्व बहुत अधिक है। ढोलक इसी का ही छोटा रूप है। इसे हाथों से बजाया जाता है। ढोलक के कई कुशल वादक ऐसे बोल बजा देते हैं, जो मृदंग पर निकालने संभव नहीं होते। एक किंवदंती के अनुसार, दतिया राज्य के सुविख्यात मृदंग वादक कुदऊसिंह के साथ महाराजा के समक्ष एक लोक ढोल वादक ने अपनी ढोलक पर कुछ ऐसे बोल प्रदर्शित किये, जनको कुदऊसिंह अपने मृदंग नहीं निकाल सके; जिसके कारण उनका गर्व चूर हो गया था।

टिमकी- यह एक छोटे आकार वाला मिट्टी का वाद्य है। इसे छोटी-छोटी डंडियों से बजाते हैं तथा फाग नृत्य में विशेष रूप से इसका प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त धनुषाकार 'ठिसकी' वाद्य भी लोकनृत्यों में बजाया है।

खंजरी- किंगीरो और इकतारा प्राय: भजन-कीर्तन के समय

बजाये जाते हैं तथा मंजीरे, खड़ताल, चिमटे आदि का प्रयोग भी मंदिरों में भक्तगण भाव-विभोर हो कर कीर्तन-भजन में करते हैं। होली, दीवाली जैसे त्योहारों पर इनकी धूम रहती है। कुम्हारों का मटका भी उत्सवों में बजाया जाता है।

इसका निष्कर्ष यही निकलता है कि, वाद्य हमारे जीवन में पूर्ण रसास्वादन करने में सहायक हैं। उन्होंने हमारे जीवन को उल्लास तथा सौन्दर्य प्रदान किया है। नृत्य और संगीत दोनों ही वाद्यों पर आश्रित हैं। अत: लोक जीवन में इन लोककलाओं को सुरक्षित रखने में वाद्यों ने बड़ी सहायता प्रदान की है। ये वाद्य तो केवल एक बानगी है। इनका परिवार तो बहुत बड़ा और आनंददायी है। यदि हम प्रकृति के सन्निकट जाकर उसका सूक्ष्म निरीक्षण करें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि, संगीत और संगीत को प्रकट करने हेतु उपलब्ध वाद्य एवं नृत्य गान की प्रथम पाठशाला तो प्रकृति ही है। प्रकृति नटी की रूप-स्वरूप छवियाँ हमें जहाँ आनंदानुभूति का आभास करवाती है। वहीं हमें संगीत-नृत्य और वाद्यों के निर्माण की प्रेरणा भी प्रदान करवाती है। इसलिए कहता हूँ प्रकृति जहाँ हमारे संगीत-नृत्य की पाठशाला है वहीं वह इस विद्या की प्रथम शिक्षिका भी है। ठीक उसी तरह से जिस तरह से माँ शिशु की प्रथम गुरु और माँ का आँचल प्रथम पाठशाला होती है। माँ की लोरियाँ संगीत का प्रथम सोपान।

कोयल की पंचम स्वर में होने वाली कुहूऽऽ-कुहूऽऽ, कौए की काँऽव-काँऽव, कपोतों की गुटुर गूँऽऽ-गुटुर गूँऽऽ, मयूर की पीकांऽऽक-पीकांऽऽक। चिड़ियों की चीं-चींऽऽ एवं सूर्य की अभ्यर्थना में उनकी समवेत स्वरों की चहचहाट, भंवरों की गुनगुनाहट, झींगुरों की निरन्तर होने वाली ऊँऽऽ-ऊँऽऽ की तारतम्यता, सियारों की रात्री वेला में होने वाली हुआंऽऽ-हुआंऽऽ, सिंहों की दहाड़, बैलों की डंकार, गायों की रंभाहट, बिल्लियों की म्याऊँऽऽ-म्याऊँऽऽ, बाँस वन में हवा की सरसराहट से बजने वाली सीटियाँ, मेघों की गड़गडाहट, हाथियों की चिंघाड़ और भारी पैरों से चलने की ताल ध्वनियाँ, वृक्षों की झूमने और लताओं के वृक्षालंगन, वर्षा की वृक्ष के पत्तों से पत्ते से दूसरे पत्ते पर टपप-टप्प धरती पर गिरने वाली वर्षा बूंदों की तालमय क्या हमें संगीत और नृत्य की ध्वनियों और मुद्राओं का आभास नहीं देती ? क्या मयूर और कपोत का चक्राकार नृत्य हमें नृत्य मुद्राओं का भान नहीं करवाता ? वस्तुत: यही ध्वनियाँ एवं मुद्राएँ हमें संगीत का पहला पाठ पढ़ाती हैं वही संगीत को मुखर करने के लिए वैसी की वैसी ध्वनियाँ प्रकट करने के लिए हमें प्रेरित भी करती हैं वही प्रेरणा भिन्न-भिन्न एवं भाँति-भाँति के वाद्यों के निर्माण के लिए भी हमें उत्साहित करती रही है। प्रकृति की इन वर्णित ध्वनियों में तत्वाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य एवं घन वाद्य के प्रारंभिक आधार हम भलीभाँति अनुभव कर सकते हैं। यह बात भिन्न है कि, हमने शास्त्रीय स्तर पर सुविधा की दृष्टि से वाद्यों को चार भागों में विभाजित कर लिया है। इन चारों वर्गीकृत वाद्यों का उल्लेख यहाँ दे देना आवश्यक है। आवश्यक इसलिए भी कि, हम इनके वास्तविक कुलवंश से अवगत हो सकें।

सौजन्य चित्र: डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू

तत वाद्य- रवाज, सुरिंदा, अपंग, जन्तर, अभंग, कामायचा, सारंगी- प्यालेदार सारंगी, गुजतराण सारंगी, सिंधी सारंगी, खमाज, जोगिया सारंगी, पाविया सारंगी, रावणहत्था, नरेली, कामरिया सारंगी, वीणा एवं ऐसे ही अनेक लोक प्रचलित वाद्य यंत्र।

अवनद्ध वाद्य- डमरू, डेरू, ढाक, चंग, चंगड़ी, डफ, घेरा, खंजरी, बम्म, दमामा, धूँसा, कामट, कुँडी, नगारा, तासा, मादल, ढोल, ढोलक, नट ढोलक, मिरदंग, पखावज आदि।

घन वाद्य- घुँघरु, डंडिया, घंटा, घड़ियाल, थाली, कटोरा, चिमटा, मंजीरा, खड़ताल, जिक्री, मोरचंग, मटकी, करगल, सांकल आदि।

सुषिर वाद्य- बाँसुरी, मुरली, अलगोजा, पावाजोड़ी, पावरी, रोला, पावडोढ़ा (दो बाँसुरी मुरली वाले सभी सुषिर वाद्य लगभग एक समान ही होते हैं।) सुरणाई- (शहनाई), टोटो, नफीरी, मशक, पैली, बांसली, नड़, बांकिया, बरगू, भूंगल, करणा, नागफणी, शंख, सिंघी, तुरही, पुंगी (बीन), तारपां-तारणी आदि।

यदि शास्त्रीय मानदण्डों से सहज रूप से विवेचन करें तो कहेंगे सुषिर वाद्यों में सभी मुख वाद्य, ओष्ट्य वाद्य, कंठ वाद्य, छिद्रवाद्य, फूंकवाद्य स्वांस वाद्य और स्वर वाद्य शामिल हैं। वस्तुत: सुषिर वाद्य शेष वाद्यों के वर्गीकरण के सिरमौर माने जाते हैं। उनके बिना संगीत अलूणा, फीका, सारहीन एवं आनन्दहीन होकर अधूरा रह जाता है। ढोल, ढोलक, खंजरी और चंगड़ी ऐसे अवनहद वाद्य हैं जिन्हें पुरुषों के अतिरिक्त महिलाएँ भी अधिकतर बजाती दिखती हैं। विशेष रूप से पेशेवर जाति की महिलाएँ ढोल-थाली का वादन करती हैं। महिलाओं के नृत्यों में भी वे इन वाद्यों को बजाती हैं। विशेष रूपेण कलावंत जातियों की महिलाएँ जब बैठकर गीत गान करती हैं तब ढोलक का उपयोग करती हैं। यथा माढ़ गाते समय तो ढोलक की थाप तन-बदन और प्राणों का विचलित कर देती हैं।

इस प्रकार घुंघरु, ताल, मजीरा, थाली, कटोरा, मोरचंग, घोरालिया एवं चूड़ियाँ जैसे घनवाद्यों को भी बहुधा महिलाएँ ही गीत गान के समय बजाती हैं। कामड़ जाति की महिलाएँ अपने विभिन्न अंगों पर मंजीरे बाँध कर विशिष्ट रूप से नृत्य करती हैं। स्वर शास्त्र के विद्वान जहाँ संगीतिक ध्वनि सिद्धांत के अनुरूप तत् अवनद्ध, घन और सुषिर वाद्य के रूप में चार वर्ग निर्धारित करते हैं वहीं संगीत की वस्तुस्थिति के आधार पर उन्हें दो विभागों में बाँटते हैं। स्वर एवं उसके क्रमिक स्वरूप को अभिव्यक्त

करने की क्षमता रखने वाले वाद्य और दूसरे वे वाद्य जो केवल लयकारी का धर्म निर्वाहित करते हैं। तत् एवं सुषिर वाद्य, स्वर वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। तथा अवनद्ध वाद्य तथा घन वाद्यों को ''लय वाद्यों'' की श्रेणी में रखा गया है। इस नियम में कहीं-कहीं अपवाद भी हैं। यथा अपंग और अभंग वाद्य तार वाले वाद्य होते हुए भी अभिव्यक्त करने वाले वाद्यों में माना जाता है। इसी प्रकार मोरचंग और घोरलिया के वादन में लय एवं कतिपय स्वरों का संयोजन भी होता है। वाद्यों के विषय में हमें उपनिषद युग में स्वरीय संगीत के साथ-साथ वाद्य संगीत भी प्रचलित था ऐसे सूत्र मिल जाते हैं। उस युग में गीत-वाद्य तथा नृत्य से प्राप्त आनंदानुभूति को अलौकिक माना गया है। कठोनिषद में यमराज श्रेयमार्ग के पथिक नचिकेतस को संगीत के दिव्यानंद का प्रलोभन देते हुए कहते हैं कि, ''ये रूपपेशल यौवनाय हैं।'' जो वाद्यों सहित, रथों सहित और गाजे-बाजे सहित हैं। और जो मनुष्य लोक में दुर्लभ हैं। उन्हें तुम मांग लो। **''इमा रामा सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्येः''**- कठो. उपनिषद 1-25। इसी संदर्भ से यह ज्ञात हो जाता है कि स्त्रियाँ भी संगीत में निष्णात थीं। वे गायन के साथ-साथ वाद्यों को भी बजाने में निष्णात थीं। इस युग में नृत्य और गीत भी प्रचलित थे। उपनिषद युग में संगीत कला में निपुण वर्ग का स्वर्गिक आनंद को भोगने वाला माना जाता था। जो व्यक्ति सत्यसंकल्पवान होता था उसे 'गीतवादित्र लोक' की प्राप्ति ही हो जाती थी। अत: वाद्यों के साथ-साथ गायन की परंपरा भी इस युग में प्रचलित थी। तत्युगीन वाद्यों में दुन्दुभि, शंख, वीणा, लम्बर, तूर्य, झपताल (करताल) आदि प्रमुख रूप से हैं। ऋषियों ने इन वाद्यों का दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए दृष्टान्त रूप में किया है। इन्हें श्रेष्ठ मानकर आर्षवाद्य कहा है।

दुन्दुभि- यह वाद्य नक्कारे या भेरी का पर्याय है। दुन्दुभि ऐसा वाद्य है जिस पर दण्डादि से ताड़न कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। दुन्दुभि पर जब दण्डप्रहार करते हैं तब उसमें से शब्द निकलकर बाहर आता है। **''स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्यांशब्दश क्नुयादग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दोगृहीत।** - वै. इं भाग 1 पृ. 413

वीणा- वीणा एक तार वाद्य है। इसे तत् वाद्यों के वर्ग में माना गया है। सरस्वती और नारद का यह प्रिय वाद्य प्रसिद्ध है। **''स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्यांशब्दांशवनु- याद गृहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दोगृहीत।''** - वृह. उप. 2.4.9 इसे बजाने वाले को वीणावादक कहा जाता था। ऐतरेय आरण्यक के अनुसार यह यंत्र केशयुक्त चर्म से ढका जाता था। इसके विभिन्न नाम थे शिरस, उदर, अम्भरण, तंत्र और वादउन। वीणावादिनी माता सरस्वती का यह वाद्य विशेष रूप से जाना जाता है।

लम्बर- लम्बर एक वाद्य विशेष का नाम है। यथा 'लम्बरस्य खम्म' यह वाद्य छिद्रयुक्त होता है। डायसन के मतानुसार लम्बर एक ऐसा वाद्य है जिसके ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। उन्होंने 'लम्बर' और दुन्दुभि को भिन्न-भिन्न माना है। - **लम्बस्य खं वादित्र विशेषस्य छिद्रपरिमाणं......।** -वृ. उप. शां. भा. 193 अत: उपनिषद युग में स्वरीय और यंत्रीय दोनों प्रकार का संगीत प्रचलित था। सामगायन युग में संगीत के उच्च मानदंडों को स्थापित किया है। भगवान विष्णु के हाथ में शंख (सुषिर वाद्य), भगवान शिव के हाथ डमरू (अवनद्ध वाद्य), माता सरस्वती के हाथ में तथा नारद के हाथ में वीणा (तत् वाद्य) नारद के ही हाथ में झपताल (घन वाद्य) भगवान कृष्ण के हाथ में बाँसुरी (सुषिर वाद्य) जगत प्रसिद्ध है। जिस प्रकार शंख का नाद युद्ध का आव्हानक है उसी प्रकार विष्णु के ही अवतार कृष्ण की बाँसुरी प्रेम की, शांति और सृजन की मनमोहक माधुरी है। यदि भगवान शिव का डमरू सृष्टि के विचलन का कठोर नाद है तो माता सरस्वती की वीणा संगीत की आनन्दानुभूति की स्वर साधना। वहीं नारद की वीणा भक्ति, समर्पण और संतुलन की झंकृति तथा उनकी झपताल स्थिरता, सुख और तन्मयता का ब्रह्मनाद। इन सभी वाद्यों में तत् वाद्यों और सुषिर वाद्यों का समन्वय है। इन्हीं वाद्यों के स्वरों लयों और लोचों में हमारी प्राचीनतम संस्कृति की दिव्यता और भव्यता समाहित है। इन्हीं में सृष्टि का सृजन, पालन, सुख, शांति, स्नेह, प्रेम, उल्लास, उमंग और प्रकृति और पुरुष के मधुर मिलन का संयोजन एवं समन्वय भी निहित है। इन्हीं में शिव का डमरू का नाद, उनका तांडव और गौरां का लास्य भी समादृत है। इन सभी वाद्यों का जो रूप हम आज देख रहे हैं उनका आदिस्वरूप तो हमारे वनवासियों ने ही पूर्व में बनाया था। उनका निर्माण आवश्यकता के अनुसार हमारे वनवासी समाज ने ही किया। भीलों में प्रचलित मादल, ढोल, कुंडी मीणों में जगंली जानवरों को डरा कर भगाने के लिए नार हुकारणी, गरासियों में पाये जाने वाले कुंडी-धोरिया, कथौड़िया तारपी, पावरी, टापरा, बालीसर, गोराड़िया, सहारियों के धूम धड़ाकख शिल्पा, मुश्की, जैसे संगीत वाद्य आज भी उपयोग में आते हैं। चारों निर्धारण करना कहुत कठिन है कि चारों वर्गों में से कौन सावर्ग यंत्र समूह पहले अस्तित्व में आया।

शंख या बाँसुरी- डमरू अथवा वीणा अथवा झपताल। तत्वाद्य, अवनद्ध वाद्य, सुषिर वाद्य अथवा घन वाद्य या फिर चारों वाद्यों समूह। क्या हम अवतार काल से बाँसुरी और शंख का काल निर्धारण कर सकेंगे? शायद नहीं। बाँसुरी जैसे सुषिर वाद्य की यह मिथ कथा कुछ विशिष्ट संकेत करती दिखती है।

बाँसुरी- कहते हैं एक आदिम युवा नर समवयस्क मादा पर आसक्त हुआ। प्रयत्न करने के बावजूद भी वह युवती मादा को रिझा कर उससे जोड़ी नहीं बना पा रहा था। एक दिन उसने देखा युवती बाँस वन के एक झुरमुट के समक्ष एक शिला पर आनन्दमग्न बैठी थी। युवा नर ने विचार किया कि, इसके इस प्रकार आनंदित होकर मन मुग्ध होने का कारण क्या हो सकता है? तभी उसे लगा बाँस झुरमुट से एक मधुर ध्वनि निकल रही है। वह ध्वनि ही उस मादा युवती को मोहित कर रही है। वह मधुर ध्वनि हवा के बहने के कारण बाँसों की रगड़ से निकल रही थी।

उस युवा नर को प्रेरणा मिली और उसने अपने पाषाण हथियार से एक पतला बाँस काटा। उसे पोला किया फिर उसमें जोर की फूंक लगाई। एक ध्वनि तो निकली किन्तु वह ध्वनि उस बाँस झुरमुट से निकलने वाली ध्वनि जैसी मधुर नहीं थी। युवा नर ने हिम्मत नहीं हारी। होठों को सिकोड़ करफैला कर फूंक लगाने का प्रयत्न वह करता रहा। एक प्रभात उस बाँस से उसने एक मधुर स्वर निकाल ही लिया। वह स्वर मादा युवती के कानों में पड़ा वह अपनी गुफा से बाहर निकली और उस मधुर ध्वनि का अनुसरण करती-करती उस युवा नर के सामने जा पहुँची। युवा नर तन्मय होकर अपनी फूंक द्वारा मधुर ध्वनियाँ निकाल रहा था। दोनों के नेत्र मिले। दिल मिले और फिर तन मिल गए। इस प्रकार एक मादा युवती और युवा आदिम नर का मिलन हो गया। दोनों साथ-साथ रहने लगे। उस युवा आदिम नर ने बाँस में से और भी मोहक ध्वनियाँ निकालीं। उसमें सुधार किए। उस आदिम युवा नर का बाँस प्रयास ही आगे चलकर बाँसुरी बना। उसी बाँसुरी ने राधा-कृष्ण अर्थात प्रकृति पुरुष का युगल बनाकर प्रेममय भक्ति का संदेश जगत को दिया। वह युवा आदिम मादा और उस आदिम युवा नर को भी हम अपने युग का कृष्ण-राधा अवतार कह सकते हैं। उन्हीं के योग-संयोग से बाँस से बाँसुरी बनी। आवश्यकता ने आविष्कार कर दिखाया। आज सुषिर वाद्यों में बाँसुरी सर्वश्रेष्ठ वाद्य माना जाता है। कृष्ण युग में उसी बाँसुरी में नारायण ने अपने शंख की ऊर्जा, उमंग और ओजस्विता का ओज भरा। शिव ने अपने डमरू का ब्रह्मनाद समाहित किया। सरस्वती ने अपनी वीणा के स्वर भरे और नारद ने अपनी वीणा और झपताल की भक्ति, निष्ठा एवं समर्पण का समावेश किया। इस प्रकार समस्त वर्गीय वाद्यों की समवेत मधुरता बाँसुरी में समा गई। वही वरदायी बाँसुरी कृष्ण के हाथों से उनके होठों तक पहुँची और जगतमोहनी रूप धारण किया। ऐसा ही एक मिथक लोकवाद्य रावणहत्था के विषय में भी लोक चर्चित है।

रावणहत्था- कहते हैं रावण ने अपने द्वारा रचित स्त्रोंतो को गाकर अपने इष्टदेव भगवान शिव को प्रसन्न करना चाहा किन्तु उसके पास कोई वाद्ययंत्र नहीं था। उसने अपने एक शीश, एक पैर की अस्थी, एक लम्बी नस निकाल कर एक तत्वाद्य बनाया। अपने शीश के केशों से गज में तार लगाए और एक वाद्य का निर्माण किया। उसका नाम ''रावणहत्था'' हुआ। आज तो रावणहत्था (रणत्या) तत् वाद्य भोपे गायक बजाते हैं यह उसी रावण द्वारा निर्मित वाद्य का ही सुधरा रूप है। इसके गज में घुंघरु बांध कर इसमें घनवाद्य का सर भी शामिल कर दिया गया है। भगवान शिव प्रसन्न हुए और रावण को वरदान प्रदान कर उसकी देह भी पूर्व जैसी पूर्ण कर दी।

शहनाई- सरणाई, सरनाई वाद्य सुषिर वाद्य है। इसी को शहनाई कहा गया। लोक का आदिवासी लोक परम्परा में इसको सरनाई या सरणाई ही कहा जाता है। सरनाई सम्पूर्ण दक्षिण भारत से उत्तर के हिमाचल प्रदेश तक भिन्न-भिन्न नाम और आकार से पाई जाती और बजाई जाती है। सरनाई के उद्भव संबंधी एक मिथ कथा इस प्रकार है।

- ''एक बार एक गडरिया भेड़े चरा रहा था। जब उसकी भेंड़े चरते-चरते दूर निकल जाती तब उन्हें पुकार कर अपने पास बुलाने के लिए वह अपने मुंह से विशेष प्रकार की आवाज निकाल कर अपनी भेंड़ों को पुकारता था। भेंड़े उस ध्वनि से परिचित हो गई थीं। वे दौड़ी-दौड़ी अपने चरवाहे के निकट आ जाती थीं। गडरिया कई बार अपनी आवाज भेंड़ों के झुण्ड तक नहीं पहुँचा पाता था। तब उसे वृक्ष पर चढ़कर आवाजें लगाना पड़ती थी। एक दिन वह पीपल वृक्ष के नीचे बैठा-बैठा पीपल के पत्तों से खेल रहा था। खेल-खेल में उसने एक पत्ते को गोलाकार बनाकर उसमें फूंक लगाई। उसमें से कोई ध्वनि विशेष तो नहीं निकली किन्तु उस खेल को उसने कौतुकवश जारी रखा। संयोग से एक गोलाकार पत्ते से सीटी जैसी आवाज निकली। उसने अगली बार उसमें सुधार किया। इस बार सीटी की आवाज अधिक तेज निकली। अब तो उसने उस क्रीड़ा को प्रयोग बना लिया। कुछ दिनों के प्रयोग-प्रयास से पीपल के पत्ते से पतली सीटी जैसी आवाजें निकालने में वह पारंगत हो गया। उसकी देखा-देखी अन्य गडरियों ने पत्तों से सीटी बजाना सीख लिया। भेड़ों को उन सीटियों से परिचित करवाया। इस प्रकार वह प्रयोग भेड़ों के अपने पास बुलाने का कारगर तरीका बन गया। धीरे-धीरे गडरियों ने पीपल पत्तों से फूंक द्वारा अनेक प्रकार की ध्वनियाँ निकालना शुरु कर दिया। उस पत्ते की सीटी का नाम ''पीपड़ी' पड़ गया।'' आज भी उसे पीपाड़ी कहा जाता है। आज भी जनजातियों में फूंक से बजाए जाने बाँसुरी (मुरली) जैसे वाद्य को भी पीपाड़ी कहा जाता है।

नड़- ऐसे ही वाद्य जो फूंक द्वारा बजाए जाते हैं। बाँसुरी के अलावा अलगोजा, सतारा, नड़, तारपी, टोटो, (बीन) पुंगी, धुरालिया, पावरी, बांकिया, भूंगल, मोरचंग तथा तुरही आदि हैं। जिन्हें जनजातियों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर बजाया जाता है। ये सभी सुषिर वाद्ययंत्र अपनी शास्त्रीय पोषाखें पहनकर शहनाई के रूप में विकसित हुए हैं। पीपाड़ी शहनाई की जननी है।

तुरही- ऋग्वेद में शहनाई जैसे ही एक सुषिर वाद्य ''तुणव'' का उल्लेख मिलता है। महऋषि मतंग ने इसी वाद्य को ''महुवरि'' के नाम से अभिहित किया है। ''संगीत रत्नाकृत'' ग्रंथ के रचयिता पंडित शारंगदेव ने तूर्य प्रकार के वाद्यों में काहल, तुण्डकिणी और चक्का वाद्यों का विस्तार से वर्णन किया है। तुर्य का लोकार्थ तुरही है। वस्तुतः शहनाई को ''तुर्य'' श्रेणी के सुषिर वाद्यों में ही माना जाता है। शहनाई को कश्मीर में सुरनाई, मालवा-मेवाड़ व समग्र राजस्थान में सुनाई, महाराष्ट्र में पीपाड़ी, उत्तरप्रदेश में शहनाई, बिहार में पेन्द्रे, उड़ीसा में मोहुरी, उत्तर भारत में नफीरी और नोबत कहा जाता है। बंगाल में शनाई, तमिलनाडू में नागस्वरम्, मुखवीणा कहा जाता है। संगीत परिजात में इसे सुनादी नाम से जाना गया है। सुनादी अर्थात ''सुनादी'' जिस वाद्य से सुंदर वाद्य प्रकट हो वह सुनादी कहा गया। तानसेन कृत संगीतसार में भी इसे 'सुनादी' ही कहा

गया है। दक्षिण भारत के कर्नाटक, केरल तथा उड़िसा में यह पंचवाद्य में शामिल मानी जाती है। इन पंच वाद्यों में कोम्बू, शंख, मुखवीणा, मेहुरी, ढांलक, तिमिला, इडिका, झांझर, तालम आदि वाद्य प्रयुक्त किए जाते हैं। जनजातियों में भी इन वाद्यों का प्रयोग उत्सवीय अवसरों पर किया जाता है।

नफीरी- नादस्वरम, नफीरी, शहनाई, सुन्दरी, सुरनई (सुणाई) जैसे इन वाद्यों में केवल आकार-प्रकार, वादन प्रक्रिया और निर्माण की तकनीक के अतिरिक्त कोई विशेष अन्तर नहीं होता।

नक्कारा- आइने अकबरी में अबुल फजल ने जिस नोबत खाने का उल्लेख किया है। उसमें शहनाई प्रमुख सुषिर वाद्य माना जाता है। शेष कर्णा, सरना, नफीरी और सींग सुषिर वाद्य हाते हैं। घन वाद्यों में झांझ, मजीरा और दमामा, दुक्कड़ तथा नक्कारा, अवनद्ध वाद्यों समेत नौ वाद्य समाहित होते हैं। इसी कारण उस वाद्य समूह को नोबत कहा गया है। शहनाई का निर्माण बाँस के बजाए सागवान अथवा बरमा टीक या विजयसार की काष्ट से किया जाता है। कहीं-कहीं रक्तचन्द ने काष्ट से भी इसका निर्माण किया जाता है। शहनाई भारत का ऐसा सर्वप्रिय सुषिर वाद्य है। जिसे समस्त उत्सवीय अवसरों पर बजाया जाता है। प्रसिद्ध शहनाई वादक बिस्मिलाखां ने तो शहनाई वाद्य को विश्वप्रिय एवं विश्ववंद्य बना दिया है। पपीड़ी से विकसित यह सुषिर वाद्य अपने भीतर अनेक स्मृतियाँ समेटे हुए है। मैं तो पीपल पत्ते से बनी गडरियों की पपीड़ी को भी सुषिर वाद्य की श्रेणी में ही मानता हूँ। उसी पीपल पत्ते ने शहनाई की परिकल्पना प्रकट की। शहनाई ने अपना वर्तमान रूप प्राप्त करने में अनेक निर्माण यात्राएँ एवं अनेक नामों की यात्राएँ एवं नाम उपाधियाँ प्राप्त की। शहनाई की ही भाँति सुषिर वाद्यों का सिरमौर वाद्ययंत्र बाँसुरी केवल भारत में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में भिन्न-भिन्न नामों, प्रकारों और स्वभावों में अलग-अलग में पाई जाती है। अब तक उपलब्ध जानकारियों के आधार पर यह ज्ञात है कि, सुषिर वाद्यों में बाँसुरी सर्वाधिक प्राचीन वाद्य है। काष्ठ वाद्य परिवार के संगीत की संगिनी बाँसुरी नरकट वाले काष्ठ वाद्य उपकरणों के विपरित बाँसुरी एक बिना नरकट वाला वायु उपकरण है जो एक छिद्र के पार हवा के प्रवाह से ध्वनि उत्पन्न करता है। बाँसुरी को तीव्र आघात वाले एरोफो के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। हमारे भारतीय खोजकर्ताओं ने पुरा सम्पदा के क्षेत्र में बहुत कम सर्वेक्षण किया है। इसका मूल कारण भारत का वर्षों तक गुलामी के बंधनों में बंधा रहना भी है। हमारी संस्कृति, हमारा इतिहास, हमारी पुरा सम्पदा और हमारी आर्थिक मीमांसा भारतियों के बजाय विदेशी विद्वानों ने की। फलत: उनके सर्वेक्षण का आधार क्षेत्र भी भारत के अलावा अन्य देश रहे। भारत को सदा उपक्षित, पिछड़ा और पश्चात विकसित सभ्यता वाला देश निर्धारित करने का सुनियोजित षडयंत्र किया जाता रहा। हम वाद्ययत्रों की बात करें तब भी सारे सर्वे विदेशी संस्कृति के आधार पर निर्धारित किए गए हैं।

बाँसुरी के इतिहास के विषय में सर्वे के अनुसार खोजी गई पुरानी बाँसुरी एक गुफा में रहने वालेएक तरूण भालू की जांघ की हड्डी का एक टुकड़ा हो सकती है जिसमें दो से चार छेद हो सकते हैं। हालांकि इस तथ्य की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं है। सन् 2008 में जर्मनी के पास उल्म के पास होहल फेल्स गुहा में एक और प्राचीन बाँसुरी मिली है। इस पाँच छेद वाली बाँसुरी में एक V(वी) आकार का एक मुख पत्र है और एक गिद्ध के पंख से यह बाँसुरी बनाई गई है। इसका समय आज से लगभग 3500 वर्ष पुराना है। खोज में शामिल शोधकर्ताओं ने अपने निष्कर्षों को सन् 2009 में ''नेचर'' नामक जर्नल में अधिकारिक रूप से प्रकाशित किया है। हंस हड्डियों से निर्मित बँसुरियाँ जो जर्मनी की इसी गुफा से प्राप्त हुई थीं इन्हें प्राचीनतम ज्ञात वाद्यों में माना गया है। बाइबिल की जेनेसिस में जुबल को जो उन सभी का पिता कहा गया है। अगब और किन्नौर बजाता हुआ दिखाया गया है। भारतीय संस्कृति एवं पुराणों में भी बाँसुरी हमेशा से वाद्य में महत्त्वपूर्ण वाद्ययंत्र माना जाता रहा है। कुछ वृतातों द्वारा क्रास बाँसुरी का उद्भव भारत ही माना जाता है क्योंकि भारतीय साहित्य में बाँसुरी का विस्तार से विवरण है। अधिक ध्वनि के लिए बाँसुरी कोबड़े अनुनादक, बड़ी वायुधारा या बड़े वायुधारा वेग का अनुवादन करना पड़ता है। पुलिस की सीटी भी बाँसुरी का ही एक रूप है। यह अपने स्वर में बहुत विस्तृत होती है। इसीलिए पाइप आर्गन एक संसर्ट बाँसुरी की तुलना में अधिक तेज आवाज का हो सकता है। एक बड़े आर्गन पाइप में कुछ क्यूबिक फीट वायु हो सकती है। जबकि बाँसुरी की वायु धारा की माप एक इंच से थोड़ी बड़ी होती है। वायुधारा को एक उचित कोण एवं वेग से प्रवाहित करना चाहिए। अन्यथा बाँसुरी में कंपन नहीं होगा। सामान्य गुणवत्ता या ''ध्वनिरैग'' जिसे स्वर कहते हैं, में परिवर्तन होता है। क्योंकि, बाँसुरी कई भागों में एवे गहनताओं में स्वर उत्पन्न कर सकती है। ध्वनि विज्ञान निष्पादन एवं स्वर के प्रति शीर्ष जोड़ ज्यामिति विशेष रूप से जटिल होती है। एक विशेष अध्ययन में जिसमें व्यावसायिक वादकों की आँखों पर पट्टी बाँधी गई थी। यह पाया गया कि, वे विभिन्न धातुओं से निर्मित

सौजन्य चित्र: डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू

वाद्ययंत्रों में कोई अंतर नहीं खोज पाए। आँख बंद कर के सुनने पर पहली बार में कोई वाद्य कीसही पहचान नहीं कर पाया एवं दूसरी बार में केवल चाँदी यंत्र ही पहचान जा सका। नियमित स्वर परीक्षण यह दर्शाते हैं कि, नली का द्रव्यमान परिवर्तन उत्पन्न करता है एवं अंत: नली घनत्व एवं दीवार की मोटाई परिवर्तन पैदा करेगी।

अधिकतर वादक ओठ के किनारों से बाँसुरी को बजाता है। हांलाकि कुछ बाँसुरियाँ, जैसे विसल, फ्लैजियोलैट, जैमशोर्न, रिकार्डर, टिन विससल, टोमेट, फजारा एवं ओकारिना में एक नली होती है जो वायु को किनारे तक भेजती है। फिपिल नामक एक व्यवस्था इन्हें फिपिल फ्लूट कहा जाता है। फिपिल यंत्र को एक विशिष्ट ध्वनि देता है। जो गैर फिपिल फ्लूटो से अलग होती है। एवं यह यंत्र वादन को आसान बनाता है। लेकिन इस पर संगीतकार या वादक का नियंत्रण कुछ कम होता है। भारतीय बाँस निर्मित एक कर्नाटकीय आठ छिद्रों वाली बाँसुरी विशेष रूप से कर्नाटकीय संगीत में प्रयोग की जाने वाली शास्त्रीय संगीत कलाकार द्वारा बजाई जाने वाली बाँसुरी है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में बाँस से निर्मित बाँसुरी एक महत्त्वपूर्ण वाद्य है। भगवान कृष्ण को परम्परागत रूप से बाँसुरी वादक माना जाता है। यद्यपि भारतीय बाँस बाँसुरी पश्चिमी चाबी वाली बाँसुरियों की तुलना में साधारण लगती है। तथापि इनकी स्वर माधुरी विश्व में विख्यात है। महान भारतीय बाँसुरी वादक पन्नालाल घोष ने सर्वप्रथम छोटे वाद्य बाँसुरी को सात छिद्रो वाली 32 इंच लम्बी बाँसुरी में परिवर्तित किया और इसे परम्परागत भारतीय शास्त्रीय संगीत बजाने योग्य बनाया। उन्होंने अपने सतत अनुभव और अभ्यास के बलबूते पर इसे अन्य शास्त्रीय संगीत वाद्यों के कद का बना दिया। अतिरिक्त छिद्र ने मध्यम बजाना संभव बनाया जो कि, कुछ परम्परागत रागों में यह सुषिर वाद्य अधिक सक्षम हो गया।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की धुनों और सूक्ष्मता का भलिभाँति प्रकट करने के लिए पंडित रघुनाथ प्रसन्ना ने बाँसुरी वादन के क्षेत्र में विभिन्न तकनीक का विकास किया है। वास्तव में उन्होंने स्वयं के परिवार के सदस्यों को प्रशिक्षण देने के लिए अपने घराने को मजबूत आधार प्रदान किया। इस घराने के शिष्यों में पंडित भोलानाथ प्रसन्ना, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया, पंडित राजेन्द्र प्रसन्न विश्वभर में बाँसुरी के मधुर संगीत के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय कंसर्ट बाँसुरी मानक स्वरबद्ध लहरियों पिचोलब्ध हैं। कर्नाटक सपर उपसंगीत में इन स्वरबद्ध लहरियों को नम्बर से द्वारा गिना जाता है। किसी भी रचना का स्वर में नियत नहीं है। अत: कंसर्ट के लिए किसी भी बाँसुरी का प्रयोग किया जा सकता है। जब तक संगत वाद्य हो भलिभाँति स्वरबद्ध न हो जाए। यह मुख्यत: कलाकार की व्यक्तिगत पसंद पर निर्भर रहता है।

वेणु- भारतीय बाँसुरी के दो मुख्य प्रकारों का वर्तमान में प्रयोग हो रहा है। प्रथम बाँसुरी वह है जिसमें अंगुलियों हेतु छह छिद्र एवं एक दरारनुमा छिद्र होता है एवं जिसका प्रयोग मुख्यत: उत्तर भारत में हिन्दुस्तानी संगीत में किया जाता है। दूसरी वेणु या पुलनगुझाल है जिसमें आठ अंगुली छिद्र होते हैं एवं जिसका प्रयोग मुख्य रूप से दक्षिण भारत में कर्नाटक संगीत में किया जाता है। वर्तमान में कर्नाटक में संगीत बाँसुरी वादकों द्वारा सामान्यत: आर-पार अंगुली तकनीक से चलने वाले आठ बाँसुरी छिद्रों वाली बाँसुरी का प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक का प्रारंभ 20 वीं शताब्दी में टी. महालिंगम ने किया था। फिर इसका विकास बी. एन. सुरेश एवं एन. रमानी ने किया। इसके पहले दक्षिण भारतीय बाँसुरी में केवल सात अंगुली छिद्र होते थे जिसके अंगुली मानदंडों का विकास 20 वीं शताब्दी के आरंभ में पल्लादम स्कूल के शराबा शास्त्री द्वारा किया गया था। बाँसुरी की ध्वनि की गुणवत्ता कुछ हद तक उसे बनाने में प्रयुक्त हुए विशेष बाँस पर निर्भर करती है एवं यह संभवत: स्वीकृत है कि, सर्वश्रेष्ठ बाँस दक्षिण भारत के नागरकोइल में पैदा होता है। चीन भारत का सांस्कृतिक सहोदर रहा है। भले ही आज हमारे राजनैतिक संबंध ठीक न भी हों किन्तु अतीत के सौहाद्र सांस्कृति आदान प्रदान को भी कैसे भुलाया जा सकता है? चीन का वाद्य संगीत एवं वाद्य भी अत्यंत मधुरता लिए हैं। चीन की बाँसुरी को वहाँ ''डी'' कहा जाता है। चीन में 'डी' नामक बाँसुरी की कई किस्में पाई जाती हैं। ये सब भिन्न-भिन्न आकार, प्रकार, ढाँचों एवं अनुवाद झिल्ली सहित होती है। इनमें 6 से 11 तक छिद्र होते हैं। इनका अलाप विभिन्न चाबियों में वादन के अनुसार नियंत्रित होता है। ये बाँसुरियाँ बहुधा बाँस की बनी रहती है। चीनी बाँसुरी की एक विशेषता यह भी है कि, उसके एक छिद्र पर झिल्ली चढ़ी हुई होती है। जो नली के अंदर वायु को कंपित करती है। इस ध्वनि से मुखर ध्वनि प्राप्त होती है। आधुनिक चीनी आर्केस्ट्रा में साधारणत: पाए जाने वाली बाँसुरियों में बंगड़ी क्यू डी, डाडी आदि शामिल हैं। अनुप्रस्थ या आड़े बजाये जाने वाले बाँस को ''जिआओ'' कहा जाता है। यह चीन के सुषिर वाद्यों का एक विशिष्ट एवं अभिन्न अंग है।

जापान भी बाँसुरियों की माधुरी से सदा रसरंगा रहा है। वहाँ की बाँसुरी को ''फू' कहा जाता है। जिनमें बड़ी संख्या में जापान की संगीतमय बाँसुरियाँ शामिल हैं। सिरिंग नामक बाँसुरी तुलनात्मक रूप से छोटी बाँसुरी है। इसका एक नाम ब्ल्र भी है। यह अंतिम छोर से बजाई जाने वाली बाँसुरी है जिसमें नाक द्वारा उत्पन्न स्वर की गुणवत्ता होती है। इसमें पिकासो का स्वर उभर कर आता है। यह सुषिर वाद्य पूरे आर्मेनिया के काकासस क्षेत्र में बजाया जाता है। इसका निर्माण काष्ट या बेंत से किया जाता है। इस बाँसुरी में सात अंगुली छिद्र होते हैं। एक अंगूठा छिद्र भी होता है। यह छिद्र दवि स्वर उत्पन्न करता है। सिरिंग का प्रयोग गडरियों द्वारा अपने कार्य से सम्बंन्धित ध्वनियों एवं संकेतों को उत्पन्न करने तथा संगीतमय प्रेमगीतों जिन्हें ''छबन बयाती'' कहा जाता है के साथ बजाया जाता है। इस बाँसुरी का उपयोग क्रम-क्रम से प्रस्तुत गीत गाथा खण्डों के

लिए किया जाता है। इस सुषिर वाद्य को राष्ट्रीय आर्मेनियाई यंत्रों में माना जाता है। केवल चीन, जापान ही नहीं अपितु रूस, अमरिका, जर्मनी, इंग्लैड, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, सिंहल (श्रीलंका) आदि सभी देशों में बाँसुरी का महत्त्व एवं वर्चस्व सुषिर वाद्यों में सर्वोपरि माना जाता है।

असम की लोक संस्कृति में सुषिर वाद्यों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ बाँसुरी को चिफुंग कहा जाता है। देवधानी (देवदासी) कही जाने वाली लड़की जब देवता के समक्ष नृत्य करती है तब उसकी संगत खाम (ढोलक) और चिफुंग ही करते हैं। लोक संगीत में नर्तकों का साथ ढोल के अलावा पेपा (सुषिर वाद्य सिंगी) और टकार का महत्त्व अधिक रहता हैं टाकर बाँस को चीरकर बनाया गया एक प्रकार का घन वाद्य है।

कृष्ण की वंशीवादिनी मुद्रा भी असम की भावना में कुछ भिन्न प्रकार की भले ही हो किन्तु बाँसुरी की महत्ता को तो स्थापित करती है। कृष्ण को बाँसुरी देकर सिर्फ अंगूठे और कनिष्ठिका में खड़ा किया जाता है। कई बार यह मुद्रा बिना बाँसुरी के भी दर्शाई जाती है।

मृदंग- असम के तालवाद्यों में ढोल, नगाड़ा, खोल, मृदंग, जयढोल आदि प्रमुख माने जाते हैं। ये सभी अनवद्ध वर्ग के वाद्य हैं। सुषिर वाद्यों में चिफुंग, वाही, काली, पेपा और गगन प्रमुख माने गए हैं। काली सुषिर वाद्य को हम शहनाई की सखी मान सकते हैं। विवाह समारोहों में इसका वादन मंगलकारी माना जाता है। इसी प्रकार 'तत्' वाद्यों में तोकारी, बीन, सेरजा या सरेंजा। असम के लोक गीतों के प्रिय वाद्य हैं।

बीन- सरेंद, सरोत या सरोज से मिलता जुलता वाद्य है। बीन शब्द पर तनिक विचार करना आवश्यक है। उत्तर भारत में इसका प्रयोग वीणा के अर्थ में होता है। कहीं-कहीं कालबेलियों की पुंगी को भी ''बीन'' कहा जाता है। ''सपेरा बीन बजाओ।'' ऐसे लोक गीत प्रचलित हैं। यह कभी त् वाद्यों में तथा कभी सुषिर वाद्यों की श्रेणी में माना जाता है। ऐसी स्थिति में इसके आकार-प्रकार बदल जाते हैं। घन वर्ग में यहाँ असम में भोरताल, खुटीताल (झपताल) और मजीरा आदि प्रचलित है। टाका जो चिरे हुए बाँस से बनाया-बजाया जाता है व अवनद्ध वाद्य और घन वाद्य दोनों श्रेणियों में गिना जाता है।

जनजातिय समुदायों में विविध प्रकार के सुषिर वाद्यों का प्रचलन आज भी पूरे सम्मान के साथ किया जाता है। ये सुषिर वाद्ययंत्र लोक जीवन के लिए दिव्यता के प्रतीक माने जाते हैं। इनमें अलगोजा, सरनाई, घुरालिया, मशक और पावला।

अलगोजा- अलगोजा एक प्रकार की बाँसुरी ही है। इसमें दो बाँसुरियाँ एक साथ बजाई जाती है। इन पर चार-चार छेद होते हैं। इनमें से एक छेद मुंह पर (एक छोर पर) तथा शेष छेद नीचे होते हैं। इन्हें तीन-तीन अंगुलियों से बजाया जाता है। अलगोजा 10-12 अंगुल लम्बा बाँस नली का होता है। बाँस के पोरों को सिरों पर तिरछा तराश कर वहाँ एक पतली जीभी लगाई जाती है। अलगोजा ऊँचे स्वर में बज सकता है। इसकी दोनों बाँसुरियों से एक जैसा स्वर निकलता है। बाड़मेर जिले में इसे राणका फ कीर खूब बजाते हैं। इसे बजाने में दुधिया गाँव के वादक धोधे खाँ ने अलगोजा बजाने में खूब यश कमाया है। पूरे विश्व में घोघेखां उसी प्रकार पहचाने जाते हैं जिस प्रकार शहनाई वादक बिस्मिमिल्ला खाँ शहनाई वादन में जाने-माने जाते हैं। अलगोजा बनाने में चौहटन गाँव के कारीगर भील लोग अत्यंत सिद्ध हैं। इसका निर्माण वे बाँस के बजाए केर के काष्ट से करते हैं। उनके द्वारा बनाए गए अलगोजे की मत्साकार दोनों नलियाँ मुंह में रखी जाती है और खूब लम्बी स्वांस खींच करइसमें से छोटा स्वर निकाला जाता है। इसका वादन स्वांस साधना का अद्‌भुत प्रदर्शन है। इसका वादन विवाह आदि उत्सवों पर विशेष रूप से अपना कमाल दिखाता है। जैसलमेर के एक छोटे से गाँव के निवासी ईसाक खाँ ने भी अपने अलगोजे के वादन में विश्वख्याती अर्जित की है। एक बाँसुरी नर और मादा मानी जाती है। इस प्रकार अलगोजे का वादन नर और नारी का संयुक्त मिलन मिलाप है। प्रकृति-पुरुष का सात्विक मिलन सृजन है।

मशक- मशक भी एक सुषिर वाद्य है। इसके वादक राजस्थान, पंजाब, सिंध, मालवा और गुजरात में बहुतायत से पाए जाते हैं। मिरासियों का यह अत्यंत प्रिय वाद्य है। इसे पुंगी भी कहा जाता है। यह सुषिर वाद्ययंत्र बकरी की पूरी खाल से बनाया जाता है। यह चमड़े की एक बड़ी थैली जैसी लगती है। एक बार हवा भरने के बाद थोड़ी हवा भरते रहने से यह अपना सुर निकालती रहती है। इसका निर्माण भी बहुत अद्‌भुत है। बकरी की पूरी खाल को बंदकर केवल आगे के दोनों पाँ में एक निपिल लगाई जाती है। जिसमें से मुंह द्वारा फूँक लगाकर हवा भरी जाती है और दूसरे पाँव में एक पुंगी लगा दी जाती है। पुंगी की इस नलकी में पाँच छिद्र होते हैं किन्तु बजाते वक्त केवल तीन छिद्र ही उपयोग में लाए जाते हैं। इसके वादन के समय मशक को तकिए की भाँति उल्टी बगल में दबाकर सम्भालना होता है। अलवर जिले के लक्ष्मणगढ़ जिले के मंडूल्या गाँव के भगवान नाथ ने इसके निर्माण में बहुत मुहारत हासिल की है। मशक-मशक निर्माण के लिए बकरी की खाल को बिना चीरे बहुत सावधानी पूर्वक खाली करना पड़ता है। इसको पूरी तरह खाली करने के पश्चात उसे उल्टा दिया जाता है। अगले पैरों में छिद्र रख कर शेष सब छिद्र अच्छी तरह बंद कर दिए जाते हैं। खाल के आगे वाले दायें पैर में तथा पीछे के भाग में बंधाई की जाती है। दायें पाँव नरसल की फांस लगाकर दो पुंगियाँ लगाकर लगाकर खाल को फिर सीधा कर लिया जाता है। इससे शेष तीनों पैर तथा पीछे के भाग की बंधाई भीतर चली जाती है। शेष बचे बायें पैर के छिद्र में काष्ठ का निप्पल लगाकर आगे वाले भाग के अतिरिक्त बाकी के भाग को डोरे से बाँध कर उस पर मोम लगा दिया जाता है। मशक का फूँक भरने वाला डाट तथा अगुंलियों से विधिवत पैदा करने वाला भाग ''नलवा'' कहलाता है। अब मशक पूरी तरह वादन के लिए तैयार है।

लोक वाद्यों में यह सुषिर वाद्य जितना प्रिय है उतना ही यह कस्बाई एवं रजवाड़ी क्षेत्र में भी प्रसिद्ध रहा है।

घुरालिया– यह सुषिर वाद्य जनजातियों में अत्यंत प्रसिद्ध किन्तु सहज वाद्य है। इसे घुरालिया के अलावा घुरलिया, घोडयु भी कहा जाता है। आदिवासी इसे '' बाँस नो बाजो'' भी कहते हैं। यह ''वार्ड़ा नो बाजो'' भी पुकारा जाता है। इसे बाँस की खिपच्ची से बनाया जाता है। इस खिपच्ची के बीच बाँस की एक जीभ जैसी लघु आकार की खरपड़ी लगाई जाती है। इसे जीभी कहा जाता है। इसके दूसरे सिरे पर लगा कर उस जीभी में फूँक लगाई जाती है। फूँक से वह धागा झंकृत होता है। उस फूँ क से एक विचित्र ध्वनि निकलती है। इस प्रकार यह वाद्य सुषिर और तत्वाद्य का सम्मिश्रित वाद्य है।

पुंगी– पुंगी कालबेलियों का वाद्य है। इसी को बजा कर कालबेलिए (सपेरे) साँपक को रिझा कर अपने वश में करते हैं। पुंगी का निर्माण तुंबी से किया जाता है। यह सुषिर वाद्य है। बाँस की दो निलियों के नीचे के भागों में दो पतली पत्तियाँ लगाकर चिपका दी जाती है। एक नली में कुछ कम स्वर तथा दूसरी में अधिक स्वर निकलता है। इसी के विकसित रूप को ''मुरला'' कहा जाता है। जिसका तूंबा लम्बे कद्दू से बनाया जाता है। तीखी ध्वनि वाले इस सुषिर लोकवाद्य से तीखी किन्तु सुहानी ध्वनि निकलती है।

पावरी– यह भी एक सुषिर वाद्य है। इसमें चार गाँठों वाले छिद्र कर एक मुख नालिका लगाई जाती है। इस नलिका के ऊपर वाली गाँठ से किंचित नीचे छेद कर दोनों छिद्रों के ऊपर बाँस की पतली खपच्ची मोम की सहायता से लगाई जाती है। इन छिद्रों में ऊपर की ओर पाँच छेद होते हैं। जिन्हें मुँह की सहायता से वांच्छित स्वर दिया जाता है। ऊपर के स्वर नारी और नीचे के स्वर नर कहलाते हैं।

तारपी– कथौड़िया आदिवासियों में तारपी वाद्य अत्यंत ख्यात है। यह बहुधा प्रत्येक परिवार में पाया जाता है। इसका वादन भी सब कर लेते हैं। सूखी लम्बी लौकी में से गुदा निकाल कर उसे पोला कर लिया जाता है। उसके बीच में छिद्र बना कर उसमें फूंकणी लगाई जाती है। डंठल की जगह दो बाँस की, पाँच–पाँच छिद्रों वाली नलियाँ लगाकर उन्हें मोम से चिपका दिया जाता है। इसके आगे गाय या भैंस का कटा सींग चिपकाया जाता है। इससे आवाज में विस्तारक शक्ति आ जाती है। इसे रंग–बिरंगे फुं दों से सजाकर आकर्षक बनाया जाता है। यह सुषिर वाद्य लोक वाद्यों का सहज किन्तु सर्वमान्य सुषिर वाद्य है।

शंख– शंख सुषिर वाद्यों में सर्वज्ञात वाद्य है। यह प्राकृतिक निर्मित वाद्य तो मान्य है ही इसे सुषिर वाद्यों में आदि वाद्य भी माना जाता है। वस्तुत: यह एक समुद्री कीट का कवच है। शखं जहाँ भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, वहीं यह भगवान विष्णु का आभूषण (आयुद्ध) भी है। भगवान विष्णु को यह आयुद्ध समुद्र मंथन के फलस्वरूप प्राप्त हुआ। इस प्रकार यह लक्ष्मी का सहोदर भ्राता तथा विष्णु का साला भी हुआ। इसका शुभ नाम पांचजन्य है। यही शंख कृष्ण के पास ही रहा। उसे भी पांचजन्य ही कहा गया।

इसे युद्ध के आह्वान का नाद वाद्य माना जाता है। इसलिए इसे प्रत्येक योद्धा को अपने पास रखना अनिवार्य था। प्रत्येक योद्धा के शंखनाद में भिन्नता रहती है। इसमें शंख का प्रकार एवं वादक की नाद शैली प्रकट होती थी। नाद से ही जान लिया जाता था कि, किस योद्धा ने यंद्ध का आह्वान किया है। भगवान कृष्ण का पांचजन्य, अर्जुन का देवदत्त, युधिष्ठिर का अनंत विजय, भीम का पांडू, नकुल का सुघोष और सहदेव का मणिपुष्प शंख प्रसिद्ध है। अब यह सुषिर वाद्य मंदिर की आरती के घोष हेतु उपयोग में लाया जाता है। बाएँ घुमाव का शंख शुभमंगल कारी माना जाता है। घर में प्रात:काल शंख घोष करने से दुष्ट शक्तियाँ घर से बाहर हो जाती हैं। अथवा प्रवेश नहीं कर सकतीं।

वाद्यों के विषय में यह मिथक अत्यंत रोचक है एवं प्रेरक है– ''एक बार ब्रह्मा जी ने विचार किया कि विष्णु के पास भी वाद्य है। शिव के पास भी वाद्य है किन्तु मेरे पास नहीं हैं। तब उन्होंने सरस्वती को तत्वाद्य वीणा प्रदान की। नारद को वीणा और करताल प्रदान कर संतुष्टि प्राप्त कर ली। इस प्रकार उन्होंने विष्णु के सुषिर वाद्य शंख के अवनद्ध वाद्य डमरू तथा सरस्वती और नारद के तत्वाद्य वीणा के साथ–साथ करताल जैसे घन वाद्य का निर्माण कर वाद्यों के चारों वर्णों की पूर्ति कर दी। ऐसा करने के पश्चात भी उन्हें पूर्ण संतुष्टि नहीं हो सकी। उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर अपने चारों मुखों से वाद्यों के चारों वर्गों का ज्ञान उन्हें दिया। विश्वकर्मा ने भगवान ब्रह्मा से पूछा यह ज्ञान मैं सर्वप्रथम किसे दूँ ? ब्रह्मा ने कहा यह ज्ञान तुम आदिवासी जनजातियों के चार समुदायों को दे दो। प्रत्येक जाति को एक प्रकार के वाद्यों का ज्ञान देना। विश्वकर्मा ने यही किया। चार जनजातीय समुदायों ने विश्वकर्मा जी के ज्ञान को प्रयोग द्वारा प्रकट किया। पश्चात उन चारों समुदायों में जब भेट–मिलाप हुआ तब उन्होंने परस्पर आदान–प्रदान द्वारा चारों वाद्यों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।''

इस प्रकार समस्त प्रकार के वाद्यों का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा को दिया। उसके बाद उसका आदान–प्रदान हुआ और समस्त जनजातियों में वाद्यों के सभी वर्गों का विस्तार हो गया। जनजातीय समुदायों से वाद्यों का ज्ञान समस्त लोक में विस्तारित हुआ। समयकाल के पश्चात शास्त्रीय विद्वानों ने उन आदि वाद्यों को सुधार कर उन्हें आधुनिक रूप प्रदान किया। आज भी आदिवासी समुदायों के अपने पारंपरिक वाद्ययंत्र विद्यमान है। इस प्रकार लोक जीवन से लोक जीवन के मध्य अनेक प्रकार के तथा भाँति भाँति के वाद्यों का विकास समय के प्रयोगों और अनुभवों द्वारा होता रहा। आज भी निरंतर है।

लेखक: लोक साहित्य के अध्येता हैं।
संपर्क : निदेशक– मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान
मनासा जि. नीमच (म.प्र) मोबा. 9424041310

■

बुंदेलखंड के लोक वाद्य

प्रो. डॉ. सरोज गुप्ता

बुंदेलखंड का लोक जीवन सहज सरल सादगी का पर्याय है। यहाँ की माटी में सांस्कृतिक चेतना की अनुगूँज मनोरंजन के साथ संगीत की स्वर लहरियों में सतत् गूँजती रही है जिसकी संगति के लिए वाद्य यंत्र बड़े ही साधारण, आडम्बर रहित और घरेलू उपयोग की वस्तुओं से तैयार किये गये अपने ढंग के निराले देखे जा सकते हैं। बुंदेलखंड ऋषि मुनियों की साधना स्थली होने के कारण यहाँ के लोकजीवन में वैदिक ,पौराणिक प्रसंगों का औचित्य पूर्ण उल्लेख मिलता है। ध्वनि तरंगों के माध्यम से ईश्वर का साक्षात्कार भी सम्भव रहा। मंत्र विज्ञान ध्वनि तरंगों पर आधारित है। ध्वनियां मधुर और कर्कश होती हैं जो एक ओर मन को लुभाती हैं ,दूसरी ओर मन को उचाट देने का कार्य करती हैं। प्रफुल्लित मन सृजनात्मकता से ओतप्रोत होता है वहीं निर्बल मन हताशा निराशा का भाव जागृत करता है। शुभ-अशुभ कार्यों में, युद्ध के मैदान में,मनोरंजन के समय लोक वाद्यों के द्वारा मानव मन का आनन्द और उत्साहवर्धन हमेशा होता रहा है।

दुर्गा सप्तशती में जब माँ भवानी महिसासुर के साथ संग्राम करती हैं उस समय वातावरण ओजपूर्ण करने के लिए नगाड़ा, शंख, मृदंग बजाये गये। देखिए उदाहरण--'**अवादयन्त पटहान गणाः शंखास्तथापरे, मृदंगाश्च तथंवान्ये तस्मिन युद्ध महोत्सवे**'। (द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 54-55) इसी तरह बाल्मीकि रामायण में अयोध्यापुरी में सब ओर ध्वजा पताकाओं से नगर की रमणीयता बढ़ गयी और नाना प्रकार के वाद्ययंत्रों से अयोध्यानगरी गूँज उठी।'**पताका ध्वाजिनी रम्यां, तूर्योद्घुष्ट निनादिताम्।**' (बालकाण्ड-श्लोक 6) इसप्रकार देव पूजन से लेकर अन्तिम सत्य के चरम उत्कर्ष तक वाद्य यंत्रों का उपयोग दैनिक जीवन में होता है। ढोलक की थाप पर नारी कंठ की आनन्द वर्षा, नगाड़ों की गूँज, मंजीरों, इकतारा की झनझनाहट, ढ़ाक के बोल देवताओं के आवाहन में सहायक होते है। झींका, मृदंग, बाँसुरी की धुन पर कृष्ण की लीलाएं हमें आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करती हैं।

बुंदेलखंड में चार प्रकार के वाद्ययंत्र प्रचलित हैं-

1- तत् वाद्य -तत् अर्थात तंत्रीगत।

2-सुषिर वाद्य -शुषिर यानी रंध्र युक्त।

3-अवनद्ध वाद्य ,-आनद्ध अर्थात चर्माबद्ध।

4-घन वाद्य -घन यानी धातु निर्मित।

1- तत् वाद्य -तत् अर्थात तंत्रीगत-इन वाद्ययंत्रों में एक दण्ड होता है। किसी गोल बड़े पात्र से जुड़ा होता है इस पर तार खिंचे रहते हैं। एक तार से लेकर चार तार तक होते हैं। तम्बूरा, एकतारा, रेकड़ी आदि वाद्ययंत्र तत् वाद्य हैं। तम्बूरा वाद्ययंत्र तुम्बुर ऋषि द्वारा तूमा की सहायता से निर्मित बजाया गया जिसे तम्बूरा कहा गया। चौपालों में गाँव के लोग कबीर दास आदि भक्तों के भजन गायिकी मैं इसका प्रयोग करते हैं।

'झन झन झनझना रहे हैं तम्बूरा के तार।
मुरलीवाले के चरनन में राधा जू कौ प्यार।'

एकतारा में एक तार होता है। आमतौर पर भिक्षा माँगने वाले भजन गाते हुए स्वर लय का सामंजस्य बनाते है।'साधू का बोल रहा इकतारा, यह जग है माया का फेरा।'

रेकड़ी - की बनावट इकतारे जैसी होती है परन्तु इसका आकार बहुत छोटा है। इसे हाथ की उंगली से न बजाकर बाँस की धनुषाकार की लकड़ी में तार बाँधकर रगड़कर स्वरों की उत्पत्ति करते हैं। इसे किंगरी भी कहते हैं। कहा गया है- 'किंगरी की तान पै,सुनो कथा रसबन्त। सावित्री की कथा से, सीखो धर्म अनन्त।'

2-सुषिर वाद्य - शुषिर यानी रंध्र युक्त- जिन्हें मुँह से फूँककर बजाया जाता है। जैसे बाँसुरी, अलगोजा, शंख,तुरही,कंडाल,रमतूला आदि। बाँसुरी खोखले बाँस की लकड़ी जिसके एक सिरे पर फूँकने का स्थान बनाते है दूसरी तरफ पाँच-छै छिद्र बनाकर उंगलियों से कलात्मक तरीके से स्वर निकालते हैं। योगेश्वर कृष्ण बाँसुरी बजाने की कला में दक्ष थे। अलगोजा में बाँसुरी के जोडे को एक साथ फूँक मारकर स्वरों को निकालते हैं। श्री कृष्ण के सखाओं ने खूब अलगोजा बजाया। शंख समुद्रीय पिण्डीय जन्तु का सुरक्षा कवच है जब वह इस कवच से बाहर निकल जाता तब इसे उपयोग में लाते हैं। इसे फूँक मारकर बजाया जाता है। इससे फेफड़े मजबूत होते हैं, पर्यावरण शुद्धि के साथ देवताओं के स्वागत में पूजा के समय बजाया जाता है। तुरही पीतल या ताँबे की छड़ जिसके एक ओर कुप्पीनुमा आकार होता है। एक ओर सिरे से फूँक मारकर स्वर निकाले जाते हैं। माँ की अचरी में इसके उपयोग का वर्णन है- 'सवालाख तुरही जब बाजै,मदन भेड़ किलकान लगी'। कंडाल तुरही का बड़ा रुप होता है-

-'मैया जगदम्बा की जात है सवारी,आगे बजे कंडाले पीछे है भीर भारी।' रमतूला पीतल या ताँबे का अँग्रेज़ी के एस आकार का होता है।

इसका सिरा जहाँ से फूँक मारी जाती है पतला होता है। दूसरा सिरा बड़ा तथा फैला हुआ होता है। बुंदेलखंड में शादी व्याह में रमतूला बजाने काखूब प्रचलन है। बेटी माँ से कह रही है- **'कबै बजै रमतूला मताई मोरी, कबै बजै रमतूला।'**

3-अवनद्ध वाद्य – खाल से मड़े हुए विभिन्न आकार के विविधता लिए हुए विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। डमरु शंकर जी को अति प्रिय है। पीतल या लकड़ी की एक गोल गेंद नुमा आकार को काटकर बंद भाग की ओर से जोड़ दिया जाता है दोनों तरफ खाल से मढ़कर बीच में रस्सी या डोरी को लटका दिया जाता है। इसे हिलाकर बजाने से डमडम की आवाज आती है। ढाँक डमरु के आकार से बहुत बड़ा होता है। इसके दोनों तरफ खाल से मढ़कर कसकर घुटनों पर रखकर लकड़ी से बजाते हैं। बुंदेलखंड में देवताओं के आवाहन के समय कारसदेव, दूल्हादेव, हीरामन, हरदौल आदि की स्तुति करते समय गोटे गायन शैली के समय बजाते हैं। मृदंग, ढोलक, ढ़ोल, नगाड़ा, नगड़िया, हुड़क, ढ़फ आदि वाद्ययंत्र हैं जो विभिन्न आयोजनों पर मनोरंजन हेतु बजाए जाते हैं। खंजरी लकड़ी की चौड़ी पट्टी नुमा रिंग होती है। इसके एकतरफ खाल से मढ़कर पैसे या घुँघरु बाँध देते है। बायें हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से थाप देकर विभिन्न स्वर निकालते हैं। **'खंजरी के धिक धिक बोलन पै नाच रहे त्रिपुरारी'।** चंग, ढपला, ढ़पली इसी के रुप हैं। 'ढ़पली ढ़प ढ़प बजती जाये, मनुआ खड़ौ खड़ौ मुस्काय।' इसके बाद नौबद ताँबे की नाद को खाल से मढ़कर बनाई जाती है इसपर डण्डे से प्रहार किया जाता है। डा हरिमोहन पुरवार जी कहते हैं –

'जौ देखो कुदरत का खेल ,मरी चाप से निकले बोल।
नौबद पर पड़ते हैं दण्ड, आरती भजन पै चढ़ते रंग।'

डिग्गी, टिमकी ,तांसा इसीप्रकार के वाद्ययंत्र हैं।

4-घन वाद्य- घन यानी धातु निर्मित वाद्य जो आपसी घर्षण से विभिन्न स्वर निकालते हैं जैसे-मटका, झांझ, मजीरा, झींका, लुटिया, कसारी, चटकोला लकड़ी आदि का प्रयोग आपस में रगड़कर घनघनाहट, खनखनाहट, टनटनाहट, ढ़कढ़काहट, झनझनाहट आदि

स्वर उत्पन्न किये जाते हैं। कुँआ, तालाब, बावड़ी से पानी भरकर लाने वाला घड़ा जिसका मुँह छोटा और पेट बड़ा होता है। पैसे, धातु या हाथ की थपक से इसे बजाया जाता है। **'लंगुरे मटका पै थाप लगाओ, सब मैय्या के गुण गाओ।'** झांझ पीतल या काँसे से बनी होती हैं। दोनों हाथों में एक एक झांझ पकड़कर परस्पर एक दूसरे पर प्रहार कर बजायी जाती हैं। मंजीरा दोनों हाथों से एक दूसरे की टकराहट से उत्पन्न ध्वनि के लिए होता है। ढ़ोलक की थाप पर मंजीरे की धुन आकर्षक होती है। झींका वाद्य लम्बी लकड़ी की दोपट्टियों के मध्य छै से लेकर दस मोटे तारों से बनता है। इनमें पीतल के गोलगोल छोटे पहिए लगे होते हैं जब दोनों हाथों से हिलाते हैंतो इनमें झनझनाहट उत्पन्न होती है। कसारी – काँसे की थाली होती है इसे कसावरी, कसेरु भी कहते हैं। इसे चम्मच के प्रहार से बजाते है। पुत्र जन्म पर बुंदेलखंडवासी काँसे की थाली बजाते हैं। इसी तरह लुटिया को दो धात्विक छड़ों के प्रहार से बजाया जाता है। इससे निकलने वाली टनटन की आवाज माँ की अचरी गायन और दिवारी गीतों नृत्यों में होता है। चटकोला चमीटा के आकार का वाद्य यंत्र जिसके एक ओर एक गोल छल्ला लगा रहता है अग्र भाग खुले होने से जिनके परस्पर आघात से किट किट,चट चट की ध्वनि निकलती है। लकड़ी – दो लकड़ियों के आपस में प्रतिघात से उत्पन्न खट खट खट खटाहट को लोक वाद्य में रखा है ।

बुंदेलखंडवासी मौजमस्ती पसन्द अभावों में भी उल्लास से जीने में विश्वास रखते हैं। पहले जब चक्की पीसी जाती थी तब महिलाएं घर्र घर्र की आवाज से गीत गाते हुए लय ताल छेड़ने लगती थी । सुनने वाले भी झूम उठते थे। इसीतरह खेतों में पानी लगाने के लिए रहट चल रहा है उसके पानी का कल कल संगीत मन को लुभाता रहा है। गोबर से कंडे पाथती महिलाएं अलग ध्वनि के साथ गीत को ताल और लय से सराबोर करती हैं। कपड़े धोते समय धोबियों की छप छप कानों में छियो राम छियो का स्वर उच्चारती है। भजन कीर्तन गाते गाते महिलाएं तालियों की ताल पर वह समाँ बाँधती हैं कि नाचने वालों को थिरकने पर मजबूर कर देती हैं। बुंदेलखंडवासी इन वाद्यों से लोक जीवन को मधुमय, हर्ष उल्लास और आनन्द के वातावरण से मनमयूर को नर्तन से आत्म विभोर कर देते हैं।

तंबूरा : इसे तमूरा भी कहा जाता है, इसके नीचे का भाग प्राय: तुंबा नामक फल से बनाया जाता है, इसमें तारों की संख्या चार होती है जिसके कारण यह इकतारा से भिन्न है।

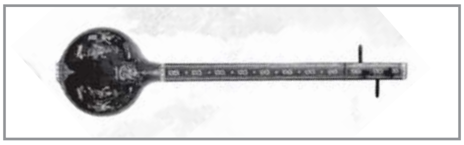

इकतारा : इस तत् वाद्य यंत्र में मात्र एक तार होता है इसीलिए इसे इकतारा कहा जाता है, जिसमें खूंटी के माध्यम से तार के स्वरों को प्रबन्धित किया जाता है।

मटका : यह जल संग्रहण के लिए उपयोग किया जाने वाला मिट्टी का पात्र है, एक हाथ में पैसा लेकर इस पर प्रहार किया जाता है और दूसरे हाथ से थाप को संभाला जाता है।

झांझ : यह वाद्य पीतल या कासे से बना हुआ होता है। इसका आकार गोल होता है तथा इसका व्यास 6 इन्च से 12 इन्च के लगभग रहता है इसका मध्य भाग उभरा हुआ रहता है जिसमें एक डोरा डालकर अन्दर से गांठ लगाई जाती है तथा डोरे के ऊपरी सिरे पर हाथ से पकड़ने की पकड़ बनी होती है। दोनों हाथो में एक-एक झांझ को पकड़कर परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने से झनझनाती झंकार उत्पन्न होती है।

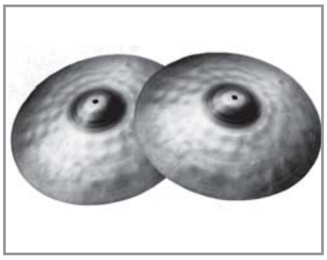

मंझीरा : यह वाद्य भी लगभग झांझ के ही प्रकार का होता है। इसमें अन्तर केवल इतना ही होता है कि यह झांझ के आकार से लगभग एक चौथाई होता है।

लुटिया : रोजमर्रा में प्रयोग किया जाने वाले गिलट, पीतल या कांसे का लोटा भी एक लोक वाद्य के रूप में यहां पर प्रयोग किया जाता है। इसे खाली रखकर इस पर दो धात्विक पैसों के प्रहार से बजाया जाता है। इससे निकलने वाली टन टन की ध्वनि बहुत कर्णप्रिय होती है।

बांसुरी : बांसुरी खोखले बांस से बनी हुई होती है जिसमे 6 छिद्र होते हैं जो स्वरों के लिए जिम्मेदार होते हैं जबकि ऊपरी सिरे पर सलामी आकर का छिद्र होता है जहां से फूंका जाता है।

झींका : यह वाद्य लम्बी लकड़ी की दो पट्टियों के मध्य छ: से लेकर दस मोटे तारों से बनता है। इन तारों में पीतल के गोल-गोल छोटे पहिये लगे होते हैं। इस वाद्य को दोनों हाथों से पकड़कर जब हिलाते है जब ये पहिये झनझनाहट उत्पन्न करते है।

शंख : यह घोंघे नामक समुद्री जीव का कवच होता है, इसका प्रयोग मूलत: सनातन देवी-देवताओं की पूजन में किया जाता है।

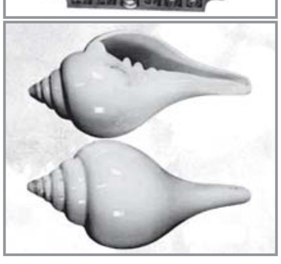

अलगोजा : यह बांसुरी की तरह बना हुआ वाद्य होता है परंतु यह जोड़े में होता है, इसमें दोनों ही बांसुरी में 3 - 3 छिद्र होते हैं। जोड़ी को एक साथ होंठों से लगाकर फूंक मारी जाती है।

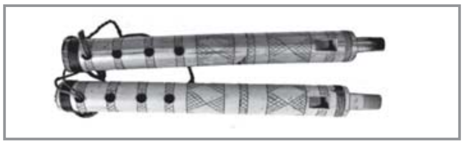

कन्डाल : इसका आकार तुरही से लगभग दोगुना होता है, पीतल या कांसे की लंबी छड़ जैसी होती है, जिसका एक सिरा बांसुरी की तरह और दूसरा सिरा कुंपी की तरह होता है। ज्यादातर शुभ अवसरों पर प्रयोग की जाती है।

तुरही : यह पीतल या कांसे की लंबी छड़ जैसी होती है, जिसका एक सिरा बांसुरी की तरह और दूसरा सिरा कुंपी की तरह होता है। ज्यादातर शुभ अवसरों पर इसका प्रयोग किया जाती है।

डमरू : डमरू एक आदि वाद्य है, इसका उपयोग शंकर जी द्वारा भी किया गया था। इसके दोनो सिरे चमड़े से मढ़े हुए होते हैं, और बीच में दो रस्सियां लगी हुई होती हैं, जिनके सिरों पर घुडी होती है, घुंडी का प्रहार जब चमड़े पर होता है तो डम डम शब्द उद्घोषित होता है।

ढांक : इस यंत्र को डोरू भी कहा जाता है इसका आकार लगभग डमरू के जैसा पर उससे कई गुना बड़ा होता है। इसके दोनों खाल से मढ़े हुए सिरों को हांथ तथा डंडी की सहायता से बजाया जाता है।

रमतूला : इसका आकार अंग्रेजी अक्षर के 'ड' के समान होता है, इसका प्रयोग मूलत: विवाह के अवसरों पर किया जाता है, इसका निचला सिरा सकरा और ऊपरी सिरा चौंडा होता है।

मृदंग : यह लकड़ी या मिट्टी का बेलनाकार खोखला वाद्य है, जिसके दोनों सिरों पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता है, एक तरफ के चमड़े पर स्याही लगी हुई होती है और दूसरी तरफ कच्चे गीले आटे की लोई चढ़ाई जाती है।

ढोल : ढ़ोलक का विशाल रूप ही ढ़ोल कहलाता है। इसके बजने से वीर रस के वातावरण का सृजन होता है।

ढोलक : इसकी बनावट मृदंग के समान ही होती है अन्तर केवल इतना होता है कि इसमें दोनों सिरों को कसाव प्रदान करने हेतु गुट्टे के स्थान पर छोटी लकड़ी की खपच्चियों द्वारा रस्सी में खिंचाव दिया जाता है। इसके एक सिरे पर स्याही लगी होती है।

नगाड़ा : इसे दुंदुभी भी कहा जाता है। यह लोहे अथवा पीतल की धातु का बना होता है जिसमें केवल एक मुख होता है जो कि खाल से मढ़ा होता है तथा रस्सियों के खिंचाव से खाल को खींचा जाता है। पौराणिक ग्रन्थों में दुंदुभी का उल्लेख मिलता है। यह वही दुंदुभी है।

ढफ/चंग : यह लकड़ी या मिट्टी का खोखला गोलाकार वाद्य होता है इसके एक मुहाने पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता है, और चमड़े पर रंग बिरंगे चित्र बने हुए होते हैं। हाथ की अंगुलियों के प्रहार से बजाया जाता है।

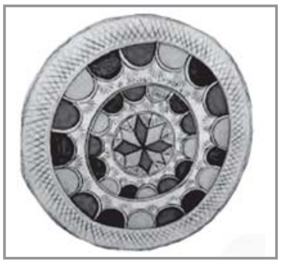

हुड़क : इसे लकड़ी या मिट्टी से ढ़ोलक के बेलनाकार रूप में बनाते है परन्तु इसे खाल से केवल एक ओर से ही मढ़ा जाता है तथा हाथ की अंगुलियों के प्रहार से बजाया जाता है। बुन्देलखण्ड की कहार जाति का यह प्रिय वाद्य है। इसे दहकी भी कहते है।

ढपला : यह वाद्य लकड़ी की आठ पट्टियों द्वारा निर्मित होता है। ये पट्टियां चार से आठ इन्च लम्बी, तीन से पांच इन्च चौडी लगभग आधा इन्च मोटी होती है। इन आठों पट्टियों को अष्टभुजी आकृति में जोड़ लिया जाता है। फिर एक ओर चमड़ा मढ़ कर दूसरी ओर रस्सी के जाल से चमड़ा पर खिंचाव बनाया जाता है।

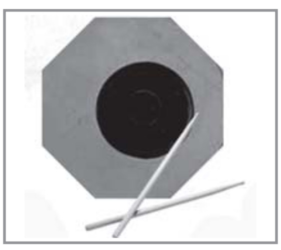

खंजरी : यह वाद्य अवनद्ध तथा घन वाद्य का सम्मिलित स्वरूप है। इसमें एक गोल धातु अथवा लकड़ी की चौड़ी पट्टीयुक्त रिंग होती है जो कि एक ओर खाल द्वारा मढ़ी होती है। इसकी पट्टीयुक्त रिंग में बड़े-बड़े छिद्र होते हैं जिनमें तार को आधार बनाकर उसमें ताबे के गोल-गोल पतले पैसे नुमा टुकड़े पड़े रहते है। जब अंगुलियों की थाप पड़ती है तब धात्विक छल्ले भी स्पन्दित होकर झन्कार उत्पन्न करते हैं।

नौबाद : लोहे, पीतल अथवा तांबे की विशाल नाद को मोटे चमड़े से मढ़कर नौबद बनाई जाती है। मोटे डण्डे से प्रहार कर इसे बजाया जाता है।

डिग्गी : इसे नौटंकी में नगाडे के साथ रखकर बांस की पतली खपच्ची के द्वारा बजाया जाता है। यह एक गहराई लिए चौड़े मुंह का पात्र होता है, जिसके मुहाने पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता है।

ढपली : इसका आकार ढपले से अपेक्षाकृत छोटा होता है। यह धातु की अथवा लकडी की एक गोल पट्टी होती है। जो एक ओर से चमड़े द्वारा मढ़ी होती है। इसे हाथ के प्रहार से बजाया जाता है तथा इससे निकलने वाला स्वर ढपले जैसा ही होता।

तांसा : यह टिमकी के समान ही होती है। किसी धातु के तसलानुमा बने आकार को चमड़े से मढ़कर इसे बनाया जाता है। इसका स्वर तीव्र होता है। इसे बांस की पतली खपच्ची के प्रहार से बजाया जाता है।

टिमकी : इसका स्वरूप नगड़िया जैसा होता है। परन्तु इसका आकार नगडिया से अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसका स्वर नगड़िया के स्वर से ऊंचा होता है।

लेखिका: वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : अध्यक्ष बुंदेलखंड विश्वकोश योजना सागर मध्यप्रदेश
डॉ. हरीमोहन पुरवार उरई जालौन उत्तर प्रदेश

■

आलेख

आदि वाद्य

वसन्त निरगुणे

लोक वाद्य प्राकृतिक ध्वनियों पर आधारित है। इन ध्वनियों को सबसे पहिले वाद्य को प्रारंभिक मानव ने सुना और इनको अपनी-अपनी भावनाओं और आत्मिक अनुभूतियों के साथ जोड़ने की कोशिश की। यह प्रयास मानव की प्रारंभिक समझ कह सकते हैं। बाद में इसी विचार के साथ मनुष्य के मन में वाद्य बनाने की सोच बनी। जिसे मानव के विकास का आदिकाल कहा जाता है। निश्चित ही वाद्य उससे ध्वनि उत्पन्न संगीत उत्पन्न करने का श्रेय आदिम जनजातियों को जाता है। जब मानव गुफाओं में रहता था और प्रागैतिहासिक काल के चित्र बनाता था। उन चित्रों में समूह नृत्य के साथ वाद्यों के रेखाचित्र शामिल हैं। जो इस बात के प्रमाण हैं कि प्रागैतिहासिक काल के मानव ने वाद्य बना कर संगीत रचना शुरू कर दिया था, और उसे लय ताल के साथ बजाने का इतिहास भी रच दिया था। ऐसा माना जाता है कि, नृत्य और वादन कला अपने प्रारंभिक काल में ही चरम पर पहुँच गई थी। चित्र लिपि के पहिले नृत्य संगीत कला का विकास मानव ने कर लिया था। इसका मतलब नृत्य वाद्य और वादन, मनुष्य की कला-कौशल का प्रथम उच्छवास था। इसके साक्षी वे गुहा और शैल चित्र हैं, जिनमें नृत्य के साथ वाद्य बजाते नर्तक का चित्रण भी किया किया गया मिलता है। यदि आदि मानव पहले मुख्य वाद्य वादन के साथ नृत्य नहीं करता तो उन चित्रों में नृत्यों के रेखांकन कहाँ से आते ?

वे प्राकृतिक ध्वनियाँ कौन सी थी, जिनसे वाद्य संगीत उत्पन्न करने का विचार उत्पन्न हुआ। आदिम मनुष्य पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर था, इसलिए वह प्रकृति के सबसे नजदीक था और प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनियों को बहुत बारीकी से सुन सकता था, समझ सकता था। लेकिन उसके सामने दिक्कत यही थी कि, वह प्रकृति की इन ध्वनियों को जब वे उत्पन्न होती, तब ही सुन सकता था। उनका आनंद ले सकता था। पर, वह जब चाहे तब उत्पन्न नहीं कर सकता था। हवा की आवाज सुनने के लिये उसे हवा चलने, का इन्तजार करना पड़ता था। झरने की झर-झर सुनने के लिये उसे झरने के पास जाना पड़ता था। सारिता की सर सर और कल-कल सुनने के लिये, उसे नदी के पास जाना पड़ता था। बादलों की गर्जन तर्जन के लिये उसे वर्षा ऋतु का इन्तजार करना पड़ता था। कोयल की मधुर कुहुक सुनने के लिये उसे आम पर मंजरियों के आने की प्रतीक्षा करना पड़ता था। हाथी की चिंघाड़ सुनने के लिये उसे कजली बन में जाना पड़ता था। चिड़ियों की चहचहाट सुनने उसे सुबह का इन्तजार करना पड़ता था। कौओं की काँव काँव सुनने के लिये मुंडेर पर कौओं के आने लिये उसे निमंत्रण देना पड़ता था। मयूर का नृत्य देखने के लिये उसे, उमड़ घुमड कर छाने वाले, काले बादलों की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इन सबकी आवश्यकता के अनुसार कृत्रिम रूप से ध्वनि या आवाज उत्पन्न करने का उपाय ढूँढने लगा, ताकि जरूरत समय उसका उपयोग कर सके। उसने देखा कि कूटने-पिटने से, वस्तु के गिरने से, बरतन के खाली पन से, ताली बजाने से, पैर के धरती पर पटकने से मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी आदि में एक प्रकार की अलग अलग ध्वनियां मौजूद है। प्रकृति से उत्पन्न ध्वनि की साम्यता के लिये इन पदार्थो से ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं। उसने देखा कि प्रकृति की हर वस्तु में कोई न कोई ध्वनि जरूर है। इस नैसर्गिक गुण का उपयोग वाद्य बनाकर क्यों नहीं किया जा सकता? विवेकशील मानव की ध्वनि से संगीत उत्पन्न करने की प्रेरणा श्रोत भी प्रकृति के ये उपादान ही थे। क्यों न इन माध्यमों को मिलाकर घोष ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती है। इन वस्तुओं को अपनी कल्पना के आधार पर आकार-प्रकार दिया जाय, और क्यों न स्वर को बाँध दिया जाय? इस मूल विचार को मूर्त क्रियात्मक रूप देने लिये मनुष्य कोशिश करने लगा। उसने देखा वायु के वेग के चलने से बाँसों के झुरमुट से एक प्रकार की मधुर सीटी बजने लगती है, जो कर्ण प्रिय तो है ही, साथ ही मनुष्य हृदय में एक प्रकार का स्थायी रस भी उत्पन्न करने में सक्षम होती है। उसने सोचा बाँस में मधुर संगीत परख होना चाहिए। बस यही पहले बाँस से बाँसुरी बनाने का मूल विचार आदि मानव के मस्तिष्क में कौंधा। उसने बाँस को काटकर देखा तो वह अंदर से पोला था। अब उसे एक तरफ से मुँह पर फूँका तो दूसरी ओर से कुछ अलग ध्वनि निकली। उसने उसी बांस के टुकडे में छेद किये और उसके मुँह पर ही लकड़ी की जीबि लगायी और फूँका तो उसमें से अत्यन्त मीठी आवाज निकली। छेदों पर ऊंगलियां रखी तो मनचाहे स्वर निकलने लगे। प्रारंभ में मनुष्य ने तीन ही छेद किये, आज कई आदिवासी समूह तीन छेद वाली बाँसुरी बजाते मिल जाते हैं। बाद में पाँच, छह, सात सुरों (छेदों) वाली बाँसुरियों को आकार मिला। जो मनुष्य के विकास के इतिहास की कड़ियाँ भी बनी। यह पल भी ऐसा था कि, जब ध्वनि ने स्वर या सुर का नाम ग्रहण किया। यहीं से बाँस से बाँसुरी का जन्म हुआ, जो सृष्टि का पहला वाद्य निर्मिति होने का श्रेय देते हैं। लेकिन मैं सोचता हूँ। पहले बाँसुरी सुषिर वाद्य बनने के बाद

ही, आदिम मनुष्य को ताल वाद्य बनाने की जरूरत महसूस हुई होगी। उसका ध्यान मिट्टी की तरफ गया होगा। जो बरसात के बाद गीली होकर, कई प्रकार के आकार ग्रहण कर लेती है। जिसमें जानवरो के पैरों से बने निशान, उसकी प्रेरणा का कारण हो सकता है। आदिवासी एक कथा के अनुसार बरसात में हाथी अपने सिर पर सूंड से बहुत सा कीचड़ लपेट लेता है। वर्षा के खत्म होने पर वह मिट्टी उसके माथे पर सूख जाती है और एक दिन सिर से अलग होकर जमीन पर गिर आती है। वह सुखा एक खोखला आकार होता है।

गर्मी में आग लगने पर वह पक जाता है और बरसात में उसमें पानी भर जाता है। वह टूटता फूटता नहीं। यह देखकर आदि मानव को मिट्टी के प्रथम बर्तन–घड़ा आदि बनाने का आइडिया आया। इसके साथ ही घड़े पर चमड़ा लगाकर वाद्य बनाने का भी विचार आया। तब से मिट्टी के बर्तन और ताल वाद्य का चलन पृथ्वी पर हुआ। ये एकदम आदिम कथाएँ हैं। शिव से वादय संगीत की उत्पत्ति कथाएँ बहुत बाद की है। पुराणों में कहा गया है कि, शिव के डमरू से नाद की उत्पत्ति हुई है। शिव ही स्वर, नृत्य और संगीत के जनक है। शिव से ताण्डव और माँ पार्वती से लास्य की उत्पत्ति हुई। ये बाद की कल्पनाएँ हैं। शिव आदि–वासियों के देवता भी रहे हैं, इसलिए उन्हें देवादि देव भी कहते हैं। तब वे शिव नहीं थे। रुद्र महादेव थे। महादेव ने वाद्य बनाये और पृथ्वी को संगीत से भर दिया। गोंड मिथ कथा के अनुसार लिंगोदेव ने उन्होंने बजाने के लिये अठारह वाद्य दिये। बूढादेव, बड़ादेव और लिंगोपेन महादेव के ही परवर्ती नाम है। भीलों की बहुत प्राचीन वाद्य उत्पत्ति कथा है। जिसे आप भी जानिये महादेव ने पार्वती के कहने से कलु यानी पृथ्वी को बना तो दिया, लेकिन वे समाधि में चले गये। उन्हें समाधि में बहुत समय बीत गया। एक दिन पार्वती माँ ने महादेव को समाधि से जगाया और कहाँ अरे । तुमने कलु बिहन को बनाकर बिल्कुल भुला दिया, कई युग बीत गये, उसकी सुध तो लो। वह कैसी है, सुख में है या दु:ख में है।

महादेव ने कहा– पार्वती तुमने अच्छा याद दिलाया। कुछ करता हूँ।

महादेव ने पृथ्वी से सांवला सुतार को बुलाकार उससे कहा– तुम वापस पृथ्वी पर जाओ और मेरे लिये पेड़ की मोटी–मोटी लकड़ियां काटकर लाओ। महादेव ने उसे औजार दिये।

सांवला सुतार ने पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाया लेकिन उसे कोई ऐसा पेड़ नहीं मिला। जिसका तना या डालियाँ काटी जा सके। हार थककर वह एक जगह सो गया। सोते ही उसे गहरी नींद लग गई। बहुत देर बाद जब उसकी नींद खुली तो, उसके सामने एक ऊँचा पेड़ दिखाई दिया। उसने पेड़ को नींचे से ऊपर तक देखा तो वह हैरान रह गया। वह पेड़ इतना ऊँचा था कि उसकी फुनगी ठेठ आसमान की छत को छूती थी। उसने झट उस पेड़ को पहले प्रणाम किया और कहा जिस पेड को मैं ढूँढ रहा था, वह मेरे सम्मुख है। यही पेड़ तो मैं चाहता था। फिर उसने अपने सिर से पगड़ी उतारी और पेड़ की फुनगी पर बाँध दी। तांकि उसमें से स्वर निकल न

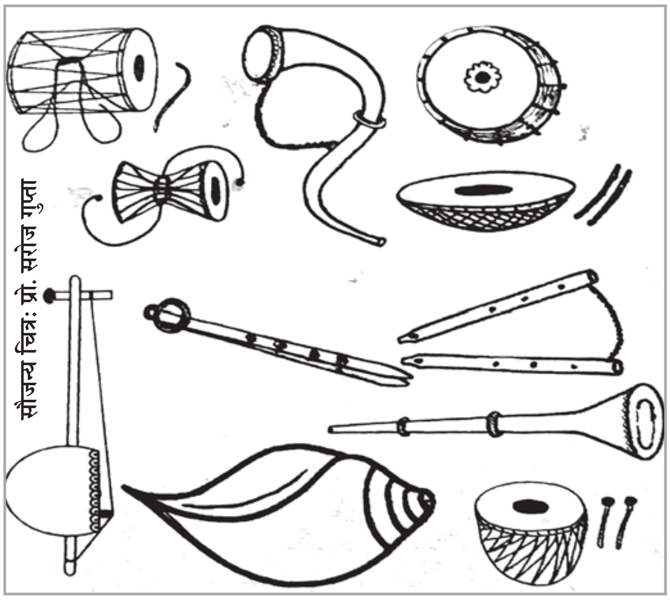

जाय, पश्चात् सांवला ने पेड़ की पूजा की और पेड़ से अनुमति ली कि हे ! पेड़ देवता। मुझे तुम पर कुल्हाड़ी चलाने के लिये माफ करना। मेरे भगवान महादेव ने ऐसी ही लकड़ियाँ मंगवाई हैं। साथ में उसने यह भी कहा कि मैं पूरा पेड़ नहीं काटूंगा। कुछ डालियाँ ही काटूंगा, और सांवला ने उस पेड़ की डालियाँ काटी और महादेव को जाकर दे दी। महादेव ने पहले लकड़ी को पोलाकर उसके दोनों ओर चमड़ा मढ़कर सूखने पर उसे बजाया और सांवला सुतार को दिया। इस तरह सांवला सुतार ने ढोल बनाना सीख लिया। ऐसे ही लकड़ी पर चमड़े लगे और कई ताल वाद्य सांवला को बनाना सिखा दिया। जिसमें टिमकी, नगड़िया, ढोलक ढाँक, डमरू आदि थे। सांवला सुतार सारे वाद्य लेकर पृथ्वी पर वापस आया । तब तक पृथ्वी पर सुन सपाटा था। कोई आवाज नहीं थी। कोई वाद्य संगीत नहीं था। ऐसे अन्य वाद्य भी अलग–अलग व्यक्तियों को दिये। सांवला सुतार ने जिसे ढोल बजाने को दिया वह 'ढोली' कहलाया। ऐसे अन्य वाद्य भी अलग–अलग व्यक्तियों को दिये।

ढोली ने ढोल बजाया। टिमकी वाद्य वाले ने टिमकी बजायी। सभी ने अपने–अपने–वाद्य बजाये। उसी दिन से वाद्य स्वर धरती पर आया। पृथ्वी, वाद्यों के स्वर आवाज और संगीत से भर गयी। पृथ्वी का सूनापन जाता रहा। पृथ्वी जाग गयी । इस कथा से एक बात स्पष्ट हुयी कि पृथ्वी को जगाने के लिये वाद्यों की निर्मिति हुयी । पृथ्वी का यह आध्यात्म मनुष्य की जागृति का भी संदेश है। जनजाति के लोग अपने देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिये, उनके सम्मुख वाद्य बजाकर सामूहिक नृत्य करते हैं, और सचमुच में इससे देवता भी प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता अच्छी वर्षा और अच्छी फसल के रूप में फली भूत होती है। देवता उनके अंग में आकर मानवीय कुशलता की घोषणाएँ करते, आज भी मिल जाते हैं। तब कोई न कोई वाद्य ढाँक, ढोल, डमरु निरन्तर बजता रहता है। जो देवता को देव नृत्य करने के लिये बाध्य करता है। प्रारंभिक

अवस्था में ही वाद्य संगीत का, इस तरह अध्यात्म से जुड़ना वाद्य की अनिवार्यता और उपयोगिता को ही सिद्ध करता है। जहाँ वाद्य का एक उद्देश्य मनुष्य के उच्चतम मानदण्ड को भी स्थापित करता है। पृथ्वी पर वाद्य का आगमन यूं ही नहीं हुआ है। ढाँक और ढोल तो देव वाद्य ही कहे जाते हैं। वाद्य बजाने के पूर्व वाद्यों की पूजा का चलन, प्राय: आदि-काल से ही चला आ रहा है। जनजातियों की इस अवधारणा को विकसित लोक समाज ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया ।

वाद्यों की सामाजिकता को भी नकारा नहीं जा सकता। ढोल बजाने वाले समूह को एक जातीय गुणवत्ता के आकार में ढोली के रूप में ढल जाना, सामाजिकता का सबसे बड़ा उदाहरण कहा जा सकता है। ऐसी व्यवसायिकता के चलते ही, अनेक अन्य जातियों का विकास हुआ। बढ़ई, लोहार, बुनकर, नाविक धीवर आदि ऐसे ही प्रमाण है। जो समाज की अर्थवत्ता के भी आधार बने। इन उद्यमी लोगों का संबंध समाज के हर वर्ग से रहा है। वाद्य और वादक का रिश्ता समाज के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे परिवार से गाढा रहता है, क्योंकि बच्चे के जन्म से लगाकर प्रत्येक मंगल कार्य में वाद्य वादन की समाज में परम्परा ही बन गई, जो आज तक जारी है। यहाँ तक कि वाद्य का वादन शव यात्रा तक में प्रचलित हुआ। जिसके कारण कारण मृत्यु भी एक उत्सव में बदल जाती है। इस बात को मैं वाद्य संगीत की शक्ति ही मानता हूँ। कई वाद्यों की तालें ऐसी होती है कि उनकी ध्वनि कान में पड़ते ही मनुष्य के पैर नाचने के लिये मचल पडते हैं। वाद्यों के सहारे नर्तक घण्टों नाच सकते है। मुरिया जनजाति का नृत्य घाटियों (घंटियों) और के सहारे रात-रात भर चलता है। समवेत वाद्यों से उद्भूत संगीत पर हजारों नर्तकों को एक साथ नाचते हुए, देखा जा सकता है। अकेला तन्तु वाद्य हजारों लोगों के मन-मस्तिष्क पर जादुई असर पैदा कर सकता है। परधानों का तन्तु वाद्य 'बाना' इसी तरह का वाद्य है, जिसके मधुर स्वरों पर बड़े-बड़े आख्यान विशेषकर रामायणी, गोण्डवानी और पण्डवानी गाथा प्रमुख हैं। रविशंकर के सितार वादन से कौन नहीं मोहित होता है। उस्ताद जाकिर हुसैन के तबला वादन से कौन नहीं प्रभावित होता है। यह सब वाद्यों की महिमा है। जो आदि काल से अब तक अनवरत बही चली आ रही है।

वाद्य न जाने कब से संदेश वाहक बने हैं। जो संचार का प्रथम प्रतीक भी बना। मृत्यु की सूचना ढोल या नगाड़ा पीटकर जनजातियों में बहुत पहले से ही दी जा रही है। बच्चे के जन्म पर थाली या सूपड़ा पीटकर शुभ सूचना देने के चलन की कोई निश्चित तिथि नहीं बताई जा सकती। गोंड बैगा जनजातियों के विवाह में मंगल वाद्य के रूप में नगाडा जो हवा में निरन्तर संगीत की लहरें पैदा करते रहते हैं। जिस पर महिला और पुरुष उठ - उठकर भड़ौनी नृत्य करते हैं। जिसकी ध्वनि दूर-दूर तक सुनाई देती है। जिससे यह पता लग जाता है कि आस-पास कहीं न कहीं विवाह हो रहा है। वायों का एक महत्वपूर्ण उपयोग यह भी है कि यदि घर में कोई पवित्र वाद्य है तो, बाहरी बाधाएँ घर के बाहर ही रहती हैं। घर में प्रवेश नहीं करती। ढिंढोरी पीटने के लिये ढोल, नगडिया, ढफ, ढोलक आदि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

अतीत में युद्ध के आरम्भ की सूचना शंख, रमतुला, सिंगाड़िया, बिगुल आदि वाद्य बजाकर दी जाती रही है। जीवन से सदैव वाद्य जुड़े रहेंगे, जब तक यह पृथ्वी है, तब तक उसकी अनिवार्यता बनी रहेगी।

जनजाति वाद्यों के आकार मानव शरीर की तरह सुंदर होते हैं। उन्होंने शरीर को एक वाद्य यन्त्र माना। जो साँस की तंत्री पर, जब तक जीवित होता है, तब तक बजता रहता है। जीवन की यह स्वर लहरी कभी रुकती नहीं है जिसे शास्त्र में नाद कहा गया है। जो निरंतर ध्वनित होता रहता रहता है। तब वह अनहद नाद हो जाता है। संगीत अनहद नाद की नीव पर खड़ा है। शरीर में अनहद नाद की अनुगूँज गूँजती रहती हैं। इसीलिये वाद्यों के आकार शरीर के अनुरूप आदि मानव ने गढ़े हैं। जिनकी हृदतंत्री में नाद सुसुप्तावस्था में रहता है। जब उस पर कोई थाप पडती है, डंडे की चोट चोट पड़ती है या ऊँगली की टंकार पड़ती है तो, उसकी हृदतंत्री से ध्वनियाँ झंकृत होने लगता है। वही संगीत कहलाता है। जैसे हवा के थपेड़ो से हवा का संगीत फूटता है। तब वाद्य एक शरीर की तरह सजीव हो उठता है, और बजने लगता है। वाद्य प्राणवान हो उठता है।.

गोण्ड आख्यान में बाना वाद्य खिरसारी पेड़ के तने से बनाने का जिक्र आया है। उसे बिल्कुल मानव शरीर की तरह, रूप दिया जाता है। किनारी दो बड़े तुम्बे पर लकड़ी पर तार कस कर, एक स्त्री के आकार में बनाया है। बाने के तार हृदतंत्री की तरह कसे जाते हैं और उन्हें धनुष पर लगे घोड़े के बालों से रगड़कर बजाया जाता है। वाद्यों के आकार गढ़ने में प्रकृति के उपादान ही अधिक सहयोगी होते हैं। वाद्य की निर्मिति में मिट्टी, लकड़ी, वनस्पति के फल, बीज, और पेड-पौधों की डाली, तने और पत्ते आदि का उपयोग किया जाता है। मरे हुए जीवों की खालें, पेट की आँतें और बाल, सींग भी वाद्यों के बनने, बजने, बजाने में कम भूमिका नहीं निभाते हैं। धातु के भी तार, कीलें, खोल, दंड, खूँटी, गुल्ली और पतली सपाट चद्दर आदि का उपयोग वाद्यों के आकार गढ़ने में मजबूती प्रदान करते हैं। वाद्यों के बाहरी आवरण को सौन्दर्य प्रदान करनेका काम चाँदी, सोना, पीतल, ताम्बा, कांसा, लोहा जैसी कीमती धातुएँ ही करती है, जो पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त होती है। धरती के बहुमूल्य खनिजों में हीरे, मोती, जवाहर, पन्ने आदि से वाद्यों को राजा-नवाब, जैसे लोग मढ़ाकर बजाने का शौक पूरा करते रहे हैं। राज दरबार में वाद्य बजाने वाले वादकों, गायन करने वाले गायकों, नर्तन करने वाली नर्तकियों को राजा-महाराजाओं द्वारा हीरे, मोती, जवाहर, सोने, चाँदी के हार, कंठी अपने गले से उतारकर उपहार स्वरूप देते हुए लघुचित्रों और भित्तिचित्रों और पोथी चित्रों में दिखाये जाते रहे हैं। जनजाति जन वन में, समूह में ढोल, मांदर, बजा कर वर्षा के लिये बादलों का आव्हान करते आज भी मिल जाते हैं। बिना वाद्य वादन के जनजातियों के कोई भी अनुष्ठान पूजा पूरी नहीं मानी जाती। प्रसिद्ध गायक तानसेन के दीपक राग के गाने से दीपक जल जाते थे। मिया

मल्हार राग से बादल उमड़-घुमड़ कर, आसमान में छा जाते थे। जंगल से निकल हिरण, तानसेन के ध्रुपद की तान सुनकर संगीत सभा में चुपचाप आकर खड़े हो जाते थे। इसमें केवल तानसेन की राग-रागनियाँ ही नहीं, बल्कि उनके साथ बजने वाले वाद्यों सारंगी, सितार, शहनाई उनके साथ ढोल मृदंग, झांझ, लोटा, बाँसुरी आदि वाद्यों का मधुर संगीत भी उतना ही महत्वपूर्ण था। अकेला राग, बिना वाद्यों की लय-ताल के इतना परवान कैसे चढ़ सकता है। इतना जादुई असर कहाँ से आ सकता है। उसके पीछे वाद्य-संगीत की समवेत शक्ति भी थी।

घोष के लिये समुद्र का शंख मंगल वाद्य है। लोक की भक्ति में शंख का प्रमुख स्थान माना गया है। आरती के समय मंदिरों में घंटा, घड़ियाल के साथ शंख बजाना अनिवार्य होता है। बाद में शंख का उपयोग उद्घोषणा के लिये युद्ध में किया जाने लगा। धर्मयुद्ध महाभारत में श्रीकृष्ण ने पाँन्चजन्य, भीम ने पौण्ड्र और अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख बजाकर युद्ध के शुरुवात की घोषणा की थी। शंख अभी भी घोष के लिये कई समारोहों के शुभारंभ में मंगल वाद्य की तरह बजाया जाता है। खासकर पूर्वांचल के जनजातीय समारोहों में।

वाद्यों को बजाने में निपुणता की आवश्यकता है। लोक और जनजातियों में वाद्य बनाना और बजाना परम्परागत होता है। वहाँ परम्परा ही गुरु का काम करती है। पिता को बजाता देखकर पुत्र भी वाद्य का बजाना सीख जाता है, और पारंगत हो जाता है। फिर वह अपनी अगली पीढ़ी को सौंपता जाता है। इस तरह वाद्य और वादन की, परम्परा आज तक चली आई है। आज विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों में वाद्य वादन की शिक्षा परम्परा लोक और जनजाति जनजाति परम्परा पर आधारित ही गुरु शिष्य को प्रवीण बनाता है। शास्त्र में चार प्रकार के वाद्यों की गणना की जाती है, तत्, अवनद्य, घन और सुषिर तत् यानी तार वाद्य, अवनद्य, चर्म मड़ित वाद्य, घन संगत वाद्य और सुषिर, फूंककर या हवा द्वारा बजाये जाने वाले वाद्य हैं. लेकिन जनजाति और लोक में इस तरह की श्रेणियों का विभाजन नहीं मिलता। जनजातियों में भी इस प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं, लेकिन उन्होने इनकी श्रेणियों के नाम निर्धारित नहीं किये हैं। यह काम संगीत शास्त्रों ने किया है। हाँ, इतना जरूर है कि सभी वाद्य अपने आकार-प्रकार और गुणों के आधार पर उसी जगह बजाये जाते हैं, जहाँ उनकी उपयुक्त लय-ताल, स्वर आधार और महत्व अधिक हो। जैसे कण्ठ से गाये जाने में तार और ताल वाद्यों का सर्वाधिक महत्व है। नृत्य में ढोल, ढोलक, तबला, बाँसुरी का स्थान सर्वोपरि है। इसी तरह मंगल कार्य के वाद्य झाँझ, मंजीरा, खड़ताल शंख आदि सुनिश्चित है। हारमोनियम, सिंथेसाईजर आदि नये वाद्यों को भी लोक ने स्थान दिया है। ये आज के सम-काल की नई तकनीक से बनाये गये वाद्य हैं। जिनका उपयोग सिनेमा और इवेन्ट संगीत में बहुतायत से किया जाता है, जिनमें खास अपील अधिक है।

लेखक: जनजातीय विषय के अध्येता हैं।
संपर्क : 7 उमा विहार कोलार थाने के आगे, नया पुरा, भोपाल म.प्र.
मो. 9424030151

कला समय

आगामी अंक
अगस्त - सितम्बर 2025

लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय नृत्यों पर केन्द्रित विशेषांक

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु नृत्य, नर्तक, नृत्यांगना, घराना पर मौलिक आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, विशेष पाण्डुलिपियाँ सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 अगस्त 2025 है।

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

- संपादक
मो.- 94256 78058

आलेख

वीणा : पुरातत्त्वीय तथ्य

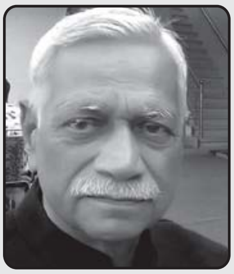

डॉ. नारायण व्यास
(डी. लिट)

भारतीय संगीत विषयक वाद्यों में वीणा का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। सर्वोत्तम तारों वाले वाद्य वीणा को ही वीणा या बीन कहते हैं। प्राय: इस वाद्य का निर्माण खोखले काष्ठ द्वारा किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि वीणा की आकृति पार्वती के शरीर के समतुल्य मानी जाती थी। पूर्व समय में इसकी अनुमानित लम्बाई दो हाथ दस अंगुल होती थी, सम्भवत: आज भी यही नाप हो सकता है, जिसमें दो स्टील तथा पाँच पीतल के तार होते हैं। प्राचीन काल से ही इस वाद्य का प्रयोग किन्नर, गन्धर्व तथा विद्याधर किया करते थे। इनके साथ ही कुछ प्रमुख देवी-देवताओं द्वारा भी वीणा का प्रयोग किया गया है। सरस्वती, जिसे वीणापाणि भी कहते हैं, तथा शिव को वीणाधारी प्रतिमा शिल्प में प्रदर्शित किया जाता था। नारद द्वारा नारायण की स्तुति वीणा बजाकर ही पूर्ण होती थी।

वैदिक साहित्य में वीणा वादकों के व्यवसाय के उल्लेख मिलते हैं। महाजन पद युगीन साहित्य में आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा वास्तुवेद के साथ संगीत (गन्धर्व वेद) की जानकारी प्राप्त होती है तथा विभिन्न प्रकार के वाद्यों के उल्लेख मिलते हैं जिनमें वीणा, बाँसुरी, दुन्दुभी प्रमुख हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अंशुभेदागम् में प्रतिमा शास्त्र के अंतर्गत सरस्वती प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है जिसमें उनके दो हाथों से वीणा वादन करने का उल्लेख मिलता है। भगवान शंकर की प्रतिमाओं के सौ से भी अधिक प्रकार मिले हैं। उनकी दक्षिणामूर्ति के अंतर्गत चार प्रकार की प्रतिमाएँ होती हैं जो क्रमश: व्याख्यान मूर्ति, ज्ञानमूर्ति, योगमूर्ति एवं वीणाधर मूर्ति कहलाती हैं। दक्षिण भारत के मन्दिरों में विशेष रूप से वीणाधर मूर्ति कांस्य व पाषाण प्रतिमा के रूप में देखने को मिलती हैं।

शिल्प संहिता में अप्सराओं या सुर-सुन्दरियों की सैंतीस प्रकार की प्रतिमाओं के उल्लेख मिलते हैं। इनकी विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों से युक्त प्रतिमाएँ देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के आसपास मन्दिरों में देख सकते हैं। इनमें एक वीणा वादन करती अप्सरा भी होती है, जिसका शिल्प संहिता के अनुसार 'सरिता' नामकरण किया हुआ है। सामान्य रूप से प्रतिमाओं के ऊपरी परिकर भाग पर या देवताओं की प्रतिमाओं के पैरों के आसपास क्रमश: विद्याधर युग्म, गन्धर्व या परिचर वीणा वादन करते प्रदर्शित किये जाते थे।

भारत के विभिन्न प्रदेशों में वीणा वादन के उदाहरण शैलकृत गुफाओं की मूर्ति कला में, मन्दिरों में जड़ी प्रतिमाओं में, बाघ व अजन्ता गुफाओं की चित्रकला में, समुद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं पर शैल चित्रकला इत्यादि में देखे जा सकते हैं।

प्रारम्भिक उदाहरणों में आरम्भ से गुप्तकाल तक वीणा श्रृंगाकार, अधुवर्तुलाकार व सरोदवाद्य यंत्र के समान देखने को मिलती है। इनमें सात तारों के प्रयोग का अंकन मिलता है जो आज भी सम्भवत: प्रचलन में है। गुप्त काल के पश्चात् आकार-प्रकार में बदलाव प्रारम्भ हो जाता है। सातवीं-आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के मध्य हुए प्रतिहार, पाल, कच्छपघात, चौहान, परमार, इत्यादि शासकों के समय की मूर्तिकला में वीणा के आकार प्रकार में परिवर्तन दिखाई देता है जो कि आधुनिक वीणा के समान है। तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् वीणा के समकक्ष सितार वाद्य का स्वरूप सामने आता है।

पांचवीं शताब्दी की प्रतिमा, नचना जिला पन्ना

वीणा या उसके समकक्ष वाद्य का प्रथम उदाहरण शुंगकालीन कला के अन्तर्गत ई. पूर्व दूसरी शताब्दी में निर्मित भरहुत (जिला-सतना) स्तूप के एक वेदिका स्तम्भ पर देखने को मिलता है। स्तम्भ पर नारी आकृति को वीणा समान सात तारों वाले वाद्य का वादन करते हुए प्रदर्शित किया गया है। पवाया (जिला-ग्वालियर) के पाषाण सरदल पर नृत्योत्सव का दृश्य है जिसमें नृत्य करती स्त्री आकृति के आसपास वाद्यवृन्द करती कई स्त्री आकृतियाँ हैं, उनमें से एक आकृति लघु प्रकार की वीणा या उसके समान वाद्य लिये वादन कर रही है। इस दृश्य में ही एक श्रृंगाकार वाद्य भी बताया गया है। इन उदाहरणों के समकालीन ही साँची स्तूप क्रमांक एक के तोरण द्वारों का निर्माण सात वाहन शासक गौतमी-पुत्र सातकर्णी के समय विदिशा के हाथी दाँत के कारीगरों द्वारा किया गया था, उनमें अनेक

स्थानों पर इस प्रकार के वाद्य देखे जा सकते हैं ।

मथुरा की कृषाणकला के एक वेदिका स्तम्भ पर एक अप्सरा को तारों वाले वाद्य का वादन करते हुए निर्मित किया हुआ है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार यह वाद्य वीणा ही है।

भारतीय इतिहास में गुप्त काल को स्वर्णयुग माना गया है। इस युग में साहित्य, कला, संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई थी। स्वर्णमुद्राओं का भी सर्वाधिक प्रचलन था। गुप्तकालीन शैलकृत गुफाओं की प्रतिमाओं में, चित्रकला में, मुद्राओं पर वीणा वादन के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते हैं। विदिशा के निकट उदयगिरी गुफाओं का निर्माण लगभग चौथी शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था। चन्द्रगुप्त द्वितीय भी मालवा विजय के उपलक्ष्य में उसके सेनापति साव वीरसेन ने इन गुफाओं का निर्माण करवाया था। वीणा वाद्य के उद्धरण यहाँ गुफा क्रमांक 4 व 5 में देखने को मिलते हैं। कनिंघम द्वारा गुफा क्रमांक 4 का नामकरण 'वीणा गुफा' किया गया था। गुफा के प्रवेश द्वार की शाखाओं पर वीणा वादन करते मानवाकृति उकेरी हुई हैं। गुफा क्रमांक 5 में गंगा-यमुना आकृतियों के ऊपरी भाग में किन्नरों-गन्धवों को आसमान में विचरण करते प्रदर्शित किया गया है। उनके हाथों में वीणा के समान वाद्य है। वराह अवतार प्रतिमा के ऊपरी भाग पर भी इस प्रकार की आकृतियाँ वीणा लिए देखी जा सकती हैं। यहाँ वीणा का आकार-प्रकार आधुनिक सरोद के समान है। इनमें तार व खुटियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।

बाघ (जिला-धार) की गुफाओं में एक स्थान पर पाँच स्त्री आकृतियाँ चित्रित हैं, जिनमें मध्य स्त्री आकृति के हाथ में वीणा के समान वाद्य है। बाघ की ही समकालीन अजन्ता (महाराष्ट्र) की गुफाओं में भी इस प्रकार के चित्र देखे जा सकते हैं। गुफा क्रमांक 1 व 17 में एक युग्म व वाद्यवृन्द सहित मानवाकृतियों को वीणा-प्रकार के वाद्य का वादन करते हुए चित्रित किया हुआ है।

गुप्तयुगीन शासकों में समुद्रगुप्त का एक महान योद्धा, कला व संगीत प्रेमी के रूप में सर्वोच्च स्थान था। उसके कला व संगीत प्रेमी होने का महत्त्वपूर्ण उदाहरण हरिषेण द्वारा रचित 'प्रयाग प्रशस्ति' में मिलता है। उसने अपने समय में वीणा-प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन किया था। मुद्रा के अग्रभाग में सम्राट पलंग पर बैठे, गोद में वीणा रखकर वादन कर रहे हैं। कुषाण शासकों के समान उसने टोपी पहन रखी है; मुद्रा के ही अग्रभाग पर गुप्तकालीन ब्राह्मी में महाराजाधिराज समुद्रगुप्त संस्कृत लेख प्राप्त होता है जिसमें समय की सार्थकता इंगित होती है।

गुप्त युग के पश्चात् भारत का उत्तरी भाग हर्षवर्धन, प्रतिहार व पाल शासकों के आधिपत्य में आ जाता है। उनकी प्रतिमा-कला पर गुप्त युगीन कला का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। बड़ोह-पठारी के एक प्रतिहार कालीन मंदिर में दो हाथों वाली सरस्वती की प्रतिमा में उसे वीणा वादन करते बताया गया है। पाल शासकों के समय की प्रतिमाओं में प्रमुख देवी-देवताओं के साथ गन्धर्व/विद्याधर या स्त्री परिचरों का अंकन होता है जिनमें कुछ आकृतियों को वीणा वादन करते बताया गया है जिनमें वीणा सीधी होती है। भारत कला भवन, वाराणसी में रखी एक नवीं शताब्दी की वामन प्रतिमा के निचले भाग में एक स्त्री परिचर को वीणा वादन करते बताया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी की सुन्दरवन (बँगला) से प्राप्त पाल कालीन सरस्वती की दो भुजाओं वाली प्रतिमा एक श्रेष्ठ कलाकृति है। उसमें देवी को वीणा वादन करते हुए प्रदर्शित किया गया है। वर्तमान में यह प्रतिमा आशुतोष संग्रहालय में रखी है।

दक्षिण भारत में होयसेल शासकों के समय की प्रतिमाएँ अत्यधिक अलंकृत होती थीं। उनमें सरस्वती की प्रतिमाओं में देवी को नृत्य भंगिमा अथवा व्याख्यान मुद्रा में वीणा वादन करते बताया गया है। उनके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण होयसलेश्वर मन्दिर, हेलेबिड में देखे जा सकते हैं।

सुहानिया (जिला-मुरैना) से प्राप्त कच्छपघात कालीन वीणा युक्त चार भुजाओं वाली सरस्वती प्रतिमा तत्कालीन समय की सर्वोच्च कलाकृति है। यह प्रतिमा वर्तमान में गुजरीमहल संग्रहालय, ग्वालियर में प्रदर्शित है।

राजा भोज द्वारा निर्मित भोजशाला की परमार कालीन सरस्वती प्रतिमा, जोकि वर्तमान में ब्रिटिश संग्रहालय में संग्रहित है, की समस्त भुजाएँ भग्न हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें वीणा अवश्य रही होगी।

सिन्दखेड़ राजा (महाराष्ट्र) के एक मन्दिर में अप्सरा की एक भग्न, परन्तु सुन्दर प्रतिमा है जिसमें उसे वीणा वादन करते बताया गया है। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में बीकानेर क्षेत्र से प्राप्त बारहवीं शताब्दी की सरस्वती की चार भुजाओं वाली अनूठी प्रतिमा है जिसमें वीणा नहीं बतायी गयी है परन्तु उसके पैरों के निकट त्रिभंग मुद्रा में खड़ी स्त्री परिचर वीणा वादन कर रही है।

मूर्तिकला, चित्रकला के अतिरिक्त शैल चित्रकला में भी सामूहिक नृत्य के चित्रों के साथ कहीं-कहीं वाद्यवृन्दों का भारी अंकन मिलता है। इनका सबसे उत्तम उदाहरण पचमढ़ी के निबू भोज या बाज़ार केव शैलाश्रय में देखने को मिलता है जिसमें एक मानवाकृति अपनी गोद में वीणा के समान वाद्य लिए हुए है। यह चित्र लाल गेरुए रंग का है तथा बाहरी रेखांकन सफेद रंग से किया हुआ है। शैली के आधार पर यह चित्र कुषाण या गुप्तकाल का हो सकता है।

उपरोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त वीणा वाद्य का प्रारम्भिक युग से वर्तमान समय तक की कला में विस्तृत पुरातात्त्विक व साहित्य के आधार पर गहन शोध कार्य किया जावे तो सैकड़ों नए उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। इस कार्य से सन्द समय पर वीणा के आकार-प्रकार के परिवर्तन की विस्तृत झाँकी भी प्राप्त हो सकेगी।

लेखक: वरिष्ठ पुरातत्वविद् हैं।
सम्पर्क : 95, फाईन एवेन्यू फेस 1, नयापुरा कोलार रोड,
भोपाल 462042 (म.प्र.) मो. 9425600143

आलेख

उत्तर गुजरात के आदिवासी समाज का लोकसंगीत- लोकवाद्यों-लोकनृत्य

भील आदिवासी लोकसंगीत - लोकनृत्य आदिवासी लोकसंगीत एवं लोकनृत्यों की प्राचीन पृष्ठभूमि

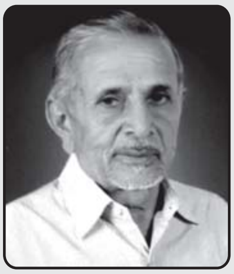

डॉ. भगवानदास पटेल

आरंभ से ही जंगल आधारित जीवन होने से प्रकृति के साथ अनुकूलन साधने और जीवन चलाने के लिए वन्य जीवों के साथ हुए अनुभवों से आविर्भूत जीवनरीतियों में से भील समाज की कितनी ही विशिष्ट लोकविद्याएँ विकसित हुई हैं।

आदिवासी संगीत का उद्भव स्थान : प्रकृति का प्रांगण

आदिवासी संगीत का उद्भव एवं पोषण प्रकृति के प्रांगण में हुआ है। यह एक ऐसे स्वरों की देवगंगा है कि जिसमें से जल लेकर ग्रामीण लोकसंगीत ने अपनी बाड़ी और नगरीय शास्त्रीय संगीत ने अपने उपवन को सजाया है।

पूर्वकालीन मानव की जीवनयापन चलाने की शिकारी जीवन-रीति और उस पर पड़े प्रकृति के कोमल-कराल रूपों का प्रभाव तथा उसको अभिव्यवत करने की रीतियों में से आज के आदिवासी समाज के संगीत वाद्य-नृत्य-नृत्त (मूक अभिनय) की लोकविद्या का उद्भव और विकास हुआ है।

आदिवासी संगीत आरंभ से ही ध्वनिप्रधान है। स्वरूप प्रकार को ध्यान में रखकर ऐसे लोकसंगीत को दो वर्गों में बाँट सकते हैं:1. कंठ्य-संगीत और 2. वाद्य-संगीत ।

संगीत की आत्मा नाद है। नाद ही संगीत को जन्म देता है। नाद के साथ स्वर और लय सम्मिलित होते हैं। ध्वनि एकम नाद से जन्म लेता है एवं नाद दो वस्तुओं के संघर्षण से जन्म लेता है। अत: संगीत सिद्ध होता है समय या काल तत्त्व का अमुक रूप में विनियोग होता है तब वह नाद निश्चित और नियंत्रित बनता है एवं उसका विशिष्ट स्वरूप स्थिर होता है। इस तरह नाद के नियंत्रित आविष्कार के साथ ही स्वर और लय की सहजोपलब्धि-सिद्धि-संगीत कहलाता है।

लोकवाद्यों और उनके प्रकार

प्रकृति और सजीव सृष्टि में से मानव को जो विविध नाद-ध्वनि-लय प्राप्त हुए एवं कंठ में अनुकरण से और आत्म-सूझ से सिद्ध किए तथा उनको ज्यादा मीठे और प्रभावी बनाने के लिए उसने वाद्यों का सृजन किया। ये वाद्य उसने कुदरत से प्राप्त चीज-वस्तुओं में से निर्मित किए हैं। ये वाद्य आदिवासी समाज अपनी परंपरित लोकविद्या या लोकज्ञान के आधार पर बनाता है। ऐसे वाद्य लोग स्वयं सर्जित करते हैं। अत: उनकी पहचान के लिए 'लोकवाद्य' शब्द सार्थक है। इन लोकवाद्यों को प्रमुख दो प्रकार में बाँट सकते हैं1. घनवाद्य और 2. अवनद्ध वाद्य या पोले पेटवाले वाद्य । भील समाज के झालर, ताळिया (मंजीरे), गुरुज, कूगरा, वेंटला आदि संगीत के गायन-वादन में संगीत देते सहायक लोकवाद्य हैं। ऐसे धातु के वाद्य बजाने से गुंजार भरा नाद देते. है। ऐसे लोकवाद्यों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठान के प्रसंग पर होता है। भील आदिवासियों के ढोल, वाजु (छोटा ढोल), सांग इत्यादि अवनद्ध चर्म लोकवाद्य हैं। ये भील समाज के अकेले स्वतंत्र रूप में बजाये जाते प्रमुख ताल-वाद्य हैं।

स्वर-वाद्यों को भी दो प्रकार में बाँट सकते हैं। फूँक के माध्यम से बजाये बंसी, शहनाई, शंख इत्यादि भीलों के सुषिर-वाद्य हैं। ये संगीत में स्वर देते सहायक लोकवाद्य हैं। दूसरे प्रकार के वाद्य तंतुवाद्य हैं। ऐसे वाद्यों के तार पर आघात करने से स्वर प्रगटते हैं। तंबूर, सारंगी, कोरायुं (घोडालियुं - मुखचंग से मिलता-झूलता वाद्य) ये भील आदिवासियों के तंतुवाद्य हैं । तंबूर स्वतंत्र वादन का प्रमुख स्वर तंतुवाद्य है। इन वाद्यों के साथ कोई न कोई पुराकथा (मिथ) जुड़ी हुई होती है।

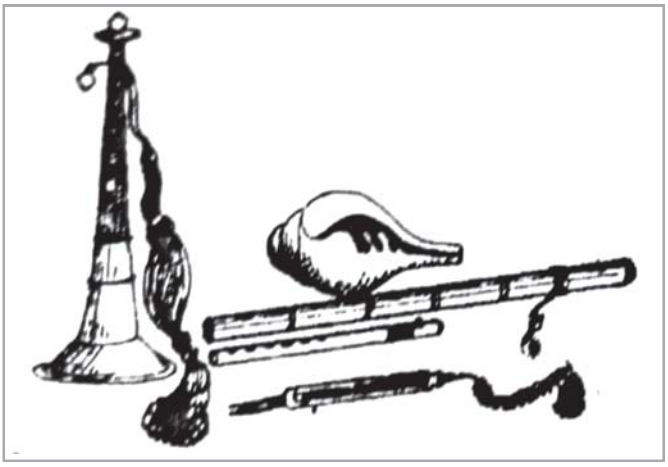

लोकनृत्य

आदिवासी संगीत का सीधा संबंध नृत्य के साथ है। लय गीत-संगीत-नृत्य का प्राणभूत तत्त्व है। अत: नृत्य में ताल की परम आवश्यकता होती है। गीत-संगीत में आवश्यक स्वर तो कंठ में से भी प्रगट हो सकते हैं, परंतु ताल के बिना नृत्य में हुमक नहीं आ सकती। अत: भील पुराकथा के अनुसार नवलाख देवियों को नाचने के लिए तालवाद्य की आवश्यकता हुई । अत: भोळा भील के पास से तालवाद्य ढोल प्राप्त किया। जो पुराकथा नृत्य में तालवाद्य की आवश्यकता पर जोर देती है।

स्वर की तरह ताल के लिए भी नाद आवश्यक है। ढोल नाद देनेवाला प्रमुख लोकवाद्य है। ढोल की तंग चर्म सतह पर गेड़ी का आघात करने से हवा में आंदोलन जन्मते हैं और एक विशेष गुंजन के साथ. नाद प्रगटता है।

भील लोकजीवन की सांगितिक परंपरा में नृत्य के लिए 'नासबुं' शब्द प्रचलित है। भील समाज के सामाजिक-धार्मिक पर्व-प्रसंगों के संलग्न लोकनृत्य वाद्यों से पहचाने जाते हैं। जैसा कि 'ढोले नासबु', 'सांगे नासबुं', 'तंबूरे नासवुं' इत्यादि ।

भील समाज के लोकजीवन में वर्ष के ऋतुचक्र और जीवनचक्र के मुताबिक आते उत्सवों, धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक संस्कारों, हररोज के व्यवहारों तथा आकस्मिक घटती घटनाओं के साथ ढोल ओतप्रोत है। भील लोकजीवन में से ढोल को बाकात किया जाय तो धार्मिक सामाजिक पर्व-प्रसंगों, उनके संलग्न लोकगीत, लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोकविद्या इत्यादि लोकसंपदा सदा के लिए लुप्त हो जायगी और हररोज के जीवन व्यवहारों को भारी हानि पहुँचेगी ।

लोकसंगीत के आधार पर ढोल के प्रकार

गेड़ी के आघात से ढोल की सतह पर से प्रगटते नाद-ध्वनि एकमों या ध्वनि-घटकों के आधार पर ढोल के प्रकार पड़ते हैं। जैसे कि वारी ढोल, हाजरी का ढोल, जोनवियो ढोल, झोरी ढोल, ढुहला का ढोल, मांदळी ढोल, ठमसळीओ ढोल इत्यादि । ढोल भील समाज में लोकजीवन को क्रियाशील करने का प्रमुख चालक-बल है।

लोकनृत्य का स्वरूप

लोकवाद्यों द्वारा पहले स्वर प्रगटते हैं। इन संगीत के स्वर सामूहिक देह को लय के साथ क्रियाशील करके नृत्य का स्वरूप देते हैं। गेयता-संगीत और नृत्य भील समाज के गीतों के प्राणभूत तत्व हैं।

आदिवासी लोकगीतों की तुलना में लोकनृत्यों की संख्या बहुत अल्प है। इसका प्रमुख कारण यह है कि लोकनृत्य आरंभ से ही सामाजिक लोकसमुदाय के बीच पलते हैं। गीत, तो मन में या प्रगट रूप में एक व्यक्ति भी गा सकता है। परंतु लोकनृत्य प्रस्तुति संलग्न होने से समूह के बीच क्रियाशील होते हैं। ऐसे लोकनृत्य समाज के लोकजीवन के सामाजिक अवसरों के साथ जुड़ जाने से आंगिक-सांगितिक वाचिक परंपरा बन जाते हैं। फिर बरसों तक नवीन नृत्यों की आवश्यकता नहीं रहती। अत: लोकनृत्य चिरंजीवी बनकर समाज की धरोहर बन जाते हैं।

भील नृत्य वैयक्तिक आनंद के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता। उसका स्वरूप सामूहिक होने से सामाजिक संस्कार और आनंद-उल्लास की गहन छाप उस पर होती है भील नृत्य समाज के पर्व प्रसंगों के सांनिध्य में लोकतत्त्वों के आधार पर स्वरूप धरते हैं। अत: समाज के व्यक्तित्व की छाप उन पर होती है।

आदिवासी लोकनृत्यों में समाज जीवन की परंपरा, संस्कार तथा धार्मिक आस्था निहित होती है। अत: लोकनृत्यों का उद्भवकाल प्राचीन और आयुष्य लंबा होता है।

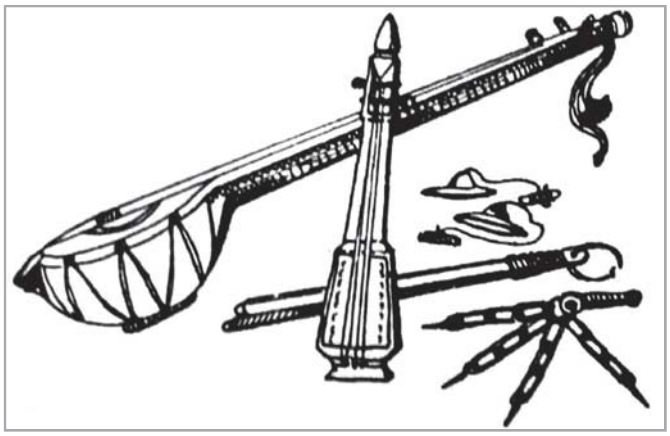

भील लोकजीवन में स्वरवाद्य तंबूर का स्थान जीवित देव जैसा है। वह नृत्य में सहायक तो होता है, उपरान्त उसके स्वर धार्मिक वारता लोकाख्यानों-लोकमहाकाव्यों में आते देवी-देवता के दर्शन गायक श्रोता दर्शक के चित्त में करवाता है। अत: साधु-वाहक तंबूर को स्थान पर से उठाते समय उसको जगाने का मंत्र बोलता है। प्रसंग की समाप्ति के बाद तंबूर को पुन: स्थापित करते समय कृतज्ञता भाव व्यक्त करने के लिए साधु श्रीफल चढ़ाता है।

आदिवासी नृत्य एवं वाद्य वैयक्तिक भावों से पर होते हैं। उनकी प्रस्तुति में सामाजिक भावना प्रबल होती है। अत: ढोल, सांग, तंबूर इत्यादि लोकवाद्य वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक-धार्मिक पर्व-प्रसंगों पर समाज की लोक संपदा माने जाते हैं। नृत्य के समय वाद्य को जो चाहे वह बजा सकता है।

शास्त्रीय नृत्यों की तरह आदिवासी वाद्यों और नृत्यों के भी अपने नियम होते हैं। धूळा के पाट (महामार्गी पाट) जैसे शुद्ध चोखे धार्मिक अनुष्ठान के प्रसंग पर तंबूर-नृत्य ही किया जाता है। ढोल-नृत्य या सांग-नृत्य का निषेध होता है।

लोकवाद्य विषयक प्राचीन कथाएँ

ढोल और बाँसुरी की उत्पत्ति कथा:

लोकवाद्य के संबंध में भील समाज में परंपरित रूप में विविध पुराकथाएँ प्रचलित हैं। ऐसी कथाओं में संबंधित वाद्य-नृत्य की उत्पत्ति का इतिहास समाहित है। ऐसे वाद्य ऋतुचक्र एवं जीवनचक्रानुसार आनेवाले उत्सवों के अवसर पर होनेवाले नृत्य से जुड़े हुए होते हैं। ढोल और बाँसुरी की उत्पत्ति की कथा निम्नांकित है : द्वितीय जल प्रलय के पश्चात् देवियावाला में नौ लाख देवियों को अपने कार्यों को युगों-युगों तक निशानी के रूप में रखने की अभिलाषा जागृत हुई । इससे दूधिये देवालय में देवी अंबा (अंबाव) और भगवान (खांमद) के सांनिध्य में एक सभा आयोजित की। इस सभा में पृथ्वी पर नोरता खेलना (मनाना) तय किया गया। अतुल साहस के साथ देवियों ने पातालवासी वासुकीनाग (वासंग नाग) के मुख में निहित सिंदूरवर्णा बरगद (एंदुआ वड) के और हरे बाँस के बीज प्राप्त किए। दूध-दही से सींचकर बाँस और बरगद को

विकसित किया। बरगद की छाया में बास के डंडे पर ध्वजा चढ़ा कर नोरता में नाचने की शुरूआत की परंतु नौ लाख देवियों को नोरता में नाचने का आनंद नहीं आता था। नृत्य के ठेके भी समुचित रूप में नहीं लिए जाते थे। अतः देवियाँ मेरु-सुमेरु (मेर-सीमेर) पर्वत पर गईं। मेरु-सुमेरु पर भोला भील इसलिए ढोल बजा रहा था कि साही (शाहुड़ियाँ) उसके वन्य धान्य को न खा जाएँ। नौ लाख देवियों ने भोले भील को ढोल बजाने के लिए नोरता के उत्सव में शामिल किया। नोरता खेलने में और अधिक आनंद आए, इसके लिए बाँस से बाँसुरी बनाई। गणेश (बूटियो-बूटो) के नेतृत्व में नौ लाख देवियों ने स्वर्ण वस्त्रों में ढोल-बाँसुरी की संगत में नौ दिन इस पृथ्वी पर नोरता खेला। भील समाज में ऐसी धार्मिक आस्था प्रचलित है कि उस समय से इस पृथ्वी पर नोरता के पर्व में ढोल और बाँसुरी अस्तित्व में आए ।

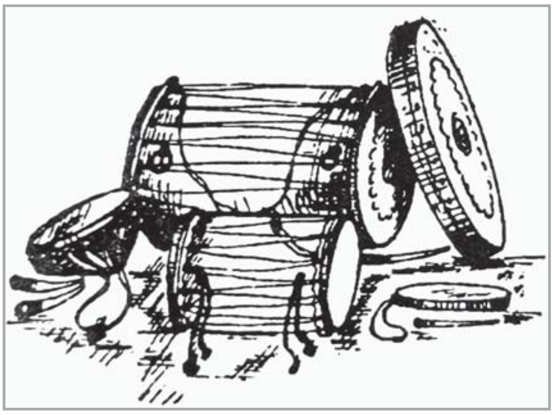

आरंभ में आदिवासी लोकविद्या का उद्भव जीवन को बनाए रखने वाली प्रवृत्तियों से हुआ है। इस तरह की मान्यता भील समाज में प्रचलित है कि बोए हुए बीज जीव-जन्तु खा न जाएँ, इसलिए उन्हें भगाने के लिए चर्म ताल वाद्य ढोल की रचना भोला भील नामक व्यक्ति ने की। अमरत्व और आनंद प्राप्त करना मानव की मूलभूत वृत्तियाँ हैं। अतः यह कथा अनंत काल तक प्रवर्तित रहे, इसके लिए उसे नाट्य-नृत्य रूप देकर नोरता के उत्सव के साथ जोड़ दिया गया। नाचने में थिरकन और आनंद प्राप्ति हेतु स्वर वाद्य बाँसुरी की रचना की गई। इस प्राचीन कथा को दैनंदिन व्यवहार में लाने और क्रियान्वित करने के लिए बीमारी दूर करने के मंत्र का रूप दिया गया है।

कोराया (घोडालिया) की उत्पत्ति कथा :

राधा कृष्ण से रूठ गईं। कृष्ण ने राधा को मनाने के लिए अनेक प्रयत्न किए पर राधा प्रसन्न नहीं हुईं तो नहीं हुईं ! अंततः श्रीकृष्ण ने बाँस की फच्चट (पट्टी) से राधा कोमल अंग के आकार का एक 'कोरायुं' (घोडालिया) नाम का वाद्य बनाया। राधा के सम्मुख आकर कृष्ण ने कोरायुं को अपने ओठों पर रखकर बजाया। इस तरह, कृष्ण के इस विशिष्ट प्रकार के नाटक को देखकर राधा हँस गईं और प्रसन्न हो गईं। इस कोराया से तरुण लड़के गोठिया (प्रेमी) विषयक प्रणय गीतों को स्वरों में आबद्ध करते हैं। इन स्वरों की ओर प्रेमिका आकर्षित होती है तथा संकेत स्थल पर आती है। ये सस्वर गीत ही दोनों के एकांत में भोगे हुए पूर्वराग के भावों को श्रृंगार रस से आपूरित करते हैं।

शंख और झालर की उत्पत्ति कथा :

सालोर देवी (पाताल से आई हुई दैवी गाय) की सहायता से डोळीराण के लेंबदे राणा को मारकर देवनारायण ने अपने पूर्वजों 'गुजोरो' का बदला लिया। अंत में गुजरो की मरणोत्तर क्रिया नाथद्वारा में की गई। इस समय पाताल से हखो (शंख) दानव को (दाणव) बुलाया गया। उस समय शंख बजने लगा । एकत्रित हुए लोगों ने उसकी संगति में झालर बजाई। इस तरह शंख और झालर अस्तित्व में आए। मरणोत्तर क्रिया करने के पश्चात् देवनारायण देव हुए और देवता के रूप में देवरां के मंदिर में प्रस्थापित हुए ।

शंख और झालर धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर किए जाने वाले विधि-विधानों में बजाए जाने वाले तँबूरे एवं सांग जैसे प्रमुख स्वर एवं ताल वाद्यों के सहायक सुषिर एवं ताल वाद्य हैं। घूळा के पाट या महामार्गी विशुद्ध पाट में तथा देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित करने के अवसर पर भील साधु तंबूरे के भजन के आरंभ में शंख और झालर बजाता है। कोबरिया ठाकोर के अशुद्ध धार्मिक अनुष्ठान के साथ मूर्तियों की स्थापना के प्रसंग पर किए जाने वाले सांगो के भजनों के गायन के आरंभ में भोपा (ओझा) शंख और झालर बजाता है। अतः एक विशेषधार्मिक वातावरण सृजित होता और श्रोता दर्शक- भावक देवी देवता के चरित्रों के साथ ओत प्रोत होने लगते है। अस्तु।

लेखक: वरिष्ठ साहित्यकार लोक अध्येता हैं।
संपर्क: 304, मिथिला अपार्टमेंट, सविता एन्क्लेव के सामने जजिस बंगला, चार रास्ता, वोड़कदेव अहमदाबाद- 380015 मो. 9428109579

कला समय: बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

कला समय के इस रचनात्मक अनुष्ठान में आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए जीवनदायी संजीवनी होगी।

जनजातीय लोक संगीत में वाद्य

डॉ. महेश चन्द्र शांडिल्य

जनजातीय समाज और लोक समाज के संगीत गायन और नृत्यों की संगति लिये वाद्यों का बहुत महत्व है। लोक जीवन में संगीत गायन-वादन और नृत्यों में वाद्यों का गहन सामीप्य है। गायन और नृत्य में ताल के लिए वाद्यों का प्रमुख स्थान रहा है। पौराणिक गाथाओं, लोकगीतों और जनजातीय गीतों में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में पाते हैं। शिवजी डमरू बजाते थे, जो आज तक लोक वाद्य बना हुआ है। इसका उपयोग नेपाल तथा उसके तराई क्षेत्र के छाऊ जीवन में मिलता है। विष्णु के हाथ में शंख मिलता है, जिसे बजाकर विष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया था। कृष्ण के हाथ में वंशी का होना भी जीवन में वाद्यों की व्यापकता का द्योतक है। है। रामायण काल में रावण संगीतज्ञ था। यह प्रसिद्ध है कि वह शिव जी के नृत्य के समय मृदंग बजाया करता था। किंवदन्ती है कि, ब्रह्मा जी ने त्रिपुर राक्षस के रक्त से मिट्टी सान कर तथा उसी के चमड़े से मढ़ कर 'ढोल' वाद्य की रचना की थी।

उपर्युक्त तथ्यात्मक बातों से जीवन में वाद्यों की व्यापकता स्पष्ट होती है। जनजातीय लोक जीवन में आनन्द और उत्साह बढ़ाने में वाद्यों का प्राचीन-काल से प्रयोग होता आया है। नृत्य और गीत दोनों ही वाद्यों के आश्रित है। लोक जीवन में इन कलाओं को सुरक्षित रखने में वाद्यों ने समुचित सहायता दी है। साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि, इन सभी वाद्यों का उद्भव जनजातीय लोक जीवन से हुआ है। क्योंकि आज भी वाद्य, संगीत के एक अभिन्न अंग के रूप में जनजातीय लोक जीवन में मिलते हैं। गाँव के नन्हें-नन्हें बालक आज भी आम की गुठली घिसकर पपीहरा बनाकर प्रयोग करते हैं, अथवा जामुन के पत्तों को मोड़कर मन बहलाने के लिए पुंगी जैसा अपना बाजा तैयार कर लेते हैं। पंडित जन अपनी पूजा में शंख और घड़ियाल का बजाना नहीं भूलते। वृद्ध जन, कीर्तन के समय ढोलक, मृदंग, झाँझ, मंजीरा, झींका, खंजरी, करताल अवश्य ही बजाते हैं। इन जनजातीय और लोक वाद्यों ने, हमारे जीवन की साधना और भारी पक्ष को सदैव बल दिया है। मीरा भी नाची तो पैरों में घुँघरु बांधना नहीं भूली। यक्ष और किन्नरों को नृत्य, वाद्य एवं गीत में प्रवीण होने के कारण ही हम उन्हें देव-योनि का मानते आ रहे हैं।

हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत शास्त्रों में संगीतज्ञ विद्वानों ने वाद्यों को चार भागों भागों में विभाजित किया है, यथा चर्म से मड़ित चर्म वाद्यों को 'अवनद्ध वाद्य', तार-वाद्यों को 'तन्तु वाद्य', हवा या फूंक से बजाये जाने वाले वाद्यों को 'सुषिर वाद्य' वाद्य और 'संगीत-गायन, नृत्य आदि में संगत के लिये बजाये जाने वाले वाद्यों को ''घन वाद्यों' की श्रेणी में रखा गया है।

1. अवनद्ध वाद्य (चर्म से मड़ित वाद्य)

ढोल, ढोलक, माँदल, माँदर, टिमकी, मृदंग, ढाँक, डमरू, ढफली, ढफ, नगाड़ा, नगडिया, कुण्डी, सींग बाजा, गुदुम बाजा, दमऊ, गड़वा बाजा, माँदरी, डोल, कुण्डीर, पेन डोल, ढोलकी, दमामा, हुडुक, घेरा आदि ।

2. तन्तु या तार वाद्य

तम्बूरा, तुम्बा, तुमा, चिकारा, चिकारी, बाना, तुनतुना, रैंकड़ी, रावण हत्था, किन्दरी, किनरी या किन्नरी, एकतारा, सारंगी, तोनक्या, चौतारा, कमायचा, सरिन्दा आदि ।

3. सुषिर वाद्य

मोहरी, सेनाई, शहनाई, वंशी, मुरली, पावी या पवई, फेफरया, अलगोझा, रमतुला, टुटाडी, भुगडू, तोड़ी, बीन, सिंगी, केन्दरिया, नढ़, सुरनई, मुरला, पावरी, रणसिंहा, तुरही, तूरी।

4. घन वाद्य (संगत वाद्य)

झाँझ, मंजीरा, झींका, चिमटा, झेला, घुँघरु, थाली, खरताल, ठिसकी, चुटकी, चिटकुला, खंजरी, उजीर (लौह छड़), घण्ट, कड़ा, झाल आदि।

प्राचीन काल के वाद्य नाम

प्राचीन काल में कई वाद्य प्रकाश में आये, जिनका विकसित रूप और नाम इस प्रकार हैं।

वाद्य का नाम	विकसित रूप
दुन्दुभि, भू-दुन्दुभि	नगाडा
पुष्कर	पखावज या तबला
पटह	ढोलक
दर्दुर	घट
झल्लरी, भाण, करचक्र	खंजरी, चंग, ढफ
आनक	नक्कारा, नगारा
मुड्डुक	छोटे प्रकार का हुडुक्का
डिमडिम	डमरू का छोटा रूप
डक्का, ढक्कुलि.	हुडुक्का जाति का वाद्य
षडस	डमरू जैसा वाद्य
आडम्बर	ढोल जैसा वाद्य
भेरी	मृदंग के सदृश वाद्य

(स्रोत: राग शास्त्र)

भारतीय वाद्यों के इतिहास की जानकारी हमें अपने पुराण-शास्त्रों, संगीत के प्राचीन ग्रंथों, नाट्य-शास्त्र के अलावा भारत के मंदिरों, स्थापत्य कला मे भी मिलता है। भारतीय संगीत वाद्यो की जानकारी हमें हड़प्पा तथा मोहन जोदड़ों के उत्खननों वेदों तथा वाल्मिकी रामायण, महाभारत, बौद्ध एवं जैन-ग्रंथों, पुराणों और स्थापत्य में अंकित मूर्तियों, यथा साँची के तोरण, भरहुत, अजन्ता अमरावती और राजस्थान के मंदिरों में अंकित प्रस्तर की मूर्तियों, फलकों द्वारा प्राप्त होती है। इसके अलावा भरतकालीन संगीत वाद्यों पर नाट्य-शास्त्र में विशद् विवेचन किया गया है। विशेषत: ताल वाद्यों का इतिहास हमें इस प्रकार प्राप्त होता है।

हड़प्पा में उपलब्ध एक फलक में एक पुरुष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। एक अन्य फलक में ढोलक जैसा वाद्य मृण्मयी मूर्ति की गर्दन से लटकता हुआ दिखाया गया है। इन दोनों फलकों पर वाद्यों के अंकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि सिन्धु सभ्यता में जो कि ईसा पूर्व पाँच हजार से तीन हजार तक की मानी जाती है, में ताल-वाद्यों का प्रयोग होता था। उस काल में नृत्य-गीतों के साथ ढोल, दुन्दुभि-जैसे वाद्यों का वादन किया जाता था।

ऋग्वेद काल में गायन की संगति के लिए वाद्यों के वादन की परम्परा के प्रमाण मिलते है। वाद्यों में दुन्दुभि, वाण, नाडी, वेणु, कर्करि, गर्गर और आघाटि आदि प्राचीन वाद्यों का उल्लेख मिलता है। दुन्दुभि की धीर-गम्भीर ध्वनि का उल्लेख अनेक बार मिलता है। आरण्यक में भी काण्ड-वीणा और भूमि दुन्दुभि के वादन का उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद में भी वीणा, वाण, दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि, शंख तथा तुणव आदि वाद्यों का उल्लेख है। इस वेद में भूमि-दुन्दुभि निर्माण की पद्धति का भी उल्लेख हमें प्राप्त होता है। भूमि दुन्दुभि निर्माण के लिए सर्वप्रथम जमीन में मिट्टी की बड़ी नांद की तरह गढ्ढा कर, उस पर बैल के रुएंदार चमड़े से आच्छादित कर चारों ओर से लकड़ी की खूंटिया लगा दी जाती थी। फिर इसका वादन, बैल की पूँछ का दण्ड बनाकर, बाल वाले हिस्से से किया जाता था। परन्तु सामान्य दुन्दुभि का निर्माण काष्ठ की मोटी लकड़ी को खोखला कर घेरा या घारा बना करके, उसके दोनों सिरों पर चमड़े से मढ़ दिया जाता था।

अथर्ववेद में उल्लेख प्राप्त होता है कि दुन्दुभि का वादन या गर्जना करके वीरों के ह्रदय में पौरुष बल का तथा शत्रुओं के ह्रदय में आंतक का संदेश देकर उन्हें परास्त किया जाता था।

महर्षि वाल्मीकि जी की रामायण में भी वाद्यों का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। महर्षि वाल्मीकि जी ने भगवान रामचन्द्र जी के जन्म और विवाह के अवसर पर देवताओं के द्वारा दुन्दुभि बजाने का उल्लेख किया है। उन्होनें अवनद्ध वाद्यों में डिमडिम, पटह, मृदंग के साथ ही मुरज और दुन्दुभि का भी अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है।

महाभारत काल में युद्ध के अवसर पर बैल चर्म से मढे अवनद्ध वाद्यों में आनक, भेरी, पटह वाद्यों का वादन सैनिकों में जोश लाने के लिए किया जाता था। अन्य मांगलिक अवसरों पर शंख, भेरी तथा पुष्कर वाद्यों का वादन किए जाने की परम्परा थी।

बौद्ध कला में वाद्य

बौद्ध काल के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि, उस काल में भेरी, मृदंग, शंख, पणव, वीणा, तंत्री, झाँझ, तबला, आदि वाद्य प्रचलित थे, जिनका प्रयोग नृत्य, गायन के साथ ही आमोद-प्रमोद के लिये तथा शोक के अवसरों पर किया जाता था। ।उस काल के ग्रंथों में कहा गया भगवान बुद्ध की ग्रंथ मालाओं और सभी वाद्य-वृन्दों के साथ नृत्य-गायन कर भगवान बौद्ध के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता था। मांगलिक अवसरों, पर्वोत्सव एवं मनोरंजन के लिये नृत्य, गान में वाद्यों का वादन, जन-जन-सामान्य में प्रचलित रहा है। उनका वर्णन जातक कथाओं और ग्रंथों मिलता है।

बौद्ध काल से संबंधित जितने भी चित्र या मूर्तियों बौद्ध कलाकृतियों में पायी जाती है। उनके इन वाद्य-वृन्दों के अवसर के अनुरूप चित्रण किया गया है। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद मध्यप्रदेश के साँची के स्तूपों, तोरण द्वार, देवता गृहों में, हुडक, झाल आदि के वादन से बौद्ध स्तुति करते दिखलाए गए हैं। सांची में कुशीनगर के महा-स्तूप के मल्लों द्वारा की जाने वाली पूजा में नरसिंहा, वीणा, मृदंग, पखावज और तबला आदि वाद्यों का वादन करते हुए, वादकों को प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार सांची में अंकित सम्राट अशोक की बोधिवृक्ष (बौद्ध गया) में स्थित स्तूप आदि की तीर्थ-यात्रा के सभी दृश्यों में शंख, वीणा, ढाँक, मृदंग, नरसिंहा और बाँसुरी बजाते हुए वादकों का दृश्य चित्रण किया गया है।

रासलीला के पद में वाद्य

लोक संगीत की सहजता और सौन्दर्य, लोकांचल की विशिष्टता है। विभिन्न अवसरों पर गीत गायन और नृत्य करने के अवसरों पर संगति के लिए कई प्रकार के वाद्यों का वादन किया जाता है। 'रासलीला' के इस दुर्लभ पद में, अनेक वाद्यों का वर्णन दृष्टव्य है।

डौरू ढोल टंडकार, डिमडिम खंजरी नगार,
झाँझ मंजरि झंकार, बिगुल बीन तास ।
तूर-तूरा तम्बूरा तोरही, तरंग नसतरंग जलतरंग,
बीन रसबीन फूँकबीन, प्यान पखावज मृदंग,
मुरलि मुँहनाल ताल करताल, तबला, तोम्बी।
मुहरी, शहनाई, सितार, सुरबहार, सुरसिंगार सीठी,
सरोद, सारंगी, सरंदा, फरियाद।
चंग मुरचंग तारा, चिकारा, घड़ौंच, घुंघरु, नफीरी।
घंट, विजयघंट घरियाल
शंख, शंखबीन, भेरी, दुंदुभि, रवाब येते-येते ।
बाज बाजे साजे, साजे सब नीके साज ।
मोद गोद ही के सब ही, नन्दलाल प्रभा पेखि,
ब्रह्मादिक नारद शारद शंकर सुर सुरेश,
शेष नाग नर किन्नर गन्धर्व, करत हिय हरष गान।

(स्रोत: संगीत शास्त्र)

जय जय आदि शक्ति अवतार

बाजे साज झाँझ पखावज और करताल,
इकतारा मंजीरा नक्कारा अरु घड़ियाल।
शंख सुनी धुन भागे भूत और यमकाल,
घंटा घंटनाद आदि वाद्य सब साज रहे,
शहनाई की आन, तान सुन लाज रहे।
सारंगी और सितार, जय जग की कर्तार।

(स्रोत: पं. विकास शुक्ल, कुकरावद (हरदा)

मुरली (भजन)

(चित्र: मनोहर काजल)

मुरली बजायी, बजायी कान्हा ने।
वृन्दावन की कुंज गलिन में,
मीठी तान सुनायी रे कान्हा।
बंशी की धुन सुन हुयी मैं बावरी,
कुंजन में चली आयी रे कान्हा ॥
बंशी की तान सुनी गोपियन ने,
उनकी सुधि-बिसराई रे कान्हा।
ऐसी तान सुनायी रे कान्हा,
अति आनंद हो छाई रे कान्हा।
ऐसी बंशी बजायी रे कान्हा ॥

(स्रोत: गिरिजा देवी, टिमरनी (हरदा)

मुरली (भजन)

जा रे छलिया, जा रे छलिया,
बाँसुरी बजा के क्यों तड़फाये छलिया।
तेरी बाँसुरी सुनन, जमुना तट पर आऊँ जाऊँ, ।
हमें देख के कदम पर चढ़ जाए छलिया।
जब तुम्हें देखकर आऊ,
वहाँ से गगरी भरकर लाऊँ,
पीछे धक्का देकर नीर, झलकाये छलिया
जमुना तट पर रास रचावे,
मीठी बाँसुरी सुनावे,
तान सुनत ही भागी-दौड़ी आऊँ छलिया।
जब हरि दरश न आये,
मोरे नैन घबराये,
तुमसे प्रीत कर के पछताई छलिया ।

(स्रोत: वासुदेव पारे, कुकरावद (हरदा)

बुन्देली वाद्य गीत

सुर कैसे सुरीले, ई वाद्य यंत्र में,
सारी सरगम समायी, बुन्देली तंत्र में ।
होवे व्याव बजे ढोल रमतूला,
ढप तासा संग में, नाच रये लूला ।
कैसी मोहनी पखावज वाद्य में।
राई दिवारी बाजे ढोलक नगड़िया,
झाँझ मंजीरा झींका नाचे छुकरिया ।
नाहर धोकनी समायी है गुणवन्त में ।
ढाँड-ढपली रखें, सबको मान है,
एकतारा-खड़ताल, गाते गुणगान हैं।
सुर सारा समाया शील-वन्त में।
रेकड़ी नगाड़ा नौटंकी में भाई,
डहरु- अलगोजा तमूरा कछुयाई,
सुर क्या सुरीले, सारंगी मृदंग में।

(स्रोत: राजूसिंह चौहान खजुराहो (छतरपुर)

निमाडी पालना गीत में वाद्य

झूलतो, झूलतो, झूलतो जाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय।
पालणा की धुन-सुन गणराया आया,
गणराया आया सँग रिद्ध-सिद्धि लाया,
देखी-देखी पालणा म ढोल बजाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय ।।
पालणा की धुन सुन ब्रह्मा जी आया,
ब्रह्मा जी आया सँग रोयनी ख लाया,
देखी-देखी पालणा म मिरदिंग बजाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय ।।
पालणा की धुन सुन विष्णु जी आया,
विष्णु जी आया सँग लक्ष्मी ख लाया,
देखी-देखी पालणा म शंख बजाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय ।।

पालणा की धुन सुन शंकर जी आया,
शंकर जी आया संग पार्वती ख लाया,
देखी-देखी पालणा म डमरू बजाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय ॥
पालणा की धुन-सुन नारद जी आया,
नारद जी आया सँग संत न ख लाया,
देखी देखी पालणा म वीणा बजाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय ॥
सोन्ना को पालणो कान्हा ख भाव,
श्याम सलोनी छवि हिरदा लुभाव,
देखी-देखी पालणा म वंशी बजाय,
कान्हा को पालणो झूलतो जाय ।।

(स्रोत: भागवती देवी खोदरे कोठडा, हरदा)

संपर्क : आई -3, राजवेद कॉलोनी, एकता पार्क के पास,
नयापुरा कोलार रोड, भोपाल म.प्र. - 462042
मो. 9893180731, 8319568216

■

आलेख

लोकमाता देवी अहिल्याबाईः सुशासन और महिला स्वावलंबन की प्रणेता

डॉ. मोहन यादव

पुण्यश्लोका देवी अहिल्याबाई होलकर की 300वीं जन्म जयंती अवसर पर शत-शत नमन...। आज भोपाल में लोकमाता देवी अहिल्याबाई महिला सशक्तिकरण महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। इसका समूचा दायित्व मातृशक्ति संभाल रही हैं। इस महिला सशक्तिकरण और स्वावलंबन महोत्सव में माननीय यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी भोपाल पधार रहे हैं। मैं मध्यप्रदेश की साढ़े आठ करोड़ जनता की ओर से प्रधानमंत्री जी का आत्मिक स्वागत करता हूं। हमारे लिये सौभाग्य की बात है कि पुण्यश्लोका देवी अहिल्याबाई होलकर जयंती समारोह को आगामी एक वर्ष तक आयोजित किये जाने का शुभारंभ आज इस अवसर पर मध्यप्रदेश की धरती से किया जा रहा है इसके लिये माननीय प्रधानमंत्री जी का ह्दय से धन्यवाद।

देवी अहिल्याबाई होलकर ने परिपूर्ण सुशासन व्यवस्था, स्वावलंबी, आत्मनिर्भर समरस समाज, सुरक्षित समृद्ध राज्य का एक आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक लगभग 130 विखंडित मंदिरों का जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण किया। नदियों पर घाट, धर्मशालाएं बनवाईं, अन्न सत्र प्रारंभ किये और पूजा-पाठ की स्थाई व्यवस्था की। देशभर में सांस्कृतिक गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा की और देश को एक सूत्र में पिरोया। उनका शासनकाल, स्वर्ण काल होने के साथ राष्ट्र के सांस्कृतिक अभ्युदय का समय रहा है।

लोकमाता देवी अहिल्याबाई ने महिलाओं के स्वावलंबन और सशक्तिकरण के लिए अभूतपूर्व कार्य किये। एक तरफ उन्होंने महिलाओं की सैनिक टुकड़ी बनाकर सुरक्षा की चौकस व्यवस्था की। वहीं, दूसरी ओर महिलाओं के सामाजिक सम्मान और आत्मनिर्भरता के लिए क्रांतिकारी निर्णय लिये। उन्होंने महिलाओं को संपत्ति में अधिकार, विधवा को दत्तक पुत्र लेने का अधिकार तथा विधवा पुनर्विवाह के अधिकार प्रदान किये और दहेज प्रथा पर रोक लगाने के नियम बनाये। सेना में बलिदान हुए सैनिकों की पत्नियों के लिये महेश्वर में महेश्वरी साड़ी उद्योग की स्थापना की और महिला समृद्धि का विश्व में कीर्तिमान स्थापित किया। उनके राज्य में होलकर राज्य सुराज, स्वराज, सुशासन, सुव्यवस्था, संपन्नता, विकास और निर्माण का आदर्श रहा। उन्होंने महेश्वर को शिल्प, कला, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, उद्योग और व्यापार का केन्द्र बनाया और देशभर में विस्तारित किया।

उनके शासनकाल में होलकर राज्य प्रभावी सूचना तंत्र, पंचायती राज, न्यायालय, सुरक्षा की चौकस व्यवस्था, सशक्त सेना के साथ ग्रामीण तथा नगरीय नियोजन का उदाहरण बन गया। जीवनभर वे भगवान शिव और समाज के लिए समर्पित रहीं। समाज निर्माण और महिला सशक्तिकरण के लिए अहिल्याबाई होलकर ने जो कार्य किये, वे हमारी विरासत का गौरवपूर्ण हिस्सा हैं।

मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि मध्यप्रदेश सरकार देवी अहिल्याबाई होलकर के त्रि-शती जयंती वर्ष को समारोह पूर्वक आयोजित कर रही है। शौर्य् और पराक्रम की प्रतीक लोकमाता अहिल्याबाई को समर्पित करते हुए विजयादशमी के त्योहार पर प्रदेश भर में शस्त्र पूजन कार्यक्रम आयोजित किया गया। मध्यप्रदेश में उनके जीवन, कृतित्व और व्यक्तित्व पर आधारित विविध कार्यक्रम संपन्न हुए। इसमें कार्यशालाएं, व्याख्यान, संगोष्ठियां, नाट्य, महानाट्य प्रस्तुति आदि के श्रृंखलाबद्ध आयोजन हुए। हमने प्रयास किया कि बौद्धिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से देवी अहिल्याबाई के कार्य, विचार और आदर्श समाज के बीच पहुंचे। अहिल्याबाई के व्यक्तित्व निर्माण, परिवार समन्वय, पर्यावरण संरक्षण, समाज निर्माण और राष्ट्र निर्माण के सूत्र समाज के सामने लाये गये।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भारत को विश्व में सबसे समृद्ध और सशक्त राष्ट्र बनाने के लिये विकास के साथ विरासत का सूत्र दिया है। प्रधानमंत्री जी के इस सूत्र के अनुरूप ही हमने अपनी विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रदेश की गौरवशाली विरासत को सहेजने और आदर्श महानायकों के व्यक्तित्व से समाज को प्रेरित करने का अभियान चलाया।

प्रदेश के समग्र विकास को ध्यान में रखते हुए हमने डेस्टिनेशन कैबिनेट की ऐतिहासिक पहल की है। यह पहल प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी

की पर्यटन को बढ़ावा देने की अवधारणा को धरातल पर साकार करती है। आधुनिक विकास के साथ अपनी गौरवशाली विरासत का स्मरण और आदर्श महानायकों से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ने के उद्देश्य से हमने लोकमाता अहिल्याबाई होलकर की स्मृति में दो कैबिनेट बैठकें कीं। पहली बैठक 24 जनवरी 2025 को महेश्वर के किले में और दूसरी बैठक 20 मई 2025 को इंदौर के राजवाड़ा में संपन्न हुई। पहली बैठक में प्रदेश के 19 पवित्र स्थलों में शराब बंदी लागू करने का निर्णय लिया। इस निर्णय से धार्मिक स्थलों की पवित्रता बनाये रखने के साथ महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण को बल मिलेगा, वहीं दूसरी बैठक में लोकमाता देवी अहिल्याबाई होलकर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने का फैसला लिया गया है।

अहिल्याबाई होलकर ने महिला सशक्तिकरण को लेकर जो दिशा तय की थी, उसे आगे बढ़ाने का कार्य यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने किया है। हमने पुण्यश्लोका, लोकमाता अहिल्याबाई होलकर के 300वें जन्म जयंती वर्ष में प्रधानमंत्री जी के गरीब, युवा, किसान और नारी (GYAN) पर ध्यान के ध्येय मंत्र को सार्थक करने का प्रयास किया। इस मंत्र के चौथे स्तम्भ 'नारी' के समग्र विकास के लिये देवी अहिल्याबाई नारी सशक्तिकरण मिशन बनाकर कार्य आरंभ किया गया। इस मिशन से प्रदेश की नारी आत्मनिर्भर होंगी, उनके आर्थिक और सामाजिक विकास को गति मिलेगी।

मिशन के प्रमुख उद्देश्यों में महिलाओं और बालिकाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आर्थिक विकास एवं सुरक्षा, विभिन्न शासकीय सेवाओं की पहुंच सुनिश्चित करना, महिलाओं के आर्थिक स्वावलंबन के लिए प्रयास करना शामिल है। मिशन के प्रमुख लक्ष्यों में बालिका लिंगानुपात में वृद्धि, बालिका शिक्षा में वृद्धि, मातृ मृत्युदर में कमी लाना, महिला अपराधों में कमी लाना, बाल विवाह रोकना, महिला श्रमबल में वृद्धि करना आदि समाहित है।

देवी अहिल्याबाई ने महिला सशक्तिकरण, किसान कल्याण, समाज कल्याण और सुशासन की दिशा में जो मार्ग दिखाया है, मध्यप्रदेश सरकार उस पर चलकर समग्र विकास को चरितार्थ करने के लिये संकल्पित है। हमने लोकमाता देवी अहिल्याबाई के सिद्धांतों, उनके आदर्श को राज्य की नीति और निर्माण में शामिल करते हुए महिला नेतृत्व और सशक्तिकरण की दिशा में प्रभावी कदम बढ़ाए हैं।

मध्यप्रदेश में महिला सशक्तिकरण के लिये विभिन्न स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं। महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। इससे महिलाओं को रोज़गार, स्वरोज़गार, स्वास्थ्य सेवाएं और सुरक्षा के मजबूत अवसर प्राप्त हो रहे हैं। विशेषकर लाड़ली बहना योजना, देवी अहिल्याबाई होलकर मिशन, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, लाड़ली लक्ष्मी योजना से महिलाओं के जीवन में सकारात्मक बदलाव आया है। प्रदेश के सभी जिलों में वन

स्टॉप सेंटर स्थापित किये गए हैं, महिला हेल्पलाइन और चाइल्ड हेल्पलाइन से सुरक्षा प्रदान की है। महिला श्रमिकों की सुरक्षा, सुविधा और सम्मान के उद्देश्य से वूमेन एंटरप्रेन्योर डेडिकेटेड इंडस्ट्री पार्क की स्थापना की गई। महिलाओं के स्वरोज़गार और कौशल विकास के लिए एमएसएमई नीति-2025 में महिला उद्यमियों को 50 प्रतिशत तक पूंजी अनुदान का प्रावधान किया गया। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि मध्यप्रदेश को विश्व की शीर्ष टूरिज्म डेस्टिनेशन माना गया है। हमने नवाचार करते हुए सेफ टूरिज्म डेस्टिनेशन फॉर वूमेन के तहत 10 हजार महिलाओं को पर्यटन सेवाओं के लिये प्रशिक्षित किया है।

मुझे यह बताते हुए संतोष है कि मध्यप्रदेश, देश का पहला ऐसा राज्य है जिसमें शासकीय सेवाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 35 प्रतिशत कर दिया है।

प्रदेश में लाडो अभियान, शौर्या दल, मुख्यमंत्री महिला सशक्तिकरण योजना, मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। सैनिटेशन एवं हाइजीन योजना से प्रदेश की 19 लाख बालिकाओं को आर्थिक संबल दिया गया है। प्रदेश में 18 लाख से अधिक महिलाओं, विधवा, परित्यक्ता और केवल पुत्री वाली माताओं को सामाजिक सुरक्षा पेंशन प्रदान की जा रही है। प्रदेश में महिलाओं को जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सुरक्षा, सम्मान और संबल प्रदान किया जा रहा है। प्रदेश की महिलायें आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होकर नवाचार के साथ अपनी नई विकास गाथा लिख रही हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि महिलाओं की यह समृद्धि परिवार, समाज, प्रदेश और राष्ट्र को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। लोकमाता अहिल्याबाई ने महिलाओं को सबल बनाने के लिए जो प्रयास किये हैं, वो निरंतरता और प्रगति के साथ मध्यप्रदेश की धरती पर आकार लेते हुए दिखाई दे रहे हैं।

पुनश्च पुण्यश्लोका, लोकमाता देवी अहिल्याबाई होलकर को सादर नमन...।

लेखक : मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री हैं।

■

मानवता के लिए अमूल्य उपहार है 'योग'

डॉ. मोहन यादव

योग एक ऐसी दिव्य अवस्था है जब चेतना और परम चेतना का मिलन होता है। इस अवस्था को प्राप्त करने का अवसर हर जीव के पास है। योग सनातन हिन्दू धर्म और संस्कृति का सम्पूर्ण मानवता के लिए अमूल्य उपहार है।

हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के अथक प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया। साथ ही इस बात का समर्थन किया कि 'योग जीवन के सभी पहलुओं के बीच संतुलन स्थापित करने के साथ स्वास्थ्य और कल्याण के लिए समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है'। उन्होंने पूरी दुनिया में समग्र स्वास्थ्य क्रांति के नये युग का सूत्रपात किया। उपचार की जगह रोकथाम पर अब अधिक ध्यान दिया जा रहा है। आज पूरा वैश्विक समुदाय प्रधानमंत्री श्री मोदी का आभार व्यक्त कर रहा है।

हम 11वां अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मना रहे हैं। यह 'एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य के लिए योग' विषय को समर्पित है। इसका उद्देश्य मानव कल्याण और एक स्वस्थ ग्रह के बीच संबंध को बढ़ावा देना है। सीधा अर्थ है कि जब शरीर और मन स्वस्थ होता है, तो हम अपने समुदाय और पर्यावरण से बेहतर सामंजस्य रख पाते हैं, उनकी सही देख-रेख कर पाते हैं।

आज पूरे विश्व में एक अदभुत वातावरण बना है। पूरा विश्व आज योग कर रहा है। योग ने विश्व में असंख्य लोगों को सहारा दिया है। हमारे लिये यह गौरव का क्षण है। योग का विधिवत विज्ञान यहाँ सुरक्षित है। योग दर्शन की विरासत से आज पूरा विश्व समाज लाभान्वित हो रहा है। हम इस अलौकिक समय के साक्षी बन रहे हैं। हम आज गौरव और आनंद से भरे हैं। योग, धर्म, जाति और रंग की सीमाओं से परे है। अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस भारत का गौरव बढ़ाने वाला दिवस है साथ ही पूरे विश्व को परम चेतना के प्रति जागृत करने का क्रांतिकारी कदम भी है। अक्सर सवाल किया जाता है कि योग से क्या मिलता है? इसका सीधा सरल जवाब है योग से मिलती है शांति। मन और तन को सबसे ज्यादा जरूरत है शांति की। अशांत मन और अनियंत्रित तन पूरे समाज को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। योग एक ऐसा दिव्य द्वार है जो शांति की ओर खुलता है। शांति से उपजती है एकाग्रता। धर्म संसद में वेदांत दर्शन पर कालजयी व्याख्यान देने के बाद स्वामी विवेकानंद को अमेरिका में जगह जगह दर्शन पर व्याख्यान देने आमंत्रित किया गया। जब वे अमेरिकन विद्यार्थियों के बीच पहुंचे तो विद्यार्थियों ने सवाल किया कि पढ़ाई में मन नहीं लगता। स्वामी जी का जवाब था इसका एकमात्र उपाय है

एकाग्रता। यह एकाग्रता उपजती है शांत मन से। शांत मन होता है ध्यान से। शांत मन दूषित विचारों से मुक्त होता है। शांति से निर्मित होती है सकारात्मक ऊर्जा। यह ऊर्जा सभी जीवों के लिये कल्याणकारी और हितकारी होती है। शांत चित्त वाला मनुष्य कभी गलत निर्णय नहीं ले सकता। जब शरीर, मन और आत्मा एकाकार हो जायें तो अहित और अशुद्धि का सवाल कहां रह जाता है। कथा उपनिषद में योग को इंन्द्रियों पर नियंत्रण करने की विद्या कहा गया है। श्रीमद्भगवद् गीता में योग को दुख से वियोग होना कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में योग को मन के विचलन पर नियंत्रण की विधा बताया है। महर्षि अरविंद ने तो यहां तक कहा है कि संपूर्ण मानव जीवन ही एक योग है क्योंकि मनुष्य से कई चीजों का जोड़ है।

योग का उद्देश्य परम चेतना में प्रवेश पाना है। यह परम चेतना क्या है जो योग से मिलती है? यह अवस्था ऐसी अवस्था है जब मन केवल न्याय और धर्म के साथ होता है। सिर्फ दया, करूणा, मैत्री और शांति जैसे मूल्य प्रखर होते है। यह अवस्था हर मनुष्य के लिये अनिवार्य है चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या समुदाय का हो या विश्व के किसी भी कोने में रहता हो।

कल्पना करें कि जब एक साथ पूरा विश्व योग करे तो फिर भेदभाव कहां रह जाता है। मन में भौगोलिक सीमाओं का बोध समाप्त हो जाता है। फिर चाहे कोई भी देश हो पूरा विश्व एक हो जायेगा। यौगिक क्रियाओं से यदि मन एकरूप हो जायें तो चित्त की प्रसन्नता निरंतर बनी रहती है।

भारतीय परंपरा में उल्लेख है कि प्रकृति ने ही तमाम योग मुद्राएं सिखाई है। यह सच है कि योग विद्या की विरासत को लगभग विस्मृत सा कर दिया गया था। हमें सिर्फ प्रयासपूर्वक जागने की जरूरत है। योग सदा से विदयमान था। किसी भी धर्म को देखें योग के दर्शन होंगे। योग और यौगिक क्रियाएं जीवन से गहरी जुडी हैं। अब एक नई और ओजपूर्ण शुरूआत हो चुकी है। विश्व में भारत की प्रतिष्ठा स्थापित हुई है।

मैं सभी प्रदेशवासियों से आहवान करता हूँ कि वे योग को अपने जीवन का अह्म हिस्सा बनाए, जिससे तन और मन दोनों स्वस्थ रह सकें।

लेखक : मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री हैं।

जल संरक्षण का जन आंदोलन बना जल गंगा संवर्धन अभियान

'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा,पंचतत्व से बना शरीरा'

डॉ. मोहन यादव

रामचरित मानस की इस चौपाई के पंचतत्वों में से एकजल, जीवन का आधार है। हमें जीवन के अस्तित्व के लिये जल को संरक्षित करना ही होगा। इसे आने वाली पीढ़ियों के लिए बचाना जरूरी है। ऋग्वेद की ऋचाओं में जल के महत्व, विशेषताओं और संरक्षण का संकेत है। रामायण और महाभारत में प्रकृति के संरक्षण का उल्लेख है। जल संरक्षण हमारी पुरातन संस्कृति है। यह अपनी परंपरा और संस्कारों की ऐतिहासिक विरासत है जिसे हमें अगली पीढ़ी तक पहुंचाना है।

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी की विरासत से विकास की दृष्टि समग्र कल्याण के लिए है जो प्रकृति संवर्धन से लेकर विकास के हर पक्ष में समाहित है। मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी जब गुजरात के मुख्यमंत्री थे तब उन्होंने लंबे समय तक जल संरक्षण का अभियान चलाया था उन्हीं से प्रेरणा लेकर मध्यप्रदेश में हमने जल गंगा संवर्धन अभियान की संकल्पना की। इस अभियान का शुभारंभ 30 मार्च गुड़ी पड़वा, नववर्ष विक्रम संवत अवसर पर महाकाल की नगरी उज्जयिनी के शिप्रा तट से किया गया। यह अभियान जल संरक्षण, जल स्रोतों के पुनर्जीवन और जन-जागरुकता को समर्पित रहा है। जल संग्रह के कई कीर्तिमान रचने के साथ आज हम जल संरक्षण की समृद्धि का उत्सव मना रहे हैं।

मुझे यह बताते हुए प्रसन्नता है कि इस 90 दिन तक चले अभियान में पूरे प्रदेश में बड़े पैमाने पर जलसंरचनाओं पर काम हुआ है। इस अभियान में खंडवा जिले ने 1.29 लाख संरचनाओं का निर्माण किया है इस विशेष उपलब्धि के लिए खंडवा को भू-गर्भ जल भंडारण की दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने जल सुरक्षा और प्रभावी जल प्रबंधन के लिए कैच द रेन अभियान शुरूकिया। इसी से प्रेरणा से लेकर मध्यप्रदेश में जल गंगा संवर्धन अभियान के तहत वर्षा के एक-एक बूंद को सहेजने का प्रयास किया गया। प्रदेश में पहली बार वर्षा जल को सहेजने का बड़े स्तर पर अभियान चला इससे भविष्य में भू-जल की निर्भरता कम होगी और पानी की हर बूंद का उपयोग होगा।

हमने प्रधानमंत्री जी के मिशन लाइफ मंत्र को आत्मसात किया और अपनी जीवन शैली में बदलाव करके पर्यावरण रक्षा का सूत्र हाथ में लिया है। इससे जन-जन में पर्यावरण मित्र के रूप में जीवन जीने की परंपरा निर्मित हुई है। प्रदेशवासी मिशन लाइफ के अनुसार प्रकृति के साथ प्रगति पथ पर आगे बढ़ेंगे। प्रधानमंत्री जी के मार्गदर्शन में मध्यप्रदेश में पहली बार रि-यूज वाटर पोर्टल निर्मित किया जा रहा है। यह पहल प्रदेश में जल संरक्षण और पुन: उपयोग की दिशा में मील का पत्थर साबित होगा। इस तरह प्रदेश जल प्रबंधन के लिए तीन सिद्धांत री-यूज, रीड्यूज और री-साइकल पर आधारित रणनीति बनाकर काम कर रहा है।

यह हमारा सौभाग्य है कि मध्यप्रदेश की धरती प्रकृति की विपुल सम्पदा से समृद्ध है। यह मां नर्मदा, शिप्रामईया, ताप्ती और बेतवा सहित लगभग 267नदियों का मायका है। प्रदेश में पहली बार नदियों को निर्मल और अविरल बनाने के लिए 145 से अधिक नदियों के उद्गम को चिन्हित किया गया और साफ-सफाई के साथ पौधरोपण की शुरुआत हुई है। नदियों के तट पर पौधरोपण की यह पहल नदियों को उनके मायके में हरि चुनरी ओढ़ाने का प्रयास है।

प्रदेश में पहली बार जल सरंक्षण के साथ जल समृद्धि की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण की पहल की गई। इसके तहत राजाभोज ने बसाये भोपाल की ऐतिहासिक धरोहर बड़े बाग की बावड़ी को सहेजने और पुनर्जीवित करने का कार्य किया गया। मुझे यह बताते हुए खुशी है कि इस अभियान के अंतर्गत हमने 200 वर्ष पहले लोकमाता देवी अहिल्याबाई होलकर द्वारा बनाई गई होलकर कालीन बावड़ी को जीर्णोद्धार उपरांत नया स्वरूप प्रदान किया है। इस बावड़ी का लोकर्पण करते हुए मुझे यह महसूस हुआ कि हम माता अहिल्या के लोक

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

मध्य प्रदेश के लाखों लोगों के परिश्रम, समर्पण व आस्था से संचालित 'जल गंगा संवर्धन अभियान' के समापन समारोह की हार्दिक बधाई। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव जी व उनकी टीम के मार्गदर्शन में इस अभियान को जन आंदोलन बनते देखना एक सुखद अनुभूति है। खंडवा में आयोजित इस कार्यक्रम के साथ ही 'वाटरशेड सम्मेलन' का आयोजन सराहनीय है।

भारत में युग-युग से जल की वंदना होती आई है और हमारी संस्कृति में नदियों, कुओं, तालाबों और बावडियों को पूजनीय मानकर उनके संरक्षण की परम्परा रही है। इस विरासत को समृद्ध करते हुए 'जल गंगा संवर्धन अभियान' नदियों को निर्मल, अविरल और सदानीरा बनाने के लिए जन-जागरूकता की दिशा में एक प्रेरणादायी प्रयास रहा है। जन भागीदारी की शक्ति से ऊर्जित यह एक उत्कृष्ट अभियान बना जिसमें मध्य प्रदेश के सामर्थ्यवान व प्रकृति प्रेमी साथियों का योगदान प्रशंसनीय रहा है। जल संग्रहण संरचनाओं के निर्माण में खंडवा की उपलब्धि लोगों को प्रेरित करेगी।

पर्यावरण के साथ जुड़ाव और भावी पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ व सुंदर धरा सुनिश्चित करने का हमारा संकल्प जन-जन के भागीरथ प्रयासों से ही संभव हो पाएगा। इस कड़ी में 'वाटरशेड सम्मेलन' का आयोजन जल संरक्षण के क्षेत्र में विभिन्न हितधारकों के अनुभव साझा करने और हर स्तर पर जल प्रबंधन की रणनीतियों को सशक्त करने का माध्यम बनेगा।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'एक पेड़ मां के नाम' कार्यक्रम के अंतर्गत मध्य प्रदेश में तीस हज़ार एकड़ से अधिक भूमि पर फलोद्यान विकसित करने की जो योजना है। यह मातृभक्ति, पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक सशक्तिकरण को एक साथ जोड़ने वाली सराहनीय पहल है। यह कार्यक्रम नदियों के किनारे हरियाली बढ़ाने और भू-जल स्तर सुधारने में सहायक सिद्ध होगा।

पिछले एक दशक में हमारी विभिन्न योजनाओं व निर्णयों में जल संरक्षण से जुड़े पहलुओं को अभूतपूर्व प्राथमिकता दी गई है। नमामि गंगे मिशन हो, केन-बेतवा लिंक परियोजना हो या नर्मदा-शिप्रा पुनर्जीवन की पहल, हम जल संरक्षण व पर्यावरण को सुरक्षित करने के लिए कृतसंकल्पित हैं। जल संरक्षण आज हमारी सामाजिक और आर्थिक जरूरत भी है, क्योंकि जल संरक्षित रहेगा तो हमारे किसान खुशहाल रहेंगे, उद्योग चलेंगे और सभी प्राणियों का जीवन सुरक्षित रहेगा।

अमृत काल में एक भव्य व विकसित भारत के निर्माण की ओर अग्रसर हमारे प्रयासों को देश की सामूहिकता की शक्ति एक नई ऊंचाई देगी। मुझे विश्वास है कि वर्षा ऋतु में जल संरक्षण व वृक्षारोपण के लिए देशवासियों के प्रयास देश की उन्नति में सहायक सिद्ध होंगे।

इस अवसर पर मैं सभी हितधारकों, जलदूतों, स्व-सहायता समूह की महिलाओं, किसान साथियों और जल संरक्षण व वृक्षारोपण कार्य से जुड़े सभी लोगों को शुभकामनाएं देता हूं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
आषाढ़ 07, शक संवत् 1947
28 जून 2025

कल्याण के युग में पहुंच गये हैं। बावड़ियां हमारे पूर्वजों की अमूल्य धरोहर हैं, इसे अगली पीढ़ी तक पहुंचाने के लिये प्रदेश भर में दो हजार से अधिक बावड़ियों को पुनर्जीवित करते हुए बावड़ी उत्सव मनाया गया।

माननीय प्रधानमंत्री जी ने हमारी युवा शक्ति को जल सैनिक बनाने का आह्वान किया था। इस अभियान में, मध्यप्रदेश में पहली बार 2.30 लाख जल दूत बनाये गये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पानी बचाने के लिए यह अमृत मित्र भविष्य में जल सुरक्षा के अग्रदूत बनेंगे।

प्रदेश में पहली बार डेढ़ लाख से अधिक कृषकों ने सभी विकासखंडों में 812 पानी चौपाल का आयोजन किया। इसमें किसानों ने अपने गांव के खेतों, जल स्रोतों के संरक्षण, संवर्धन और पुरानी जल संरचनाओं के जीर्णोद्धार पर विचार विमर्श किया।

प्रदेश में पहली बार खेत का पानी खेत में, गांव का पानी गांव में रोकने के लिए खेत तालाबों का चयन सिपरी सॉफ्टवेयर से किया गया। अभियान में 83 हजार से अधिक बनने वाले खेत-तालाबों से प्रदेश के अन्नदाता में नई उम्मीद जागी है। अब वे अपने खेत में एक नहीं कई फसलें ले सकते हैं। खेत तालाब के अलावा अमृत सरोवर और डगवेल रिचार्ज बनाने में भी सिपरी सॉफ्टवेयर, एआई और प्लानर सॉफ्टवेयर जैसी तकनीक का उपयोग किया गया है। इस तकनीक से निर्धारित लक्ष्य को समय रहते प्राप्त करने में आसानी हुई है और गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इसके लिए नियमित जानकारी प्राप्त करने के लिए डेशबोर्ड डाटा को एआई के माध्यम के उपयोग से अभियान की प्रगति में सुधार और गति दी गई।

इस अभियान में प्रदेश के नगर-नगर और गांव-गांव में जल स्रोतों को शुद्ध और उपयोगी बनाने का कार्य चला, अनेक पोखर और बावड़ियों को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। यह सरकार और समाज का संयुक्त प्रयास है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पानी की बूंद-बूंद सहेजने का जो प्रयत्न किया गया है वह हमारे किसान भाईयों के लिए पारस पत्थर का काम करेगा। सूखे खेत हरे-भरे होंगे, सुनहरी फसलें लहलहायेंगी। हमारा किसान समृद्ध होगा और मध्यप्रदेश की धरती समृद्ध होगी।

वर्षा के जल को संग्रहित करने और पुराने जल स्रोतों के जीर्णोद्धारके लिए यह अभियान चलाया गया। इस अभियान की सफलता का सबसे बड़ा आधार है जनभागीदारी। सरकार,शासन-प्रशासन, समाजसेवी और प्रदेश के आमजन ने इस अभियान में सहभागिता निभाई है।जल गंगा संवर्धन अभियान के बाद अब पौधरोपण का व्यापक अभियान चलाया जायेगा।

मुझे खुशी है कि जल गंगा संवर्धन अभियान शासन के साथ जनता के लिए, जनता का अभियान बन गया है। इस अभियान ने जनआंदोलन का स्वरूप ले लिया है। प्रदेश ने यह प्रमाणित किया है कि यदि सरकार और जनता मिलकर कार्य करेंतो कोई भी लक्ष्य असंभव नहीं। किसानों, महिलाओं, युवाओं और विद्यार्थियों ने जल संरक्षण को जीवन का मंत्र बना लिया है। इससे समाज में जल संरक्षण का भाव और भागीदारी का मानस विकसित हुआ है। इस अभियान ने हम सभी के मन को एक नये संकल्प और ऊर्जा से भर दिया है। यह अभियान केवल जल संरक्षण का कार्य नहीं है, बल्कि हमारी संस्कृति, परंपरा और भविष्य की सुरक्षा का वह सूत्र है, जिससे प्रदेश की समृद्धि जुड़ी है।

अद्भिः सर्वाणि भूतानि जीवन्ति प्रभवन्ति च।

महाभारत के शांति पर्व का यह श्लोक जल के महत्व और जीवन में इसकी भूमिका को दर्शाता है।

मैं प्रदेश की साढ़े आठ करोड़ जनता से पानी की बूंद-बूंद बचाने और जल समृद्ध राज्य बनाने का आह्वान करता हूं।

आईये, हम सब मिलकर पानी की हर बूंद बचाने का संकल्प लें, जल संरक्षण और संवर्धन के कार्य को आगे बढ़ायें। मुझे उम्मीद है कि जल गंगा संवर्धन अभियान प्रदेश में जल की प्रचुर उपलब्धता और भावी पीढ़ियों के लिए जल सुरक्षा सुनिश्चित करने में मील का पत्थर साबित होगी।

लेखक : मध्यप्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री हैं।

आलेख

लोक वाद्य 'रूँजा' में चैतन्य ब्रह्म

डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला

सारांश -'रूँजा' भौतिक आकार में जड़ जरूर है पर ध्वनि विन्यास में अति चैतन्य - अनादि, अखिल ब्रह्म स्वरूप। इसलिए प्रकृति ने इसे निर्माण प्रक्रिया में लास्य (कोमलता) और लालित्य से संयमित किया है तथापि चाँटी और थाप की गमक और धमक में चैतन्य ब्रह्म 'राम' का उच्चार है,'रसो वै स:' की प्रतिध्वनि है। शिव ब्रह्माण्ड के प्रथम नर्तक हैं और 'डमरू' उनका प्रथम वाद्य। इसी को प्रतीक मानकर आदिम/लोक वाद्य निर्माता 'रूँजा' का स्वरूप स्वीकार किए हैं जो अन्यल चर्म वाद्य संस्कृति से विशिष्ट व भिन्न है। इसलिए इससे निकलने वाली ध्वनि 'ओऽम शिव और राम-सिया' का विवर्तन करती है। इस तरह धरती-प्रकृति के प्रत्येक वाद्य शिव की आराधना में विन्यस्त हैं।'रूँजा' उसी की प्रतिध्वनि है, प्रतीक है, प्रतिबिंब है। अत: लोक वाद्य 'रूँजा' चैतन्य ब्रह्म का पर्याय है, जिसमें राम' हैं, शिव हैं।

भौगोलिक परिस्थिति और सांस्कृतिक सौन्दर्य किसी भी अंचल की विशिष्टता होती है, उसी विन्यास में लोक वाद्य अपने-अपने अनूठेपन में वैभिन्यता लिए होते हैं यानि हरेक अंचल के अपने वाद्य होते हैं और स्वरूप-संरचना में संस्कृति साध्य। विनिर्मिति की विशिष्टता वाद्यों के साज और आवाज निहित हैं क्योंकि ये लोक परम्पराओं के विशिष्ट अंग हैं। लोक संस्कृति के अध्येता वंसत निरगुणे जी कहते हैं -' 'संसार का कोई भी कोना ऐसा नहीं है, जहाँ कोई गीत न गाया जाता हो, जहाँ वाद्य न बजाया जाता हो। स्वर, गीत और वाद्य मिलकर संगीत की रचना करते हैं। स्वर की संगति में जिनकी निर्विवाद सहभागिता रही हो, वे वाद्य ही हैं क्योंकि वाद्यों की उत्पत्ति शिव और पार्वती के तांडव और लास्य नृत्य के कारण हुई है। इसलिए वाद्य नृत्य और गीत की परिपूरकता के लिए आविष्कृत हो लोक अनुरंजना के कारक बने। अतएव अध्ययन की दृष्टि से लोक वाद्य को तीन आयाम कला-विन्यास, सामग्री-व्यवहार और स्वर-लालित्य में विभक्त किया गया है जिससे उसके ध्वनि विन्यास में चैतन्य ब्रह्म का स्वर सुनाई देता प्रतीत होगा, यथा-

1. कला-विन्यास -

'रूँजा' एक प्रकार से चर्म वाद्य है जो ढोल, ढोलक, मृदंग, चंग, डफ, खंजड़ी, टिमकी, नगाड़ा, मांदर आदि की तरह निर्मित होता है। दूसरा, यह ताल वाद्य है जिसे बाँस की कोकनी और कमची के क्रमश: घर्षण व प्रहार से बजाते हैं। ऐसा माना जाता है कि इसका निर्माण परम्परा से एक जाति विशेष करती आई है यानि वे ही इस वाद्य का निर्माता और वादक रहे हैं। दृष्टांत स्वरूप उल्लेखनीय है कि शिव ब्रह्माण्ड के प्रथम नर्तक हैं और 'डमरू' उनका प्रथम वाद्य। इसी को प्रतीक मानकर आदिम/लोक वाद्य निर्माता 'रूँजा' का स्वरूप स्वीकार किए हैं। इसलिए इससे निकलने वाली ध्वनि 'ओऽम शिव और राम-सिया' का विवर्तन करती है। फलत आज भी इस वाद्य के सामग्री उत्पादक सिवनी जिला के मृत्तिका शिल्पी एवं चर्मशिल्पी हैं और वंशकार समुदाय निर्माता एवं वादक। जैसे ग्राम बोथिया, पोस्ट-डोभ, तहसील केवलारी, जिला सिवनी के चर्म सामग्री तथा ग्राम उगली खुरसरा जिला सिवनी के मृत्तिका सामग्री के उत्पादक हैं। अन्य आवश्यक सामग्री का संकलन, संग्रहण, वाद्य स्वरूप में आकार देने का कार्यग्राम-चौरापाठा, पोस्ट -गंगाटोला, तहसील-केवलारी, जिला-सिवनी म.प्र. के स्व. श्री शोभेलाल वंशकार एवं उनके पूर्वज तथा वर्तमान में श्री सुक्कू वंशकार, श्री महावीर वंशकार ग्राम चौरापाठा एवं राजू वंशकार ग्राम कातोली, पोस्टर पांडिवाड़ा, तह-केवलारी, जिला सिवनी म.प्र. करते हैं।

यह 'रूँजा' बुन्देलखंड के सिवनी, मंडला, बालाघाट आदि जिलों का अलौकिक, आध्यत्मिक और आदिम वाद्य है जिसे स्थानीय भाषा में बाजा कहते हैं। बनावटी संरचना में देखने में जितना साधारण उतना ही अपनी गमक-धमक में असाधारण है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भजन-भाव का विपर्यय है लोक वाद्य रूँजा। इसलिए लोक अपनी

परम्पराओं में पूर्ण अनुरंजना के साथ-साथ भक्ति और शक्ति की साधना के लिए बजवाता है अथवा बजाया जाता है, साधा जाता है। इसकी विशिष्टि सुर और साज में है इसलिए प्रकृति से लेकर धरती के नियामक तक की गहरी अनुभूति का कारक है क्योंकि यह 'प्रकृति और प्रवृत्ति में सर्वथा लोक व्यवहारों का आदर्श है। लोक ही इसकी साज और आवाज है। जो सच्चा लोक का साधक होगा वही इसकी आवाज को पहचान सकता है वरना बाजा की भौतिकता में उलझा रहेगा।

इसकी विशिष्टताएँ-

- प्रकृति और प्रवृत्तिपरक है
- गीत और नृत्य का प्रतिपूरक है।
- शिल्पर और संस्कृति का संवाहक है
- प्रकृति और पुरुष का साधक है।
- शिव और शक्ति का गायक/आराधक है।
- आदिम वाद्य है।
- पूजा भाव है।

2. सामग्री-व्यवहार-

जैसे शिव, सत्य और सुन्दर है वैसे ही इसमें प्रयुक्त सामग्री का व्यवहार प्रकृत अनुशासनों से मर्यादित है। सभी सामग्री धरती-माटी,हवा-पानी और गंध-गमक से संव्यवहृत है इसलिए इस सामग्री को शिव सामग्री भी कह सकते हैं।

आवश्यमक सामग्री -

- मिट्टी का पेना
- गाय-बैलका पुटकसा
- बाँस की कमची
- बाँस की चामटी एवं कोकनी
- शरदा (सूत की रस्सी)
- भिलमा
- कंडे की राख,एवं
- मिट्टी का दीया।

मिट्टी का पेना - इसे मृत्तिका शिल्पी (कुम्हार) मिट्टी से दो तरफ खुले भाग का समान आकार वाला बनाता है तथा बीच में लगभग दो इंच का छेद रहता है। इसे बनाकर भट्टा में पकाया जाता है। दिखने में लाल या काला होता है मगर स्वर लालित्य में शिवत्व का प्रति पाद्य।

भिलमा- यह प्रकृति का रहस्यमयी वृक्ष है जिसका पत्ता, फूल, फल सब शिव की शाश्वतता के प्रतिपादक हैं, प्रमाण हैं। इसके पत्ते हरे होते हैं किन्तु फूल हरे से पीले फिर लाल तथा बीज हरे से काले हो जाते हैं। इतना वैशिष्ट्य लिए यह बीज अपनी शिष्टता में ऐसे तेल से समादृत होता है जिसके एक टिपकी लगाने से शरीर की वात(शीत) संबंधी समस्या समाप्त हो जाती है। इसी भाँति जब रूँजा के थाप वाले भाग में इस तेल को अधिकता से प्रयोग करते हैं तब वह चिपचिपा-सा होने लगता है और वाद्य कोकनी या घोरनी के घर्षण से ओम शिव का स्वर निनादित करता हुआ प्रकृति में गुँजायमान होने लगता है।

बाँस- इसी की बलगी से कोण, कमची, चामटी और घोरनी(कोकनी) बनती है जिसे वाद्य निर्माता स्वयं संधान करता है। इसका शिल्पी-विन्यास एवं कला-कृति इतनी विशिष्ट होती है कि वादक का श्रम सुखद स्वर में घुलने लगता है बल्कि झीनी परत से निर्मित थाप वाला भाग आहिस्ता एवं त्वरा प्रहार या घर्षण से 'रुँहुँ-रुँहुँ की ध्वनि उत्पन्न करने लगता है। स्वर साधक भले ही नाद-ब्रह्मनाद से संज्ञानित करता हो किन्तु इसका स्वर शिव-शिवत्व का आभूषक-अनुवर्षक होता है जिसे शिव-नाद या शिव-नाम का सूचक माना जाता है।

पुटकसा- यह गाय या बैल के पेट भीतर वाला विशिष्ट अंग है जिसमें पागुर करता हुआ पाच्य वस्तु को विकारी पदार्थ के रूप में संग्रहित करता है अर्थात् जिस स्थान या भाग में यह संग्रहित होता है, उसे पुटकसा कहते हैं। यह बहुत ही पतला झिल्ली दार होता है जिसे बड़ी सावधानी से चर्मकार मृत गाय-बैल के शरीर से निकालता है। माँगे जाने पर अँगुल-अँगुल धनराशि प्राप्तम कर उपलब्ध करता है। पुटकसा को निकालना अनुभव एवं श्रमसाध्य काम है।

कमची, चामटी और कोकनी - यह गसे हुए या भरे हुए बाँस से बनती है। बके के सहारे से इतना चिकना, पतला एवं वलयदार बनाया जाता है कि कोण,कमची और कोकनी आसानी से बन जाती है। कोकनी जिसे घोरनी कहते हैं। भिलमा का तेल इसी में लेकर घर्षण किया जाता है जिससे रुँहुँ रुँहुँ का नाद निनादित होने लगता है।

राख - कोई चीज जब जलकर भस्म हो जाती है एवं जो शेष बचता है, उसे राख कहते हैं। इस वाद्य में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट सामग्री 'राख' है जो गाय के गोबर से बने कंडे से बनाई जाती है। वादक इसे छानकर रखता है। इसलिए कि यदि छोटा-सा कण रह जाए तो घर्षण करते समय पुटकसा के झिल्लीदार परत को नुकसान पहुँचा सकता है या घोरनी से घर्षण करने में बाधा उत्पन्न हो सकती जिससे शिव नाम की ध्वनि उत्पन्न होने में बाधा आ सकती है।

रूँजा बनाने की विधि - इसे बनाने का कोई निश्चित शास्त्र नहीं है बल्कि लोक में वाद्य निर्माण की प्रक्रिया प्रकृत व आदिम है। इसीलिए 'रूँजा' वाद्य निर्माण की आदिमता लिए हुए है।

प्रथम दृष्टाया यह दो-तीन शिल्पियों के शिल्पिकारी से निर्मित होता है, पहला मृत्ति कला का शिल्पी कुम्हार निश्चित आकार-प्रकार 'पेना'में संयोजित करता है तत्पश्चात् चर्मशिल्पी उत्पाद्य दृष्टि से भीतरी चर्म भाग पुटकसा का उत्पादक होता है। ग्राम चौरापाठा एवं कातोली के क्रमशः सुक्कू वंशकार तथा राजू वंशकार बताते हैं कि किसी अन्य की चमड़ी से यदि छाया या मढ़ा जाता है तो रुँहुँ रुँहुँ की साध्य ध्वनि निकलेगी ही नहीं और अगर निकली भी तो राम-सिया या ओम शिव का संचार नहीं होगा। इस दृष्टि से लोक में रूँजा के आदि निर्माताओं ने गाय के भीतरी

झिल्लीदार अतिकोमल अंग पुटकसा से बनाना प्रारंभ किए। लोक मानस यह भी मानता है कि शिव का वाहन स्वयं नंदी बैल थे इसलिए उनका वाद्य डमरू में गाय-बैल की भीतरी चमड़ी लगाई गई हो तथापि ओम शिव की ध्वनि निकली हो। इस साधको प्राप्त करने के निमित्त रूँजा वाद्य को परम्पराओं में सम्मिलित किए हैं। इसके एक तरफ चाँटी और दूसरी तरफ थाप होती है जिसे भिलमा के तेल एवं कंडे की राख से घिस-घिस कर, घोंट-घोंटकर बनाया जाता है, ताकि गमक और धमक बराबर बनी रहे।

कोण - रूँजा निर्माण विधि विशिष्ट है क्यों कि पेना मृत्तिकार से बनवा लिया जाता है किन्तु स्वरूप-संरचना निर्माण की प्रक्रिया वादक को स्वयं करनी होती है। कोण बनाते समय बाँस की बहुत ही बलयदार कमची ली जाती है तथा पेना के खुले भाग के नाप के आकार का काटते हुए इस तरह बनाया जाता है कि उसमें दूसरी पतली कमची से झिल्लीदार पुटकसा की परत कस जाए। फिर उसे आहिस्ता-आहिस्ता पेना में चढ़ाया जाता है एवं धन के चिह्न आकार में धागे की रस्सी से बाँधते हुए पेना के दूसरे भाग में कोण बनाया जाता है, पुटकसा को कसा जाता है। इस प्रक्रिया को वादक अपनी क्षेत्रीय भाषा में छाना या मढ़ना कहता है। पेना के दोनों भागों को छाने के बाद 'पुरा' भी कहा जाता है।

शरदा - एक प्रकार से रस्सी् या सुतली है। सूत से बनी होने के कारण सुतली कहलाती है। इसे धागे में आँट देकर बनाई जाती है, बहुत ही पतली एवं मुलायम होती है जिससे कोण में लगे झिल्लीदार पुटकसा की परत सुरक्षित रहती है तथा आवश्यकतानुसार स्वर प्रदान करने के लिए खींचते हुए चढ़ाया/उतारा जा सकता है। सुक्कू वंशकार तथा राजू वंशकार बताते हैं कि कम-से-कम चार लर में हो तो मजबूती बनी रहती है।

छिद्र विधान - पेना के दोनों भाग में जो कोण बनाई जाती है उन कोणों में बराबर दूरी यानिनौ-नौ अंगुल में छेद किया जाता है जिसमें शरदा को पोहते हुए खींचा या चढ़ाया-उतारा जाता है। कोण में छिद्र विशेष है क्योंकि यह स्वर संधान का आवश्यक घटक है।

दीया - यह भी आवश्यक सामग्री है। जब पुरा की परत में ऐंठन या कड़ापन आ जाती है तब उसे झोलदार मुलायम दीया के सहारे बनाया जाता है। वादक इसे हमेशा अपने साथ में लेकर चलता है। कभी-कभी ग्राम्य लोक से भी प्राप्त की जाती है।

3. स्वर लालित्य-

इसके अन्तर्गत् लोक वाद्य रूँजा को बजाने की विधि सन्निहित है। यह दिखने में डमरू के आकार का होता है किन्तु डमरू जैसे नहीं बजाया जाता। इसके बजने-बजाने की विधि ठीक वैसे ही अलग है जैसे भिन्न सामग्री से बनने की विधि है। यह अनोखा वाद्य है जिसे वादक अक्सर कमर में बाँधकर बजाता है। कमची को हाथ के अँगूठे और तर्जनी-मध्यमा उँगली में दबाकर अनामिका व कनिष्का का हल्का प्रहार चाँटी पर करता है तथा थाप पर कोकनी या घोरनी के मुड़े वाले भाग से रगड़कर बजाया जाता है जिससे राम, रामसिया और शिव की भक्तिमय ध्वरनि उत्पन्न होती है अर्थात् रुँहुँ रुँहु रुँहुँ रुँहुँ।

रूँजा बजाने के विशिष्ट अवसर- सिवनी, मण्डला, बालाघाट जिले के अहीर समुदाय द्वारा दीपावली की रात्रि में गाँव जगाने, दिवारी करने, मड़ई-मेले, उत्सव, अनुष्ठान, तीज-त्यौहार, शादी-विवाह, जन्मोत्सव आदि विविध संस्कारों, परम्पराओं और अनुष्ठानों, साधनाओं में बजाया जाता है।

रूँजा का चमत्कार - यह वाद्य इतना चमत्कारिक है कि वादक, गायक, नर्तक या मान्य पुरुष असाधारण ओजस्विता को प्राप्त करता है क्योंकि इस वाद्य से निकलने वाली ध्वनि सीधे शिव, शक्ति व प्रकृति को साधती है जिससे दैवीय चमत्कार स्वमेव साक्षात् हो उठते हैं। ऐसा कहते हैं कि जब रूँजा बजता है तो लोक के देवी-देवता, पर्वत-पहार, नदी-तालाब, घाट-पनघट सब जाग्रत हो जाते हैं अपनी-अपनी शक्ति से आनुष्ठिक स्थल को संरक्षित करते हैं। अपने मोहक निनाद सेअम्बर पनघट के समूचे वातावरण को गुँजायमान बना देता है जिससे सांस्कृतिक कार्यक्रम पवित्रता से मूर्तिमान हो उठते हैं। देव, दानव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, धरती, आकाश, हवा-पानी सब रूँजा की लय में लयमान होने लगते हैं।

पूजा-भाव - लोक में इस वाद्य को पूज्य भाव से देखा जाता है। भिन्न -भिन्न अवसरों पर जब वादक इसे बजाने के लिए लेकर आते हैं तब घर की सयानी महिलाएँ काँसे की थाली और गडुआ में गंगा जल, अक्षत, हल्दी और सवा रूपैया, दीपक लेकर आती हैं। सबसे पहले वाद्य में जल छिड़क कर तिलक-वंदन करती हैं फिर वादक को टीका करती हुई दीपक से आरती घुमाती हैं एवं लोक देवता, प्रकृति देवता के आह्वान का अनुनय करती हुई उल्लसित हो वाद्य राग सुनती हैं। वादक सर्वप्रथम वाद्य को प्रणाम करता है फिर प्रकृति और पुरुष से अरज करते हुए ईश वंदना करता है, देव-स्तुति की लय से धरती-अम्बर को अनुगुंजित कर देता है तत्पश्चात अवसर विशेष का राग छेड़ता हुआ लोक अनुरंजना कराता है। इसकी गमक और धमक से प्रमुदित हो लोक कभी लयबद्ध नृत्य करता है तो कभी आलाप भरता हुआ गीतों को गुनगुनाने लगता है।

इस तरह लोक वाद्य रूँजा' की समीचीन अलंकृति परम उपादेय और मांगलिक है क्योंकि अनेकानेक परम्पराओं, अवसरों, अनुष्ठानों में विविध अनुवर्तनों के साथ वादन किया जाता है जिससे उसकी ध्वनि अनुरंजनावृत्ति यथेष्ट और अभीष्ट हो जाती है। यह कला-साधना ढाई आखर को बजाने की है जो प्रकृति और पुरुष की अनंत साधना का प्रतिफल है जिसे लोक वाद्य रूँजा अपनी इयत्ता में साधे रहता है। इसलिए बजाए कोई भी पर बजता है वही जो उसका प्रतिपाद्य है यानि राम, रामसिया,ओम शिव आदि। यही रूँजा वाद्य का मांगलिक, आध्यात्मिक अभीष्ट है।

सम्पर्क : एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी अवधेश प्रताप सिंह विश्व विद्यालय,
रीवा, म.प्र. मोबा. 9993458191

लोकवाद्यों के विलुप्त होने का खतरा

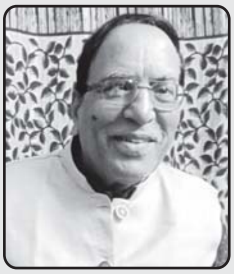

डॉ. प्रकाश पतंगीवार

छत्तीसगढ़ी लोक वाद्यों से जहां एक ओर भरपूर मनोरंजन होता है, वहीं यह लोक समाज की सृजनात्मक अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम भी रहा है। संगीत अपनी लोक लय से इंसान के नकारात्मक भावनाओं का विरेचन भी करता है। हालांकि 21वीं सदी की दस्तक के साथ-साथ लोक संगीत पर विलुप्ति का खतरा मंडराने लगा है। कई लोक वाद्य तो लुप्त भी हो गए हैं।

लोक वाद्यों के प्रकार –

कहां जाता है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक दुनिया में केवल साढ़े तीन प्रकार के वाद्यों का जन्म हुआ है, जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है –

जग में सब गुनिजन कहें, बाजे साढ़े तीन ।
खाल, तार अरू फूंक पुनि, अर्धताल स्वरहिन ।।

चर्म या खाल वाद्य: इसके अंतर्गत छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकवाद्यों में हैं:- ढोलक, मृदंग, मांदर, डमरू, ढोलकी, खंझेरी, दफड़ा, डिमडिमी, नगाड़ा, घटवाद्य, चुरकी, ढुकढुकी और गुदुम या डमऊ। डमऊ तबले से मिलता-जुलता वाद्य है और इसे कमर में लटकाकर दो बांस की डंडियों के सहारे बजाया जाता है।

तार वाद्य : तार के बाजों में चिकारा, रूंजू, ताऊस, सारंगी, इसराज और दिलरुबा प्रमुख है।

फूंक वाद्य : फूंककर बजाने वाले वाद्यों में बीन या नकडेवन, मोहराली (विषेष प्रकार की राऊताही बांसुरी), मोहरी बाजा, बांसुरी, पावा, नरसिंघा और पुंगी है।

अर्धवाद्य या झंकार वाद्य– इसके अंतर्गत झांझ, करताल, मंजीरा, घुंघरु आदि आते हैं। एक सा स्वर निकलने के कारण इन्हें अर्धवाद्य कहा गया है। कहा जाता है कि नकडेवन गुरु गोरखनाथ की देन है। इसका स्वर सुरीला, आकर्षक और असरकारक होता है। सर्पो पर इसका असर होता ही है, मृगों का भी यह मन मोह लेता है। बांसुरी लोकवाद्य को कृष्ण ने होठों से लगाकर लोकप्रियता दी है। लोकमान्यतानुसार बांसुरी बजाकर मोहनी मंत्र भी उड़ेला जाता रहा है। ढोलक या ढोलकी मृदंग का दूसरा रूप है। इसे दो हिस्सों में बांटे जाने पर एक ओर तबला और दूसरी ओर डग्गा की तरह बजाया जाता है। खयाल गायकी में तबला का महत्व है, तो ढोलक, छत्तीसगढ़ के हर गीत-नृत्य के साथ जुड़ा हुआ है। ढोलक विषयक एक पहेली भी प्रसिद्ध है –

कांधे आय कांधे जाय, नेंग नेंग मा मारे जाय ।।

छत्तीसगढ़ में गाड़ा जाति द्वारा बजाया जाने वाला गंड़वा बाजा गांव-गांव में चाव से सुना जाता है। पग-पग पर और हर नेंग में यह लोक वाद्य सुनाई पड़ता है। राऊत-नाचा के समय डमऊ-डफड़ा-ढोल-निसान और मोहराली का प्रयोग होता है। देवारी के गौरा गीत में मोहरी, सींग बाजा, डफड़ा, झांझ-मंजीरा, ढोलक-मांदर, चटकोला (ताली के सदृश्य आवाज करने वाला वाद्य) और खलारन लोकवाद्यों की ध्वनि मे गुनगुनाहट की सी आवाज सुनाई दे यह आवाज किसी खास ऊंचाई तक पहुंचकर स्थिर हो जाए, तो यही लोक संगीत का स्वर होता है। गांवों में वादक इसी ऊंचाई तक गाते-बजाते रहते हैं। लोकवाद्यों से उभरते ये स्वर दूर-दूर तक सुनाई देते हैं। कभी-कभी तो एक गांव का लोकसंगीत दूसरे गांव का भी मनोरंजन करता दिखाई देता है। ऐसे चिर-परिचित वाद्य-संगीत को सुनकर पूरा लोक नाच उठता है, इसे ही छत्तीसगढ़ में 'पार' कहा जाता है। पार का अर्थ है शैली या स्टाइल । वाद्यों की आवाज उभरते ही ग्रामीणों को मालूम हो जाता है कि कौन-सा पार बज रहा है या कौन-सा कार्यक्रम होने जा रहा है। पार के कितने प्रकार हैं, जरा देखें –

गौरा जगाई पार, माता-सेवा पार, नाचा पार, बिहाव के विभिन्न रस्मों पर अलग-अलग पर जैसे चुलमाटी, तेलमाटी, परघऊवनी, मायमौरी, नहडोरी, भांवर और टीकावन आदि। फागुन का डंडा-गीत पार भी अनूठा समां बांध देता है। गांव के गायक-वादकों को कोई संगीत शिक्षा नहीं दी जाती, पर वे एक मात्रा से दूसरी मात्रा तक पहुंचना जानते हैं और विलंबित मध्य और द्रुत तीनों लय में गाते-बजाते हैं।

लोकवाद्य बजाने के अवसर – वैसे तो थोड़ी खुशी का अवसर हो, तो गांवों में ढोलक मंजीरा बजने लगता है। तभी यह कहा जाता है कि लोकवाद्य उत्साहवर्धक और मंगलदायक होते हैं। इससे हृदय को शक्ति मिलती है। गांवों में विभिन्न जाति-धर्म के लोग मिलकर लोक वाद्य बजाते रहे हैं, जिनमें गांड़ा, बइगा, नाई, महार, हलबा, तेली और राऊत शामिल है।

स्वास्थ्य-रक्षा में सहायक – छत्तीसगढ़ में लोक संगीत लोगों को तंदुरूस्त करने में मददगार होता है। किसी महिला या पुरुष को देवता की सवारी आने पर ढोलक डफली-डमऊ वाद्य की ही प्रमुख भूमिका होती है। वाद्य संगीत को नियमित सुनने से भयंकर रोग दूर भागते हैं, तभी तो 50 साल पहले गांवों में तनाव, मधुमेह और ब्लडप्रेशर जैसे रोग कतई नहीं थे। अब तो गाँववासी इनके शिकार हो गये हैं।

संपर्क : फ्लैट नं. 3304, सी ब्लॉक, शांति रेसीडेन्सी, आम्रपाली,
लालपुर, रायपुर (छ.ग.) मो. 8889599436

■

आलेख

लोकवाद्य बीन और कालबेलियों की संस्कृति

डॉ. योग्यता भार्गव

बीन एक लोक वाद्य के रूप में भारत में जाना जाता है। इसके क्षेत्र अनुसार और भी नाम हैं, जिनमें मोहनबाजा, पुंगी, तुंबी आदि। दक्षिण भारत में बीन वाद्य को लोग नागस्वरम, महुदी, पुंगी, मऊअर, गोपाल बाजा, पमबत्ती, कुजल आदि नाम से इसे जानते हैं। अशोकनगर के नाथ समुदाय के लोगों के द्वारा इसे 'बीन' और 'मोहनबाजा' नाम से ही जाना जाता है।

उत्तर भारत में भी इस लोकवाद्य को 'बीन' के नाम से ही जाना जाता है। यह मुख्यत: सपेरा जनजाति के जीविका उपार्जन का यंत्र है, क्योंकि आज भी सपेरा जाति के लोग बीन बजा कर, घर-घर जाकर अपने लिए अन्न और आटा आदि की व्यवस्था करते हैं।

मध्य प्रदेश के अशोकनगर जिले और ग्वालियर के पास सिंगारपुर में बीन पर शोध कार्य उपरांत बीन से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य इस शोध पत्र में शामिल किए गए हैं। भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' की धारणा पर पली बड़ी है और इसी की धारणा को लेकर फल फूल रही है। भारत की धरा संगीत की धरा है। संगीत और साहित्य दोनों के योग से कला का जन्म होता है। हमारे यहां संगीत हमेशा से साधना का विषय रहा। इसीलिए हमारे चारों वेदों में सामवेद का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। हमारी संस्कृति में संगीत इतना उच्च स्थान पर है, कि सामवेद की ऋचाओं को संग्रहित करते हुए, रचयिताओं में संगीत का आनंद वाद्यों के माध्यम से लयब्ध हुआ। संगीत का आनंद वाद्यों की अनुपस्थिति में असंभव है। इसलिए हमारी संस्कृति में वाद्य यंत्रों को देवलोक के देवी-देवताओं ने भी प्रयोग किया और महत्व दिया। प्रत्येक देवता के अपने वाद्य है, डमरू, वीणा, बांसुरी और शंख इनका भी अपना विशेष महत्व इसलिए है कि यह देव वाद्य हैं।

इस प्रकार पूर्व काल से ही शास्त्रों के अलावा लोकवाद्य भारत में अपना स्थान रखते हैं।

बीन बनाने की विधि-

बीन को सर्वप्रथम बनाने के लिए तूमडा लेते हैं जो लौकी जैसा परंतु गोलाकार होता है, इसके कभी-कभी दो भाग भी होते हैं इसी के साथ बांस की पुंगी लेते हैं और एक नर्सल लगते हैं जो नदी किनारे पैदा हुए बांस से प्राप्त होता है। इसको बनाने के लिए एक प्रकार का मोन तैयार किया जाता है। सभी उल्लेखित सामग्री से मिलकर बीन निर्मित होता है।

तूमड़ा - बीन यंत्र को सर्वप्रथम बनाने के लिए तूमडा लेते हैं जो लौकी की तरह, किंतु गोलाकार होता है यह आषाढ़, श्रवण, भादों और क्वार में लगता है इसकी बेल होती है। इसे पकने, सूखने के बाद प्रयोग किया जाता है। यह प्रकृति रुप से दो भागों में विभाजित होता है। इसके दोनों ओर सूजे (बड़ी सुई) के माध्यम से छेद किया जाता है। फिर इसमें बांस लगाया जाता है। यह कार्तिक मास में पकता है। सूखने के बाद इसका प्रयोग किया जाता है।

बांस - बांस को बंबूसा और ग्रामिनीई कहा जाता है। यह खोखला तना होता है जो करीब 8 से 10 मीटर तक लंबा होता है। इसकी पतली खोकली 12 से 15 इंच लंबी दंडी ली जाती है। यह उष्म कटिबंधीय स्थान पर पाया जाता है। इसके लिए पोला सूखा बाँस ही लिया जाता है। इसकी संख्या दो रहती है। बराबर दो डंडी में से एक में बांसुरीनुमा आठ छेद आगे और एक पीछे छेद होता है। इसके बाद दूसरी डंडी साथ में लगाई जाती

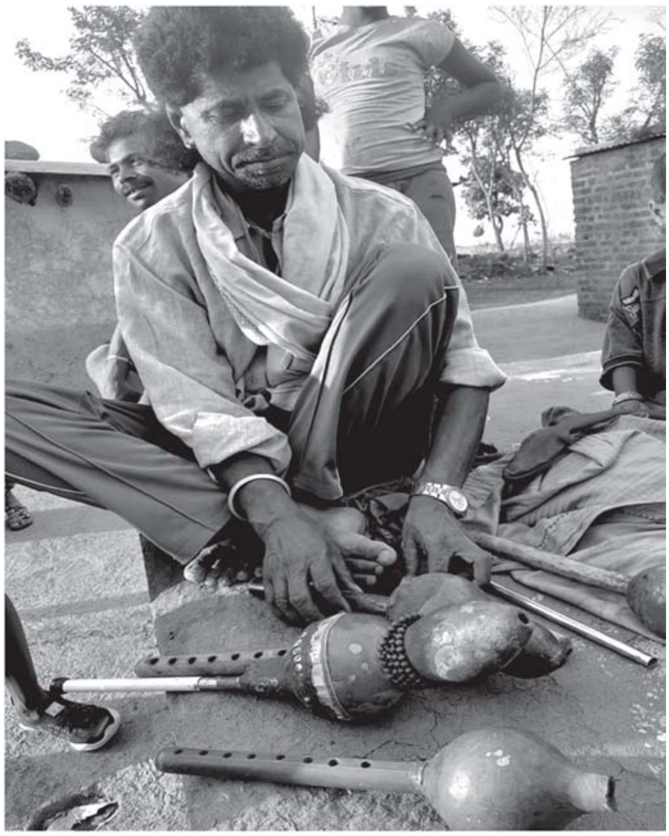

है। इसमें एक बड़ी तथा एक छोटी होती है, जिससे स्वर निकलता है।

नर्सल– नर्सल यह बेत के आकार का होता है। यह एक पौधा होता है जो पोला रहता है, इससे चटाई आदि बनाई जाती है। इसे नरकट, नरकुल भी कहा जाता है। इससे पूर्व में कलम भी बनाते थे। इसको बांस के अंदर डालकर इससे ही स्वर निकाला जाता है। यह नदी किनारे पैदा होता है । जिसे दो या तीन इंच कांटकर एक तरफ से बांस के अंदर डालते है । इससे ही स्वर बारीक निकलता है। इसे एक तरफ से तूमड़े में लगाया जाता है।

मोम/मेन/मोन – मोम एक मोमी पदार्थ है, जिसे मधुमक्खियों द्वारा बनाया जाता है। यह युवा मधुमक्खियों द्वारा बनाया जाता है। जब शहद तैयार होता है तब सपेरे बीन बनाने के लिए शहद को तोड़ते हैं। छत्ते से शहद निकलकर, छत्ते को पानी में डालकर कड़ाई या भगोने (बर्तन) में उबाला जाता है। जब तक वह गट्टा न हो जाय तक तब । जब यह अत्याधिक गर्म हो जाता है, तो यह एक चिपचिपे ठोस पदार्थ में बदल जाता है यह मुलायाम होता है और आकारानुसार प्रयोग किया जाता है। यह काले कलर का होता है। इसे ही 'मोन' या 'मैन' कहा जाता है। जिस मोन का प्रयोग बीन के आस –पास किया जाता है, इससे ही हवा केवल पुंगी से ही बाहर निकलती है। यह वर्षों तक चलता है। इसे कड़क होने पर गर्म पानी में भिगो कर नरम किया जा सकता है।

सूजा/बड़ी सुई– यह लोहे की होती है। इसे सामान्य बोलचाल की भाषा में 'सूजा' कहा जाता है। इससे तूमडे और बांस में छेद किया जाता है।

बीन पूर्ण रूप से एक लोकवाद्य है, क्योंकि यह न केवल लोक द्वारा बनाया जाता हैं, बल्कि लोक में बजाया जाता है। बीन की कोई विशेष लागत नहीं होती। इसे पूर्ण रूप से प्राकृतिक वस्तुओं से बनाया जाता है। यह नाथ समुदाय का आजीविका चलाने वाला वाद्य है। सपेरा जनजाति का मानना है, कि यह शिव का आशीर्वाद प्राप्त यंत्र है।

ग्राम-चिरोला, सुल्तान सपेरा जी

मान्यता अनुसार यह मोहनबाजा है, जिस प्रकार कृष्ण बांसुरी बजाकर गोपियों से लेकर गायों तक मोहित करते थे, वैसे ही हम सपेरे बीन बजाकर हर प्रकार के सांपों को मोहित कर, उन्हें बीन की धुन पर बुलाते हैं। इसलिए इसे मोहन बाजा कहते हैं। इसके पीछे कई लोक कथाएं हैं। इनमें एक कथा प्रमुख है जो सुल्तान भाई ने सुनाई। मान्यतानुसार भगवान कृष्ण ने दांत तोड़कर बोया, जिससे तूमडा पैदा हुआ। इसी से बीन बनाया जाता है। और छाती का बाल तोड़कर भगवान ने बांस उगाया, जिससे बीन बनाया जाता है। उनके अनुसार गुरु गोरखनाथ के कहने से हम यह बीन बजाकर सांपों को मोहित करते आ रहे हैं।

सम्पर्क: सहायक प्राध्यापक, हिन्दी प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस
शा. नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय अशोकनगर, मध्यप्रदेश (म.प्र.)

कला समय

आगामी अंक
अक्टूबर - नवम्बर 2025

प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास
इस विशेषांक की अतिथि संपादक

लोक, जनजातीय एवं शास्त्रीय वाद्यों पर केन्द्रित विशेषांक (भाग-दो)

अतिथि संपादक : प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास
दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में प्रोफेसर एवं भूत पूर्व डीन व विभागाध्यक्ष,
वाद्यों पर शोधपरक ग्रंथ की लेखिका तथा राजस्थानी वाद्यों की विशेषज्ञा

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु वाद्य और वादक पर मौलिक आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, विशेष पाण्डुलिपियाँ सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 अक्टूबर 2025 है।

– संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.- 94256 78058

आलेख

भारतीय वाद्य वृंद – जब स्वर एकता में बदलते हैं

यामिनी कानूनगो

भारतीय संगीत की आत्मा एकल प्रदर्शन में होती है, पर जब कई वाद्य एक साथ सुरों का संगम करते हैं, तब जो अनुभव उत्पन्न होता है, उसे 'वाद्य वृंद' कहते हैं। यह केवल संगीत का समूह नहीं, अपितु लय, ताल, स्वर और भावना का सामूहिक उत्सव है।

'वाद्य वृंद' का अर्थ है वाद्यों का समुच्चय, जो एक विशेष रचना या राग की प्रस्तुति के लिए एक साथ बजते हैं। यह परंपरा पाश्चात्य 'ऑर्केस्ट्रा' के समान तो है, परंतु इसकी आत्मा पूर्णत: भारतीय है – रागों की गहराई, ताल की सटीकता और अध्यात्मिकता से ओतप्रोत।

भारतीय संगीत केवल सुरों का खेल नहीं है, यह आत्मा की अभिव्यक्ति, ईश्वर से संवाद और अंतर्यात्रा का माध्यम है। हमारे वाद्य – चाहे वे एकतारा हों, वीणा, बांसुरी, तबला या पखावज – ये सभी किसी न किसी गूढ़ भाव, आध्यात्मिक दर्शन और वैज्ञानिक सिद्धांत को अपने भीतर संजोए हुए हैं। जब ये वाद्य एक साथ बजते हैं, तो वह केवल संगीत नहीं रचते – वे वातावरण को ईश्वरीय उपस्थिति से भर देते हैं। भारतीय वाद्य वृंद की यही विशेषता है: विविधता में एकता, लयों का सामूहिक समर्पण।

भक्ति काल की संत कवयित्री मीरा बाई की कल्पना कीजिए, जब वे एकतारा या तम्बूरे को हाथ में लेकर, श्रीकृष्ण की मूरत के सम्मुख राग दरबारी में डूबी कोई मीठी तान छेड़ती हों। उनके पीछे भक्त मंडली मृदंग की थाप, मंजीरे की झंकार और बांसुरी की मधुर तान से संगति करती थी। वह दृश्य केवल एक भजन गायन का नहीं था, बल्कि आत्मा और परमात्मा के मिलन का साक्षात क्षण था। मीरा के लिए संगीत भक्ति का साधन था, और उनके साथ बजते वाद्य उस साधना के साक्षी।

भारतीय वाद्यों के पीछे एक अद्भुत विज्ञान कार्य करता है। बांसुरी, जो वायु के स्पंदन से स्वर उत्पन्न करती है, उसमें हर सुर की गहराई हवा के स्तंभ, छिद्रों की स्थिति और फूंक की दिशा पर निर्भर करती है। तबले की काली 'स्याही' केवल सजावट नहीं, बल्कि ध्वनि कंपन को संतुलित करने वाला विज्ञान है, जो उसकी हर थाप को विशिष्ट और नियंत्रित बनाता है। वीणा की तारों से निकलती ध्वनि केवल कानों को नहीं छूती, वह शरीर की नाड़ियों में तरंग बनकर प्रवाहित होती है, चक्रों को संतुलित करती है। शंख की ध्वनि, जो मंदिरों में गुंजती है, केवल परंपरा नहीं, ध्वनि चिकित्सा का अद्भुत रूप है।

जब ये वाद्य एक साथ बजते हैं, तो भारतीय वाद्य वृंद का जन्म होता है – एक ऐसा सजीव संगीत समूह, जहाँ हर वाद्य का अपना स्वर होता है, फिर भी कोई किसी से ऊपर नहीं होता। सितार की गंभीरता, बांसुरी की मधुरता, मृदंग की थाप, मंजीरे की चमक – ये सब मिलकर उस दिव्य लय को जन्म देते हैं जो एकता, संतुलन और सौंदर्य का प्रतीक होती है। यह अनुभव वैसा ही होता है जैसे किसी मंदिर की घंटियाँ, वेदों की ऋचाएँ और आरती की लौ एक साथ प्रज्वलित हो रही हों।

भक्ति काल के अन्य संत – तुलसीदास, सूरदास, कबीर – के कीर्तन मंडलों में भी वाद्य वृंद की उपस्थिति एक अनिवार्य परंपरा थी। गाँवों में लोक वादक ढोलक, खड़ताल, झांझ और तानपुरा लेकर जब भजन मंडली के साथ निकलते, तो वह केवल संगीत नहीं होता – वह चलती-फिरती तपोभूमि बन जाती थी। श्रद्धा और स्वर की यह यात्रा लोकमन को आंदोलित करती, भावों को स्पंदित करती, और अंतत: आत्मा को शुद्ध करती।

आज जब भारतीय वाद्य वृंद आधुनिक मंचों पर प्रस्तुत होता है, तो उसकी ध्वनि केवल कानों तक सीमित नहीं रहती – वह हृदय में उतरती है। वह हमें भक्ति काल की उन गलियों में ले जाती है, जहाँ मीरा एक एकतारा लिए कृष्ण को पुकार रही हैं, जहाँ सूरदास अपनी अंधकारमय आंखों से सुरों का प्रकाश फैला रहे हैं।

भारतीय वाद्य यात्रा एक साधना है – यह केवल संगीत नहीं, आत्मा की पुकार है। जब यह पुकार वाद्य वृंद के रूप में सामूहिक हो जाती है, तो वह न केवल सुनने वाले को आनंद देती है, बल्कि उसे भीतर से छूकर, एक गहन मौन में उतार देती है – जहाँ केवल नाद है, वही नाद ही ईश्वर है।

भारतीय वाद्य यात्रा केवल सुरों की रचना नहीं, एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक यंत्र, प्रत्येक ध्वनि, एक गूढ़ भाव और साधना का वाहक होता है। भक्ति काल में जिस प्रकार मीरा बाई जैसे संतों ने इन वाद्यों के माध्यम से अपने आराध्य से संवाद किया, उसी परंपरा को आज भी भारतीय वाद्य वृंद जीवंत रखता है। यह केवल संगीत की प्रस्तुति नहीं, आत्मा की पुकार है, जो जब समूह स्वरूप में उभरती है, तो वह ईश्वर तक पहुँचने का सेतु बन जाती है। वाद्य वृंद हमें यह सिखाता है कि जब स्वर, लय और भावना एक हो जाएं, तब केवल कला नहीं, आराधना जन्म लेती है – और वही संगीत की पराकाष्ठा है।

■

सत्यम कला एवं संस्कृति संग्रहालय सागर (म.प्र.)

दामोदर अग्निहोत्री

बुंदेली लोक जीवन में समाहित लोक भजनों, लोक गीतों, शादी-विवाह, जन्म-उत्सव जैसे विविध मांगलिक अवसरों आदि पर लोक वाद्य बजाये जाते हैं। लोक वाद्यों के माध्यम से आमजन मानस में आत्मिक तृप्ति व शांति का अहसास होता है तथा यह सामाजिक एकता व समरस्ता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। लोक वाद्य आमजन जीवन में जन चेतना व स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करने के सबसे सबल माध्यम हैं। पारम्परिक वाद्य हमारी जड़ों से जुड़े हुये होते हैं जो हमारे पूर्वजों द्वारा छोड़ी गयी विरासत के जीवंत प्रमाण हैं। इनका संरक्षण करना हम सभी का परम कर्तव्य है। जो अपनी विरासत को संरक्षित करता है उसे अपने पूर्वजों का भरपूर आशीर्वाद भी प्राप्त होता रहता है। हमारी विरासत ही हमारी पहचान होती है। सत्यम कला एवं संस्कृति संग्रहालय सागर (म.प्र.) में संरक्षित बुंदेलखण्ड के पारम्परिक वाद्यों पर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर इतिहास विभाग की दो शोध छात्राओं द्वारा दो लघु शोध प्रबंध भी किये जा चुके हैं। संरक्षित बुंदेली वाद्यों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है -

रमतूला - बुंदेली लोक जीवन में रचा-बसा रमतूला की अपनी विशिष्ट पहचान रही है। सभी प्रकार के मांगलिक व आनंद उत्सवों में रमतूला प्रमुख रूप से बजाये जाने वाला वाद्य है। बुंदेलखण्ड में तो रमतूला पर भी एक लोक गीत प्रचलित है ''ओरी बऊ कबै बजे रमतूला, मोय तो देखने तो दूला''।

ढफला - अष्टकोणीय आकृति में लकड़ी से निर्मित ढफला का मुख भाग चमड़े से मड़ा होता है। इसे कंधे पर टांगकर एक हाथ में लकड़ी का डढ़ा लेकर तथा दूसरे हाथ में बांस की पंच से बजाया जाता है। इसे बजाने पर तान-गुड़ा-गुड़-तान की मधुर लयबद्ध ध्वनि निकलती है। बुंदेलखण्ड के सभी मांगलिक शुभ अवसरों, त्योहारों, उत्सवों आदि में ढफला व रमतूला साथ-साथ में बचाये जाते है।

ढफली - ढफला का लघु आकार है ढफली। इसका आवरण लकड़ी, चद्दर या एल्यूमीनियम आदि का बना होता है। इसके ऊपरी भाग पर चमड़ा मड़ा होता है। इसे एक हाथ में पकड़कर दूसरे हाथ से हथेली व अंगुलियों से थाप देकर बजाया जाता है। बुंदेली लोक भजन ढ़िमरियाई में बजाये जाने वाला यह प्रमुख लोक वाद्य है।

खंजड़ी - लकड़ी से निर्मित खंजड़ी का आकार ढफली से लगभग आधा हुआ करता है। इसकी बनावट ढफली जैसी ही होती है। इसे भी एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ की अंगुलियों से बजाया जाता है। यह स्वतंत्र एवं सहायक लोक वाद्य है। बुंदेली लोक भजनों में प्रमुख रूप से बजाया जाता है।

एक तारा ; तंबूरा - भक्ति संगीत में स्वर देने के लिये एक तारा वाद्य का उपयोग किया जाता है। सांधु संत व भिक्षुक मुख्य रूप से एक तारा लेकर भजन गाया करते हैं। पके तूमा को सुखाकर एक बांस की छड़ी इसे में लगाकर उपर चमड़े से मढ़ देते हैं, बांस के उपर खूटी के आश्रय से एक तार खींचकर लगाया जाता है। इसी तार को अंगुली के सहारे स्वर दिया जाता है।

रूं-रूं कैंकड़िया; सारंगी - यह मुख्यत: रैकवार समाज के लोक भजनों, ढ़िमरयाई आदि में बजाये जाने वाला प्रसिद्ध वाद्य है। इसमें तार के रूप में घोड़े के बाल कसे रहते है तथा दूसरा भाग धनुष आकृति में रहता है इसमें भी घोड़े के बाल कसे होते है। वादक द्वारा इन बालों पर आड़े तिरछे रगड़ने पर सुरीली आवाज निकलती है। यह वाद्य हमारे पूर्वजों का विशिष्ट आविष्कार है, जो वर्तमान समाज के लिये प्रेरणास्प्रद है।

झांझ - मंजीरा का बड़ा रूप झांझ कहलाता है। यह आठ से सोलह अंगुल व्यास तक के धातु के गोल आकार में होता है। यह दोनों हाथ से बजाये जाने वाला सहायक वाद्य है।

करताल - इसका उपयोग ग्रामीण अंचलों में लोक भजनों आदि में ढोलक- झूला के साथ सहायक वाद्य के रूप में किया जाता है। यह लकड़ी से निर्मित होता है तथा इसमें घुंघरु के साथ पीतल की गोल फल या पलियां लगी होती हैं।

मंजीरा- कांसा धातु से निर्मित झांझ का छोटा रूप मंजीरा कहलाता है। इसके मध्य से रस्सी निकालकर उसमें कपड़ा बांधकर हाथ से पकड़ने योग्य बनाया जाता है। दोनों हाथ में एक-एक मंजीरा लेकर एक दूसरे से रगड़कर या आघात देकर लयबद्ध रूप से इसे बजाया जाता है।

झूला - यह दोनों हाथ से बजाया जाने वाला सहायक वाद्य है। इसमें लकड़ी के बीच में पीतल की फल्लियां लगी होती है। इसे बजाने पर आपस में टकराने से मधुर आवाज निकलती है।

ढोलक- यह लोक गीत व लोक भजनों आदि में बजाये जाने वाला प्रमुख वाद्य है। इसे खोखली गोल लकड़ी के दोनों तरफ चमड़े से मढ़कर बनाया जाता है तथा दोनों छोर आपस में रस्सी से कसकर बंधे होते हैं।

ढोल - ढोलक का बड़ा आकार है ढोल। इसे गले में टांगकर लकड़ी की दो डंडियों से बजाया जाता है। बुंदेलखण्ड के अखाड़ा, कुश्ती, दश्हरा पर देवी चल समरोह आदि अवसरों पर ढोल बजाने की परम्परा है। ब्रिटिश इंडिया पीरियड में सरकारी सूचना एवं आदेशों जैसे मुनादी, कुर्की, वारंट आदि की जानकारी जन-जन तक पहुंचाने के लिये भी ढोल का उपयोग किया जाता था।

मृदंग – बुंदेलखण्ड का लोक नृत्य राई का प्रमुख वाद्य मृदंग है। खुले मैदान में घेरा बनाकर एक व्यक्ति मृदंग को कमर में कसकर स्वर एवं लय के साथ मृदंग पर थाप लगाते हुये बजाते हैं। एवं उसके साथ में बेड़नी नृत्य करती है।

नगड़िया – यह मिट्टी से निर्मित कटोरानुमा आकार में होती है। इसके मुख पृष्ठ पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसे लकड़ी की दो डड़ों से बजाया जाता है। बुंदेलखण्ड में यह वाद्य मुख्य रूप से सांस्कारिक अवसरों, देवी-भगतें, फागें, राई, दिवारी, जवारे तथा कजलियों आदि अवसरों पर बजाया जाता है।

बांसुरी – बांसुरी सबसे प्राचीन वाद्य माना जाता है। द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण जी का वेणु वादन जग जाहिर है। बांसुरी, वेणु, मुरली आदि कई नामों से इसे जाना जाता है। यह लोक वाद्य है, जिसे विकसित कर शास्त्रीय बना लिया गया। बुंदेलखण्ड में इसका वादन दिवारी, राई, रसिया तथा फाग आदि में किया जाता है। इसकी आवाज मधुर और हृदय स्पर्शी होती है। यह बांस लकड़ी, चंदन, कांसा, पीतल आदि से बनाई जाती है।

अलगोजा – दो बांसुरी के समूह को अलगोजा कहते हैं। अलगोजा बुन्देली लोक संगीत में एक प्रमुख सहायक वाद्य है। एक व्यक्ति के द्वारा दोनों बांसुरी को मुंह से फूंककर एक साथ बजाया जाता है।

चमीटा– यह एक सहायक बुंदेली वाद्य है। यह वाद्य मुख्य रूप से मंदिर या आश्रमों में अधिक बजाया जाता है। यह आध्यात्मिक लोक भजनों व कीर्तन आदि के साथ सुर-ताल में बजाया जाता है। इसे बजाने पर चट-चट की ध्वनि निकलती है। इसी कारण इसका नाम चमीटा पड़ा है।

चटकोला – यह पत्थर एवं लकड़ी से बना होता है। ऐसे दोनों प्रकार के चटकोला इस संग्रहालय में संरक्षित हैं। चटकोला बुंदेलखण्ड में मुख्य रूप से वसदेवा समाज के लोग बजाया करते हैं। पारम्परिक लोक भजन गाते हुये इसे एक लय में चटकोला चटकाते हुये बजाया जाता है।

डुगडुगी – इस वाद्य को बुंदेलखण्ड में गिड़गिड़ी भी कहा जाता है। यह वाद्य एक तारा जैसा ही होता है। इसे बनाने के लिये टीन के डिब्बे की बीच में डेढ़-दो फीट लम्बी बांस की छड़ी लगायी जाती है। बांस के ऊपरी हिस्से में एक खूटी के सहारे डिब्बे के बीच से एक लोहे का महीन तार कसा होता है। इस बात को ही अंगुली से बजाते है। खेल तमासा करने वाले लोग भी इसे बजाया करते हैं।

डमरू – शिव जी की डमरू तो जग प्रसिद्ध है। चाहे शिवालयों की आरती या मदारी का खेल हो। डमरू की डम-डम सुनने को अवष्य मिल जाती है। यह लकड़ी से निर्मित दोनों ओर चमड़े से मढ़ी होती है तथा बीच का भाग सकरा होता है। इसके बीच में रस्सी की दो लड़ी लगी होती हैं, जिसके उपरी भाग पर गांठ बंधी होती है। हाथ से हिलाने पर ये गांठें चमड़े से टकराती हैं जिससे डम-डम की ध्वनि निकलती है।

सारंगी – लकड़ी से निर्मित एक प्राचीन सारंगी इस संग्रहालय में संरक्षित है। यद्यपि यह बजने की स्थिति में नहीं है। लेकिन यह वाद्य हमारे पूर्वजों के शास्त्रीय संगीत कला प्रेमी होने का प्रमाण है। यह वाद्य हमें भारतीय संगीत कला से जुड़ने का संदेश भी दे रहा है।

तांसा या झील – तांसा या झील यह मंचीय लोक वाद्य है। नगाड़े के साथ में इसे बजाया जाता है। यह मिट्टी से निर्मित कटोरानुमा आकृति में होता है। इसके उपर चमड़ा मढ़ा होता है। लकड़ी के दो डढ़ा अथवा बांस की पंच से इसे बजाया जाता है।

लोटा – यह कांसा धातु से बना होता है। दो सिक्कों से इसे बजाया जाता है। लोक भजनों आदि में सहायक वाद्य के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। मांगलिक व संस्कारित गीत गाते समय महिलाएं भी लोटा बजाती है।

सैरा-डढ़ा – बुंदेलखण्ड में सैरा नृत्य करते समय पुरूषों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है। लगभग 150 वर्ष पुराना सेरा डढ़ा इस संग्रहालय में संरक्षित है। 10 से 20 लोग एक हाथ में गमछा तथा दूसरे हाथ में सैरा-डढ़ा लेकर घेरा बनाकर नाचते हुये सैरा गीत गाते हैं तथा नाचते हुये एक दूसरे के सैरा डढ़ा लयबद्ध चोट लगाते हैं जिससे टक-टक की मधुर ध्वनि निकलती है।

चंग – यह लकड़ी या चद्दर की गोल आकृति में चमड़े से मढ़ी हुई होती है। इसके उपर पीतल की फल्लियां लगी होती है। इसे एक हाथ से पकड़कर तथा दूसरे हाथ की अंगुलियों से बजाया जाता है। यह एकल एवं सामूहिक लोक वाद्य है।

चिरैयां चटकोला – यह बुंदेलखण्ड का अनोखा लोक वाद्य है। लोक भजनों, कीर्तनों व प्रभातफेरी में मुख्य रूप से बजाये जाने वाला लोक वाद्य है। लकड़ी से निर्मित इस वाद्य में चारों तरफ चार चटकोला लगे होते हैं जो एक रस्सी से जुड़े हुये होते हैं। रस्सी खींचने पर चारों चटकोला एक साथ बजते हैं। इसमें घुंघरू भी लगे होते हैं, जो चट-चट की ध्वनि को मधुर बनाते हैं।

घुंघरु झुनझुना – यह हाथ से बजाये जाने वाला सहायक लोक वाद्य है। इसके ऊपर एवं निचले हिस्से में घुंघरु लगे होते हैं। इसे बजाने पर लयबद्ध मधुर ध्वनि निकलती है।

जय हिन्द, जय भारत, जय बुन्देलखण्ड।

लेखक: संस्थापक एवं अध्यक्ष हैं।
सम्पर्क : संस्थापक सत्यम कला एवं संस्कृति संग्रहालय, सागर (म.प्र.)
मो.न. 9977677603

हमारे कृषि आश्रित समाज के गांव के रहवासी और उनके वाद्य

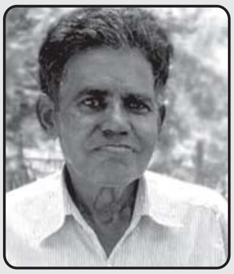

बाबूलाल दाहिया
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

यद्दपि जब अंग्रेज़ लोग भारत आए तो उनने हमारे ग्रामों को भी अपनी अंग्रेजी में (विलेज) ही कहा। पर जिन अर्थों में अंग्रेजी के विलेज के कारण हमारे गाँव भी विलेज हो गए उससे इन ग्रामों का मेल कत्तई नही खाता। क्योंकि अंग्रेजी के विलेज किसी राजे महराजे के विला (महल) के आस पास बसने वाले सेवकों की बस्ती को कहा जाता था। जबकि हमारे गाँव किसी के सेवकों की वस्ती से भिन्न हमेशा ही अपना अलग आस्तित्व बनाकर रहते रहे हैं। इन ग्रामों में बसने वाले लोग किसी के सेवक नही, प्राचीन समय से ही? एक दूसरे के सहयोगी होते थे जिनका आधार सैलरी के बजाय वस्तु विनिमय हुआ करता था।

अग्रेजों के उस जमाने में शहर बहुत कम थे। मुख्यत: गांव ही होते और अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गांव में ही निवास करती थी। तब वहां एक मुहावरे नुमा शब्द प्रचलन में था। वह था (सतीहों जाति) जिसका आशय यह था कि 'जिस गांव में उद्दिमयों की वे सात जातियां बसती हों वह आत्म निर्भर गांव।' लोग कहते कि 'अरे आप उस गांव के हैं जहां सतीहो जाति बसी है।' और वहां गांव के संसाधनों से ही समस्त वस्तुएं तैयार हो जाती थीं। क्योकि तब ग्रामों में सिर्फ 2 चीज ही बाहर की होती थी-

पहला नमक जिसे समुद्र के किनारे से बैलों में लाद लवाना (बंजारा) लोग गांव - गांव पहुँचाते और बदले में यहां से अनाज लाद कर लेजाते। और दूसरा लोहा जिसके धाऊ को पहले अपनी धमन भट्ठियों में सीधी, शहडोल या छत्तीसगढ़ के अगरिया लुहार सरई के लकड़ी के साथ जलाकर लौह का रूप देते। फिर उसी लोहे से गांव के अन्य लुहार बाद में खेती के उपकरण बनाते।

बाकी अन्य शिल्पियों या यूं कहें कि रिशर्च ऋषियों के लिए गांव में ही समस्त कच्ची सामग्री उपलब्ध थी। क्यो कि वे जिस प्रकार अपनी एक अदद विलक्षण बुद्धि और दो अन्वेशणरत हाथों से अपने उपयोगी यंत्र एवं वस्तुओं की परिकल्पना को मूर्त रूप देते वह रिशर्च ही तो था। उदाहरण के लिए यदि कोई कुम्हार अपना चाक बनाया तो वह किसी स्ट्रीटियूट में उस कलाको सीखने नहीं गया बल्कि पहले खुद ही उस चाक की परिकल्पना कीहोगी, कि 'वह इस प्रकार बैलेंस के साथ घूमेगा और फिर अनेकों प्रकार के बर्तनों की कल्पना किया कि अमुक काम में अमुक तरह का बर्तन उपयोगी होगा।'

गांव के उन अनुसंधान कर्ताओं य शिल्पियों की जातियां और उनके उपकरण इस प्रकार थे।

कपड़ा शिल्पी - करघा, चरखा, तकली आदि उनके उपकरण एवं कई तरह के वस्त्र निर्माण।

मिट्टी शिल्पी - चकबा, थापा, पीड़ी, सांचा आदि उपकरण एवं तीस चालीस प्रकार के बर्तन का निर्माण।

बाँस शिल्पी - बांका कुल्हाड़ी आदि उपकरण एवं बीस पचीस प्रकार के बर्तनो का निर्माण।

लौह शिल्पी - छेनी,हथौड़ा,संसी,निहाई आदि उपकरण एवं पचास साठ से अधिक वस्तुओं की खोज एवं निर्माण।

लकड़ी शिल्पी - आरा,रमदा, बसूला,रोखना आदि औजारों की पहले परिकल्पना एवं फिर पचास साठ से अधिक वस्तुओं की खोज व निर्माण।

चर्म शिल्पी - रांपी, फरहा, सूजा - सुतारी आदि वस्तुओं की कल्पना एवं बाद में दश से अधिक बस्तुओं का निर्माण।

तेल प्रेरक समुदाय - कोल्हू और उसके उपकरणों की परिकल्पना एवं कोल्हू में पेर कर कई तरह के तेल की खोज।

किन्तु यह सभी रिशर्च वहीं बसते थे जहां इनके गुणों के ग्राहक कास्तकारों का एक बड़ा सा समुदाय हो। फिर जिस किसी गाँव में यह (सतीहों जाति) यानी सप्त शिल्पियों की जातियां बसी हों तो नाई, धोबी, कहार, स्वर्णकार,पत्थर शिल्पी आदि के व्यावसाय भी चलने लगते थे।

अस्तु अन्य जातियां भी स्वत: आकर उस गांव में बस जाती थीं।

फिर तो इनका यह वस्तु विनिमय का धंधा ऐसा चलता कि हर पेट को रोटी और हर हाथ को काम वहां अपने आप उपलब्ध रहता। एवं गांव के समस्त विकास की धुरी ही इन शिल्पियों के हाथ में हुआ करती थी। परन्तु मनुष्य की एक वृत्ति होती है और दूसरी प्रवृत्ति। वृत्ति तो उसका ब्यावसाय य प्रोफेशन है जो उसी के द्वारा निर्मित है पर पवृत्ति प्रकृति प्रदत्त गुण। यही कारण था कि जब वह दिन भर काम में व्यस्त रहते तो काम के पश्चात उसकी प्रबृत्ति उन्हें मनोरंजन की ओर भी खींच ले जाती। उनने अपने मनोरंजन के लिए न सिर्फ कई तरह के गीतों की रचना की बल्कि तरह तरह के वाद्य भी बनाए।

अपन जब गांव में बसने वाली तमाम जातियों के लोकगीतों के संकलन, और वाद्यों का अध्ययन कर रहे थे तो देखा था कि कुछ लोकगीतों में उनके जाति कर्म भी मुखर होते थे ।

उदाहरण के लिए तेली जाति का यह बिरहा गीत कि –

तिली कय घानी पेर बछउना,
अरसी हिबय चरेर।
तिली क तेल मोर साजा लगामय,
पीरा मने होइजाय।।

कुछ जातियों के अलग-अलग वाद्य भी हुआ करते थे।

यहां गांव के कुछ उन्हीं वाद्यों की जानकारी प्रस्तुत है। अस्सी के दशक में जब अपने ने यह सब अध्ययन किया था तो उस समय हमें चार तरह के लोकगीत मिले? थे वे थे –

1. संस्कार गीत **2. पर्व गीत ,**
3. फुटकर गीत **4. जातीय गीत,**

अन्य गीतों में तो प्राय: साधारण वाद्य ढोलक का ही उपयोग होता था। पर जातीय गीतों में हमने देखा कि जिन जातियों के कार्य कुछ कम कष्टसाध्य थे उन्हीं, उन्हीं के जातीय लोकगीत थे, बाक़ी के नहीं। हमने उस समय यह भी महसूस किया था कि लोहार बढ़ई के जातीय लोकगीत शायद इसीलिए नहीं हैं कि वह अपना हथौड़ा और कुल्हाड़ा चलाते हुए इतना थक कर चूर होजाते कि रात्रि भोजन के पश्चात उन्हें खाट ही दिखती। यही हाल कत्था बनाने वाली आदिवासियों की एक जाति खैरवार का था। इनके विपरीत बाकी सभी मेहनत कस जातियों के अलग-अलग लोकगीत भी थे और लोकवाद्य भी।

किसानों के वाद्य –

किसान ऐसा समुदाय है जिसका बारहों माह कोई न कोई खेती किसानी का काम बना ही रहता है। उनके लिए तो यह भी कहा जाता था कि 'वह कर्ज में जन्म लेता और कर्ज में ही मर जाता है' तो उसे मनोरंजन का समय कहा? फिर भी जब होली दुर्गाष्टमी आदि पर्व आते तब उन तमाम खुसियों में किसान भी शामिल हो फाग और भगत गीत गाते बजाते थे। पर उनके वाद्य यंत्र।

ढोलक, नगड़िया, झांझ, झेला आदि साधारण ही होते, अन्य नहीं। लेकिन यहां हम कृषि आश्रित समाज से जुड़े अन्य समुदायों के वाद्य यंत्र प्रस्तुत कर रहे है जिनमें गाना बजाना कुछ के प्रोफेशन से जुड़ गया था।

बांस शिल्पियों के वाद्य –

बांस शिल्पी एक ऐसा समुदाय है जो बांस के बर्तनों को बनाता था। उस काम में उसे पर्याप्त समय रहता था। यही कारण था कि उस ने अपने गीत तो रचे ही ,अपने निम्न लिखित वाद्य भी बनाए –

डफुला –

यह एक लकौड़ा एवं बांस की फलथी (खपच्ची) के साथ बजाया जाता है। उनका मुख्य गीत केहरा कहलाता है जिसे बजाकर वह गाते हैं। यथा –

बजाया दे रमतूला ओ दीदी ,
बजाया दे रमतूला।
आसउ के साल ब्याह कराया दे,
बना फिरउ मैं दूल्हा।
ओ दीदी बजाय दे रमतूला।।

गाते हैं और यदि सांस्कृतिक अवसरों में किसी को जरूरत पड़ी तो पैसा लेकर वहां भी बजाने चले जाते हैं।

रमतूला– यह उनका सहायक वाद्य है जो डफुले के साथ मुंह से बजाया जाता है। यह सहनाई जैसा ही होता है।

झाझ– यह डफुले का तीसरा सहायक वाद्य है जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है।

चर्म शिल्पी के वाद्य –

चर्म शिल्पियों का ऐसा समुदाय था जिनके पास अपना काम करने के पश्चात गाने बजाने का पर्याप्त अवसर था। शायद यही कारण था कि वे अन्य लोगों के यहां भी अपने वाद्य लेकर गाने बजाने जाते थे। उनके वाद्य मुख्य रूप से नगड़िया, नगाड़ा थे जो दो लकड़ी के लकौड़े के साथ बजाए जाते थे। नगड़िया का आकार जहां छोटा होता था वहीं नगाड़ा का बड़ा। प्राचीन समय में तो यह युद्ध में भी बजाया जाता था। पर नगड़िया अन्य जातियों के बिरहा गीत में भी वे लेकर बजाने जाते थे।

कहारों के वाद्य –

कहार ऐसा समुदाय हुआ करता था जो प्राचीन समय में विवाह आदि के अवसर में किसानों के यहां पानी भरकर पिलाता और अपनी आजीविका चलाता था। साथ ही उनकी उप जाति रैकवार या सिगरहा थे जो तालाबो में सिंघाड़ा लगाते थे। इसलिए उनके पास भी गाने बजाने का पर्याप्त समय था। उनके वाद्य – किगरी, डफुली कहलाते थे। यह दोनों वाद्य बजाकर वे अपने जातीय गीत गाते और नाचते भी थे।

कबीरी भजन गायकों के वाद्य –

प्राचीन समय में इस क्षेत्र में कबीर दास जी के निर्गुनिया भजनों का बड़ा प्रभाव था। हमारे कृषि आश्रित समाज में ऐसी अनेक जातियां थीं जो

काम से फुर्सत होने के पश्चात रात्रि में गम्मत में बैठती और उनके भजन गाती थीं। उस भजन में दो वाद्यों का उपयोग था। चिमटा, खंजनी।

चिमटा लगभग दो हाथ लम्बा होता था जिसमें ऊपर मूठ के पास एक बड़ा छल्ला सा लगा रहता और बजाने वाला उसी को चिमटे में मार मार कर बजाता तथा साथ में खंजनी भी बजाकर भजन गाता। पर खंजनी लकड़ी के खोल में चमड़ा से मढ़ा एक वाद्य होता था।

परन्तु आजादी के पश्चात जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार प्रसार बढ़ा तो लोकगीत पूर्णत: समाप्त होगए और उनका स्थान रामायण गायकी तथा शास्त्रीय संगीत ने लेलिया। परिणाम यह हुआ कि कुछ नए वाद्य हारमोनियम आदि प्रचलन में आए तो कुछ प्राचीन वाद्य हमारे भूले विसरे उपकरणों के संग्रहालय की शोभा बढ़ाने लगे। और उन्हीं के साथ आ गए कर्ण फोडू माइक तथा डीजे जो अब लोगों का सोना भी मुस्किल करने लगे हैं।

संग्रहालय

संगीत दिवस के अवसर पर जी. आर. घोड़ेश्वर वाद्य संग्रहालय बालाघाट

- जी आर घोड़ेश्वर

जब दुनिया आधुनिक सुरों में डूबी होती है, तब बालाघाट के एक साधारण से शिक्षक जी. आर. घोड़ेश्वर अपने साधनों से असाधारण कार्य कर रहे हैं — विलुप्त हो रहे आदिवासी वाद्यों को संजोकर अगली पीढ़ियों तक पहुंचाने का बीड़ा उठाया है।

संग्राहलय - सेवानिवृत्त शिक्षक घोड़ेश्वर ने वर्ष 2007 में अपने घर में ही एक अनोखा संग्रहालय स्थापित किया। 16 वर्षों में उन्होंने आदिवासी क्षेत्रों से जुड़े 100 से अधिक दुर्लभ वाद्य यंत्रों का संग्रह किया है। इनमें शामिल हैं: मांदर, डपली, नगाड़ा, खंजरी, दुम, बांसुरी, सुलबुले, पखावज, आदि 'बचपन से ही संगीत से गहरा लगाव था, लेकिन आधुनिक वाद्यों के आगे हमारी लोक-ध्वनियाँ दब रही थीं। इसी पीड़ा ने मुझे प्रेरित किया कि जो बचा है, उसे बचा लिया जाए।'

- जी. आर. घोड़ेश्वर

कविता

राकेश राणा की शंख कविता

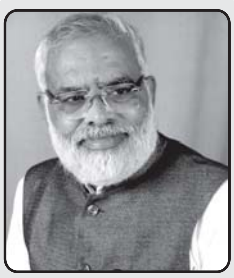

राकेश राणा

शंख
या
तो
बजता है
आरती में
या
युद्ध में

शंख
बज रहा है अभी
और
युद्धरत
है
आदमी

आरती के लिए
वक्त
कब मिलेगा ?
शंख को,
आदमी
को !

झण्डा चौक, खरगौन म.प्र.
94250-87463

साक्षात्कार

पद्मश्री से विभूषित पं. भजन सोपोरी एवं उनके पुत्र अभय रूस्तम सोपोरी से प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग की बात चीत

सृजन की नई उड़ानः सोपोरी बाज

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

19वीं शताब्दी के उपरान्त काश्मीर का यह लोकवाद्य शास्त्रीय वाद्य के रूप में स्थापित होता हुआ एक अत्यन्त लोकप्रिय शास्त्रीय वाद्य के रूप में उभर कर सामने आ रहा है, जिसका श्रेय संतूर के पर्यायी पं. शिवकुमार शर्मा, पं. भजन सोपोरी एवं पं. तरुण भट्टाचार्य जैसे दिग्गज गुणवन्त वादकों को दिया जा सकता है। ख़ास बात यह है कि न सिर्फ पुरूषों अपितु पुरूष प्रधान क्षेत्र माने जाने वाले इस क्षेत्र में कई कठोर परिश्रमी एवं समर्पित महिला-वादिकाएँ एवं अनेक युवा भी इस क्षेत्र में अपने रूझान एवं गहन तालीम के साथ अपने भविष्य को देख रहे हैं। इन श्रेष्ठ संतूर- कलाकारों ने उत्कृष्ट एवं गहन तालीम, अभ्यास, साधना, सम्मोहक प्रदर्शनों, उसके अनेक प्रचार-प्रसार के उपक्रमों, वादन-तकनीक में अनेक सृजनों, नवाचारों एवं शोधात्मक बदलावों द्वारा उसे ''पूर्णात् पूर्णनित्याहु'' उक्ति की सार्थकता प्रदान की।

सन्तूर के निर्माण को भारतीयता के साथ विदेशी, लोक, सूफी एवं आध्यात्मिक आदि कई जामे पहनाये जाते रहे हैं। इसे प्राचीनता और आधुनिकता कई कैनवासों पर भी अंकित किया जाता रहा है। विचार करें तो ईरान और भारत के व्यापारिक संबंधों के रहते भारतीय संगीत में समाविष्ट अनेक ईरानी प्रभावों में से इसे भी एक माना जा सकता है क्योंकि सन्+तूर की संधि से बने इसमें पहला शब्द 'ईरानी' एवं दूसरा संस्कृत से उद्भूत होने के भी मत रखे जाते रहे हैं। ठाकुर जयदेव सिंह ने सन्न ध्वनि के उद्बोध के कारण ही इसे 'बाण' वाद्य भी कहा एवं उनके अनुसार तरीके अथवा निकास में 'सन्न' शब्द के उद्घोष के मद्देनज़र शस्त्र को बाण भी कहा जाता है।''

प्राचीनकाल में तारों की संख्या के आधार पर भी वीणाओं के नाम रखे गये हैं, जैसे एकतंत्री, सप्ततंत्री एवं शततंत्री आदि। वीणा हर उस वाद्य को कहा गया जो तार से बजता है, इस दृष्टि से संतूर को भी 'वीणा' कहा जा सकता है। जयपुर में स्पिक मैके के एक कार्यक्रम में पं. शिव कुमार शर्मा ने बताया था कि यह प्राचीन शततंत्री वीणा का ही विकसित रूप है एवं काश्मीर का यह सदियों पुराना साज़ है। इसे 'बाण' भी इसलिए कहा गया कि इसमें 'बाण' यानि रस्सी, तांत और उससे विकसित तार के लगाव का संतूर के रूप में नया संस्करण प्राप्त होता प्रतिभासित होता है –

सुदानक शोभनादानास्ते मरुतः,
बाण शतसंख्याभिर्तंत्रीभिर्यु वीणा विशेष,
धमन्तः वाद्यता सोमस्यभदे सोमपानेन,
अथ एतां वीणा शततंत्रीमुपकल्पयति
तस्या प्लाशी सूना भवित औदम्बरी
दण्ड अपि औदम्बरी सूनापलाशो दण्ड
वाग्भद्रमिति त्रिपर्वोत्करशलाक्या वेणुकोऽनुवावाण
स वाद्य तेनमहिन्द्र स्तोतमुपा करोति उद्गाता
यन्नीति विज्ञायते। तमदुगाता दक्षिणेहूर्हा हूं
प्रतिपादयन्नास्ते।

कुछ साम्य बाण और संतूर में दृष्टव्य हैं यथा बाण-निर्माण में सौ तन्त्री और पलाश की लकड़ी का ढ़ांचा, दण्ड या डांड गूलर या अदुम्बर का होना, उसका बैल के चमड़े से मंढ़ा होना, दण्ड के मूल में 10 छेदों में 10-10 तार पिरोकर दण्ड के ऊपर बांधना, जिसे नत्त (मुड़ी हुई डंडी) नरकट से वादन, धार्मिक महत्ता के कारण एकल एवं सामगान के साथ यज्ञादि अनुष्ठानों में वादन एवं शांडिल्य ऋषि के अनुसार 33/34/33 तारों के विभाजन में उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित तीन सप्तकों का संभावित वादन आदि-आदि।

अपने ग्रंथ ''शास्त्रीय संगीत के आधुनिक वाद्य के पृ.सं. 276 में पं. लालमणि मिश्र संतूर को लगभग स्वरमंडल के समान बताते हैं किन्तु यह भी कहते हैं कि स्वरमंडल का प्रयोग गाते समय उंगलियों से छेड़ते हुए किया जाता है जबकि सन्तूर का मुड़ी हुई डंडी से, जो कि एकल-संगत दोनों रूपों में दिखाई देता है। संतूर-निर्मिति देखी जाये तो लगभग चार इंच चौड़ी तथा आधा इंच मोटी, वाद्यों में लगने वाली लकड़ी की चार पट्टियां बनाकर उसे खड़ा कर चारों ओर से एक-दूसरे से जड़ देते हैं, इसमें मन्द्र स्वर की ओर जो पट्टी बनाई जाती है वह लगभग दो फीट लम्बी तथा चार स्वरों की ओर जो पट्टी बनाई जाती है वह लगभग तेरह इंच की होती है। आगे पीछे की इन पट्टियों के अतिरिक्त दाएं-बाएं की पट्टियां एक माप की होती हैं, जिनकी लम्बाई लगभग साढ़े इक्कीस इंच होती है। उन्हीं पट्टियों में तार बांधने अथवा फंसाने की खूंटियाँ लगाई जाती है। इस प्रकार चारों पट्टियों से बने हुए ढ़ांचे के ऊपर तथा नीचे प्लाइवुड की तरह की एक विशेष काश्मीरी लकड़ी के ऊपर तथा नीचे की ओर मजबूती से ढंक देते

2005 में इंटरनेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट जयपुर द्वारा आयोजित अखिल भारतीय ध्रुवपद समारोह में पद्मश्री स्व.पं. भजन सोपोरी को सम्मानित करते हुए ध्रुवपदाचार्य पद्मश्री पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग

हैं। ऊपर की ओर वाम तथा दक्षिण पार्श्व में पौने इंच मोटी और एक इंच ऊँची अतिरिक्त लकड़ी की पट्टी लगाई जाती है, जिसके मध्य में हड्डी अथवा लोहे की रेखानुमा पत्ती मेरु का काम करती है। खूंटियों के स्थान पर इसमें लोहे की पहलदार ऐसी कीलें लगाई जाती हैं जो घुमावदार होती हैं उसमें तार फंसाने के लिए घुमावदार कीलें लगाई जाती हैं जिनमें तार को फंसाकर खूंटियों को घुमाने के लिए बनी लोहे की चाबी से चूड़ियों को घुमाकर लपेटा जाता है। इसमें सौ खूटियां लगाई जाती हैं, जो सभी दक्षिण पार्श्व से ऊपर-नीचे चार-चार की पंक्तियों में बनी होती हैं जबकि वर्तमान में पचहत्तर अथवा पचास खूटियाँ वाले सन्तूर भी बनाये जाने लगे हैं। इसमें पचहत्तर तंत्रियों में प्रत्येक स्वर के लिए तीन-तीन तथा पचास हो तो दो-दो तंत्रियां होती हैं। इस प्रकार तंत्रियों की संख्या चाहे कितनी हों किन्तु इन पर स्वरों की संख्या पच्चीस ही रहती है, जो गायक की रागों के स्वरों में मिला ली जाती हैं। उपयुक्त निर्देशित एक स्वर के दो या अधिक तारों को एकत्र करने के उद्देश्य से पच्चीस छोटी-छोटी लकड़ी के मेरु बनाए जाते हैं, जिन्हें तेरह की संख्या में दक्षिण तथा वाम पार्श्व में उपर्युक्त मेरु से लगभग पांच इंच भीतर की ओर इस तरह लगाये जाते हैं, जिससे एक स्वर का वादन दक्षिण पार्श्व में हो तथा दूसरे का वाम पार्श्व में हो।

इन छोटे मेरुओं का रूप शतरंज के ऊंट तथा घोड़े के मोहरे के समान होता है, जिसके ऊपर कोई कलश आदि का आकार न होकर मेरु के योग्य समतल बनाकर उस पर हड्डी की अत्यन्त सूक्ष्म नली बैठा देते हैं। इस नली में तारों की संख्या के अनुसार खांचे बने होते हैं, जिनमें तार आसानी से बैठ जाते हैं तथा वादन के समय अपना स्थान नहीं छोड़ते। सन्तूर का वादन सामान्य पेंसिल से भी कम मोटाई वाली दो पतली तथा हल्की डंडियों के ऊपर मुंडे हुई स्थान से होता है।

इसकी प्राचीनता और बनावट के परम्परागत शैलीगत स्वरूप के साथ नवाचार एवं सृजन की नयी संभावनाओं के साथ भारतीय संगीत के शास्त्रीय प्रमुख तत्वों, अलंकरणों, रागदारी की शुद्धता और उसके तकनीकी पक्ष को वास्तविक स्वरूप तथा पहुंचाने के लिए जिस संतूर के सिद्ध साधक का नाम प्रमुखता के साथ लिया जा सकता है वे हैं पद्म श्री स्व. विभूषित पं. भजन सोपोरी।

ऐसा माना जा सकता है कि आधुनिक काल तक आते-आते सारिकाओं अथवा परदों के प्रचलन से शततंत्री वीणाओं का प्रचार ख़त्म हो गया इसलिए बाद में उसका उल्लेख नहीं मिलता अतएव जिस प्रकार त्रितंत्री वीणा का लोप हुआ और मध्यकाल में सितार का रूप लेकर वह समक्ष हुआ, उसी प्रकार शततंत्री वीणा के लोप के बाद काश्मीर का यह वाद्य पुन: प्रकाशित हुआ और प्राचीन व सूफी दोनों की आत्मा लेकर लोक का सफर तय करता हुआ कालान्तर में शास्त्रीय संगीत में आविर्भूत हुआ, जिसमें हुआ जिसमें पद्म श्री विभूषित पं. भजन सोपोरी ने शास्त्रीय तत्वों और अलंकरणों का समावेश कर उसे 'सोपोरी बाज' के नाम से समक्ष रखा।

जयपुर में 12 दिसम्बर 2005 में लेखिका के संयोजन में हुए अ.भा. ध्रुवपद-समारोह में निमंत्रित पद्म श्री विभूषित पं. भजन सोपोरी जी से लेखिका द्वारा लिये गये साक्षात्कार में पं. जी ने संतूर और अपने बाज के बारे में कुछ महत्वपूर्ण जानकारियाँ दीं, उन्होंने समारोह में ट्रस्ट द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट संगीत-विभूति अलंकरण' से सम्मानित होने पर कहा कि पद्म श्री से सम्मानित होने से ज़्यादा खुशी है कि मैं गुणीजन के शहर में आया और मैंने जिस 'सोपोरी बाज' को बनाया, उसे गुणियों के बीच वह भी ध्रुवपदियों के बीच उसे प्रामाणिकता और सही स्थान मिलेगा, उनके साथ नाथद्वारा के गुणी वादक पं. डालचन्द शर्मा पखावज-संगति पर थे।

भजन सोपोरी इस साज़ को मध्यकाल में धार्मिकता से जोड़ते हुए काश्मीर में ''भैरवकाष्ठ'' के नाम से जाने का जिक्र करते हैं। यह साज़ तूत की लकड़ी से बना होता है एवं लालरंग की लकड़ी से बजाया जाता है। इसके पेड़ की पूजा होती है क्योंकि इसमें भैरव का वास होने की मान्यता है ऐसा हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों ही इसे मानते हैं। सन् 1686 के लगभग काश्मीर में इस्लाम धर्म के आगमन एवं हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के मेल से यहां सूफियाना घराने का उदय हुआ। इस घराने में भी सूफी कलामों को 10, 12, 16, 30 एवं 32 मात्रा की तालों में गाने के बाद उसे तराने से समाप्त किया जाता है यानि प्राचीन वीणा के समय की तरह संतूर-वादन में भी गायन एवं वादन का प्रचलन दिखाई देता है।

सोपोरी बाज के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा कि इस साज़ को हमने ख़ून से सींचा है। हमारी 300 वर्षों के लगभग 10 पीढियों से यह परम्परा चली आ रही है। पं. सोम जू से प्रारम्भ होकर बाबा पं. संसारचन्द सोपोरी एवं पिता पं. शंभूनाथ पिता पं. शंभू नाथ सोपोरी से यह परम्परा मेरे द्वारा अग्रेषित अग्रिम पीढ़ी अभय रूस्तम सोपोरी तक प्रवाहमान है। यह परम्परा काश्मीर के शैवेत सूफी परम्परा के रूप में प्रवाहित है। उसी से प्रेरित होकर 50 के दशक में मुझे पहली बार एकल वादन करने का श्रेय जाता है। उसे शास्त्रीयता के अनुकूल तैयार करने में मैंने गमक, मीड़, लयकारी और छन्दकारी को संभव करने के लिए तीन सप्तकों में तारों के

समावेश और तकनीक को विकसित किया। इसी काम के लिए मैं अनेक सम्मानों सहित पद्म श्री से भी अलंकृत हुआ। संतूर को लोकप्रिय करने के लिए मुझे अपने को लोक प्रतिष्ठित होना जरूरी था अतएव मैंने संतूर-वादन के अलावा लगभग 4000 देशी-विदेशी परशियन और अरबी भाषाओं के संगीतज्ञों के साथ काम किया। संतूर, सितार और अंग्रेजी भाषा में स्नातकोत्तर उपाधि ली। यू.एस.ए. एवं वाशिंगटन विश्वविद्यालय से बाकायदा पाश्चात्य संगीत की भी शिक्षा ली। 'साउण्ड थेपेरी' 'नाद योग' एवं 'ऑन दी संतूर' एलबम दुनियाभर में मशहूर हुए। मैंने लालेश्वरी, राग पटवंती और निर्मल रंजनी राग की परिकल्पना की, जिन्हें काफी पसंद किया गया।''

पंडित भजन सोपोरी एवं श्री अभय रूस्तम सोपोरी संतूर की जुगल बंदी

पं. भजन सोपोरी ने बताया कि पहले धार्मिक आयोजनों में प्रचलित होने के कारण यह वाद्य लोकवाद्य के रूप में देखा जाता रहा हो परन्तु इसमें शास्त्रीयता की अधिक संभावनाएँ हमारी खोजदृष्टि से उजागर हुईं "you can't call it a folk instrument that is plays a public places during holly festivals. The Santoor cannot be played on the road side. There had to be a saint or peer in the mehfil when the santoor played that's why it never cought public eye for years. You will not see a dancer dancing to Santoor Music. It is essentially a spritual instrument."

अतएव लोकवाद्य से ऊपर इसे पद्म श्री विभूषित प. भजन सोपोरी ने तारों की गुणात्मक संख्या, गेज़, नई वादन-विधियों, नये कलेवर जैसे तुम्बा, एम्प्लीफायर, तरब चिकारी और ख़रज के समावेश से मींड़ व गमक एवं अन्य शास्त्रीय अलंकरणों के सफल प्रयोग से उसे शास्त्रीय दर्जा दिला दिया, जो कि बकौल पं. सोपोरी के ''जो कि वर्ष 1950 तक उसमें संभव प्रतीत नहीं होता था।''

दिनांक 23 जून को स्व. पद्मश्री विभूषित पं. भजन सोपोरी जी की परम्परा के प्रबल प्रतिनिधि पुत्र पं. अभय रूस्तम सोपोरी से लिये गये साक्षात्कार के अनुसार जब उनसे मैंने पूछा कि आपके पिता पं. भजन जी के कार्य को आपने कैसे आगे बढ़ाया के उत्तर में सोपोरी बाज के बारे में कुछ महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान कीं कि ''गायकी और तंत्रकारी का मिश्रण इस बाज की ख़ासियत है। जब गायकी की बात करते हैं तो ध्रुवपद, ख्याल और तराना आदि एवं तंत्रकारी में दादिर दारा बोलों का निकास कैसे हो इसके लिए जो ग्लाइड वर्क पापा ने ही इसे स्थापित किया था उसमें मींड, गमक, ग्लाइड्स एवं टेक्नीकल हेंड की एप्लीकेशन पर काम जैसे मींड में खनक के लिए तरबों को जोड़ा। जो पहले संतूर में डेढ़ सप्तक की रेंज थी वह अब साढ़े पांच तक बढ़ गई, जिसमें ढाई तो मींड़ से ही तय कर ली जाती है। मैंने इसमें दो सिस्टम और जोड़े जिसे मैं 'ओपन स्ट्रिंग कॉन्सेप्ट', जिसमें ज़वारी पर काम होता है। संतूर में पॉइन्टेड बृज होते हैं उसमें तानपुरे, एवं सितार के बृज का प्रयोग किया, तो जो पापा ने ग्लाइड्स बनाये उसके डाइमेन्शन्स में काफी फ़र्क और एक हद तक काफी संशोधन हुआ उसमें सितार एवं सरोद आदि वाद्यों की तकनीक को भी जोड़ा, उससे स्वर का दीर्घत्व और बढ़ गया यानि हम 1 मिनट तक भी मींड़ को बनाये रख सकते हैं जो कि सन्तूर में दुर्लभ ही था। इसे मैंने 'Enhanced sustain Technique' नाम दिया। इसके अलावा भी पापा ने जो गतें बनाईं, उन्हें भी नये रंगों और आयामों के साथ और बेहतर बनाने की कोशिश की, यद्यपि ये गतों की निर्मिति सोपोरी बाज का ही एक अंग है। हमारे परदादा और उनसे भी पहले जो खयाल आदि बंदिशें थीं उन्हें शैवाइट सूफी परम्परा से शास्त्रीय संगीत की परम्परा में उन्मुख किया। मैंने भी अपने स्तर पर ज़्यादा नहीं अपितु कुछ ख्याल भी बनाये। 5 रागों का निर्माण भी किया, जिसमें राग महाकाली (2019), शारदा (2020), निर्मल कौंस (2009), भगवती (2024) और दो वर्ष पूर्व पिता जी को समर्पित कर 2023 में राग भजनेश्वरी भी मैंने बनाई। इस प्रकार मैं मानता हूँ कि पिताजी ने कोई ऐसी चीज़ नहीं छोड़ी, जो हमें साधने के लिए छोड़ गये। जो उन्होंने बनाया, उसी की साधना ही मुश्किल है किन्तु मैंने पिताजी की ईज़ाद की गई चीज़ों को ही नये आयाम देने की कोशिश की। 30 तारों के एक वाद्य की रचना भी की, जिसे ''सुर संतूर'' नाम दिया।

कुल मिलाकर लगभग 1956 के बाद इस वाद्य को नई ऊँचाइयाँ पं. शिवकुमार शर्मा जी, बाद में उनकी परम्परा में पुत्र राहुल शर्मा, शिष्या श्रुति अधिकारी एवं सोपोरी बाज में भी उज्जैन की वर्षा अग्रवाल आदि महिलाओं ने पुरूषों के एकाधिकार को तोड़ा। इस क्षेत्र में पद्म श्री विभूषित पं. सतीश व्यास, पं. तरूण भट्टाचार्य एवं उ. अनवर हुसैन 'नीलू' आदि नाम और जुड़े।

इस प्रकार संतूर आज़ सर्वाधिक लोकप्रिय शास्त्रीय वाद्यों में गिना जाता है, जिसका फिल्मों में भी बहुतायक प्रयोग हुआ है, जिसमें 'सोपोरी बाज' और भी नई संभावनाएँ जगाता है।

संपर्क : 118-ए, 'रसमंजरी', गेटोर रोड़,
ब्रह्मपुरी, जयपुर (राजस्थान) मोबाईल: 9414336936, 9928277833

■

अद्वैत-विमर्श

अनुभव और अनुभूति आदि शंकराचार्य की अद्वैत दृष्टि में

डॉ. नुसरत मेहदी

भारतीय दार्शनिक परंपरा में 'अनुभव' और 'अनुभूति' मात्र इन्द्रिय-बोध या भावनात्मक आवेग तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह आत्मा के अद्वितीय सत्य तक पहुँचने की यात्रा के सूचक हैं। जब हम अनुभव और अनुभूति की बात करते हैं, तो यह एक भिन्न स्तर पर आत्मज्ञान की प्रक्रिया को दर्शाते हैं। अद्वैत वेदांत, विशेष रूप से शंकराचार्य के द्वारा रचित, इन दोनों अवधारणाओं का गहरा और सर्वांगीण विवेचन करता है। शंकराचार्य के दृष्टिकोण में, 'अनुभव' केवल एक प्रारंभिक संकेत है, जो आत्मा के अस्तित्व की ओर इशारा करता है, जबकि 'अनुभूति' वह अंतिम गंतव्य है, जहाँ ब्रह्मा और आत्मा के बीच का भेद समाप्त हो जाता है।

अद्वैत वेदांत का आदर्श वाक्य है: ब्रह्म सत्यम्, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर:। यह कथन न केवल ब्रह्म और जीव के बीच के भेद को समाप्त करता है, बल्कि यह दर्शाता है कि आत्मा का अनुभव ब्रह्म के एकमात्र रूप में विलीन होने की प्रक्रिया है। 'अनुभव' के द्वारा हम आत्मा की चेतना को पहचानते हैं, किंतु यह केवल एक सूक्ष्म बोध है। शंकराचार्य के अनुसार, यह अनुभव 'माया' या भ्रम में लिपटा होता है, क्योंकि ब्रह्म का असली स्वरूप इन्द्रिय-बोध से परे है। 'अनुभूति' वह परम अवस्था है, जहाँ साधक ब्रह्म के निराकार और निरुपाधि रूप का साक्षात्कार करता है। यह अनुभव शुद्ध आत्मा का होता है, जो न केवल मानसिक और बौद्धिक ज्ञान से परे है, बल्कि वह एक आध्यात्मिक जागरण का रूप है। उपरोक्त दोनों अवधारणाओं के सम्बंध में विश्व के अनेक दार्शनिकों ने भी लिखा है। पश्चिमी दर्शन में, इमैनुएल कांट ने अनुभव को a priori और a posteriori ज्ञान में विभाजित किया है। पहले को जन्मजात ज्ञान माना गया है, जबकि दूसरे को इन्द्रिय बोध से प्राप्त किया गया ज्ञान माना गया है। डेविड ह्यूम जैसे अनुभववादी इसे अंतिम सत्य मानते हैं, जबकि प्लेटो ने इसे आत्मा की स्मृति से जोड़ा। शंकराचार्य इन सभी दृष्टिकोणों से परे जाते हुए, अनुभव और अनुभूति की एक ऐसी विशिष्ट अवस्था का प्रतिपादन करते हैं, जो न तो केवल इन्द्रिय-बोध से होती है, न ही केवल मानसिक अवधारणाओं से, बल्कि यह आत्मा के गहरे और नि:स्वार्थ तत्व का प्रत्यक्ष साक्षात्कार है। शंकराचार्य के अनुसार, इन्द्रियों, बुद्धि, और मन से परे एक शुद्ध अनुभव है, जो आत्मा की निराकार स्थिति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत की दृष्टि से देखें तो 'अनुभव' वह अवस्था है जब साधक शास्त्रों, गुरु के वचनों और स्वाध्याय से ब्रह्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है। यह एक मानसिक तैयारी है, एक बौद्धिक और दार्शनिक प्रक्रिया है। परंतु अनुभूति 'वह अवस्था है जब साधक अपने अस्तित्व को ब्रह्म के रूप में साकार अनुभव करता है। शंकराचार्य के शब्दों में, ' अहं ब्रह्मास्मि की अनुभूति वह स्थिति है, जहाँ द्वैत का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, और आत्मा की ब्रह्म के साथ पूर्ण एकता स्थापित होती है। 'अनुभूति' निराकार और निरुपाधि होती है, इसका कोई समय, स्थान, या वस्तु नहीं होती-यह केवल एक आत्मिक जागरण का क्षण होता है, जो सभी सीमाओं को लाघता है।

शंकराचार्य की अनुभव से अनुभूति की यात्रा को समझने के लिए अनेक दृष्टांत हैं उनमें से एक प्रसिद्ध दृष्टांत है काशी में चांडाल से हुई उनकी भेंट। जब शंकराचार्य ने चांडाल से रास्ता छोड़ने को कहा, तो उसने सवाल किया, 'शरीर को हटाना है या आत्मा को?' इस प्रश्न ने शंकराचार्य को झकझोरा और उन्होंने महसूस किया कि ब्रह्म सब में एक ही रूप में विद्यमान है-न कोई ऊँच, न कोई नीच। यह केवल बौद्धिक प्रश्न नहीं था, बल्कि यह आत्मिक जागरण का पल था। इस अनुभव ने उन्हें यह समझने में मदद की कि आत्मा का सत्य न केवल बाहरी शरीर या आंतरिक मन से जुड़ा होता है, बल्कि वह सार्वभौमिक ब्रह्म के एकीकरण में विलीन होता है। इस प्रकार, शंकराचार्य ने अपने जीवन में स्वयं अनुभव किया कि अनुभूति वही है जो वास्तविक सत्य से जुड़ी होती है, जो मानसिक या बौद्धिक सीमाओं से परे है।

अनुभव और अनुभूति का यह विमर्श हमें आत्मा के सत्य स्वरूप की ओर ले जाता है। आदि शंकराचार्य ने न केवल अद्वैत को तर्क से प्रमाणित किया, बल्कि उसे जीवन में जीकर दिखाया। उनके लिए दर्शन, साहित्य, जीवन, और आत्मा-सभी एक एकल प्रकाश बिंदु में विलीन हो जाते हैं। यही अद्वैत का परम सत्य है, जहाँ अनुभव आत्मा की अनुभूति में लीन हो जाता है, और यह अनुभूति शुद्ध, निराकार और चिरकालिक होती है। शंकराचार्य ने अनुभव और अनुभूति की जो गहरी व्याख्या दी, वह न केवल दार्शनिक दृष्टि से, बल्कि जीवन के हर क्षण में प्रत्यक्ष रूप से जीने की प्रेरणा देती है।

लेखिका : मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी की निदेशक हैं।
मोबा. 9179003206

युवा कलाकारों की प्रदर्शनी-जहां रंग ही नहीं रिसते कलम की नोक से

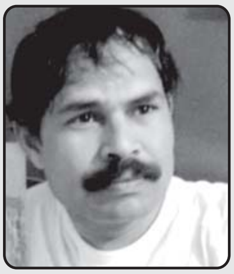

चेतन औदिच्य

वे सब युवा हैं। उन्होंने अपनी मिट्टी, अपने गाँव, अपने शहर और अपने त्योहारों के साथ अपनी ख्वाहिशों को कैनवस पर उतारा, दीवार पर टांगा, धरती पर बिछाया। अपने हिस्से के स्पेस पर दुनिया जहान के मुद्दों के साथ वे बेहद मजबूती के साथ खड़े होने की कोशिश में सामने आए। इस अभिमान के साथ कि युवा ऊर्जा अपना खुद का आकाश रचने को प्रतिबद्ध हैं। उनकी रचनाएं किसी से तुलना करके अभिव्यक्त नहीं हुई, बल्कि अपने बूते आवाज़ देती सामने आई। प्रतिस्पर्धा से बाहर वे अपनी मेहनत के रंगों में डूबे हैं। उनकी कृतियों को देखकर लगता है कि सोशल मीडिया के हो-हल्ले को देखकर उनमें से कोई भी युवा हतोत्साहित नहीं हैं। अपनी कला को रोज़ रोज़, थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ाते हुए उन्होंने अपना काम सींचा। रंग, पोत , तकनीक और अपने भीतर के द्वंद्व से खेल कर उन्होंने सीखा है- सीख रहे हैं। गलत हुआ तो उसे होने दिया — अपने प्रयासों की ग़लती से ही वे सही रास्ते को तलाशते नज़र आते हैं। वे प्रयोग करते हैं, कृतियां बनाते हैं। उन कृतियों से सवाल खड़े करते हैं। ....मैं बात कर रहा हूं मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय के दृश्य कला विभाग के स्नातकोतर विद्यार्थियों की। जिनकी वार्षिक कला प्रदर्शनी हाल ही में दृश्य कला संकाय की गैलरी में संपन्न हुई। जिसमें लगभग 70 कलाकृतियों को प्रदर्शित किया गया। प्रदर्शनी में पेंटिंग्स, ग्राफिक्स कला, डिजिटल आर्ट, फोटोग्राफी और मिश्रित माध्यमों की कृतियों के साथ इंस्टॉलेशन आर्ट को दिखाया गया। प्रदर्शनी का उद्घाटन कुलपति प्रो. सुनीता मिश्रा ने किया। अतिथि के रूप में कलाविद् प्रो.सुरेश शर्मा के साथ प्रो. हेमंत द्विवेदी, प्रो. मदन सिंह राठौड़, डॉ. शाहिद परवेज, डॉ. दीपिका माली, डॉ. कुंजन आचार्य, डॉ. युगल किशोर सहित कई कलाकार उपस्थित रहे।

वे कैनवस से डरे नहीं
उन्होंने
चुना उसे
आत्मा की दीवार की तरह !

वे वहां
रंगों की ध्वनियों से
करते हैं बातें
मतलब बेमतलब की !

उन्होंने
दिल की धड़कन को सुना है
और
रंगों में लहू को बुना है !!

विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले दृश्य कला के युवा विद्यार्थी कलाकारों में छाया जैन, हिना सुथार, हितिशा आमेटा, किरण सुखवाल, कमल प्रजापत, मनीषा रावल, मोहित व्यास, प्रियल हरकावत, संजय मेघवाल, सिद्धिका दया, तुलसी प्रजापत, उमा ओड, यशस्वी श्रीवास्तव, यशराज सोनी, भव्या सिंह यदुवंशी, भूमिका देपुरा, खुशबू छीपा, कुणाल सेन, महिका कुमावत, मानसी सोनी, रितिका श्रीमाली, सबल देवड़ा, तंसिहा सालवी, वंशिका जलोटा, विभा पटेल, विनीता सिंह निर्वाण, विशाखा रेगर और ज़ेनब की कलाकृतियां प्रदर्शनी में शामिल की गई। सभी युवा कलाकारों ने अपना श्रेष्ठ सृजन देने का प्रयत्न किया। इसमें सामाजिक बदलाव और वर्तमान समय की परिस्थितियों को कलाकारों ने अपने अनुभव संवेदन के साथ अभिव्यक्ति दी है। छाया जैन ने ओवर क्राउडेड कबूतरों का फोटोग्राफ प्रदर्शित किया है। समुद्र और कबूतरों के झुंड का कोण एक वक्रता को उपस्थित करता है जिसमें कबूतर अन्य पक्षी-कींटो के लिए एक खतरे का संकेत देते उभरते हैं। हिना सुथार का चित्र एक स्त्री और उसके भीतर के कलाकार की आंतरिक मौन-मुखरता को प्रस्तुत करने वाला है। हितीशा आमेटा ने प्रेमाभिव्यक्ति को रचा है वहीं किरण सुखवाल और कोमल प्रजापत के छापाचित्र सुंदर संयोजन के साथ रचे गए हैं। मनीषा रावल की पेंटिंग में पर्ण-वलय के सुकोमल प्रवाह को देखा जा सकता है।

मोहित व्यास ने समाज में व्याप्त जादू टोना की क्रिया विधि को एक टोटके का रूप देकर संस्थापन के रूप में रखा है। यह संस्थापन मनोवैज्ञानिक आधार की अनेक परतें तो खोलता ही है साथ ही मुनुष्य की शुभ अशुभ मनोवृत्तियों को भी प्रभावी अभिव्यक्ति देता है । उन्होंने मिट्टी, गत्ता और संटियों पर लच्छों से कोयले के टुकड़े बांधे हैं तथा गत्ते पर खंड मांड कर चौसठ योगिनी बेदी (यंत्र) को मां काली के 64 रूपों में इंगित किया है। प्रियल हरकावत ने अवकाश को अमूर्त संयोजन से सज्जित किया है। उनकी

अपनी कलाकृति के साथ कलाकार

इंस्टॉलेशन

पोती योजना आकर्षित करने वाली है। युवा कलाछात्र संजय मेघवाल ने बाल विवाह की कुरीति को दर्शाने के लिए पत्थर पर तोरण बांध कर प्रदर्शन किया है। यह समाज के संवेदन हीन हो जाने का प्रभावी प्रयोग है। पत्थर से दिखाया गया है कि समाज की सोच कुछ मामलों में पत्थर जैसी रूढ़ हो गई है। आटा गूंथने की परात को बाल विवाह के समाचारों से सजाया गया है। परात इसलिए कि, आज भी अनेक समाजों में एक दो वर्ष के बच्चों को परात में बैठाकर फेरे दिलाए जाते हैं। सिद्धिका दया का प्रिंट अबूझ आकार में इल्यूजन रचता है जो बरबस प्रभावी बन पड़ा है। तुलसी प्रजापत ने नीले रंग की प्रमुखता से ज्यामितीय संयोजन में किसी वेग को प्रमुखता दी है। उमा ओड का कैनवस जैसे किसी द्विआयामी स्टिललाइफ के नये वर्जन के साथ किसी प्रश्नवाचकता को सामने लाता है।

मास्टर डिग्री में फाइनल ईयर के स्टूडेंट यशराज सोनी ने 'अनकही बातें' शीर्षक से एक इंस्टॉलेशन आर्ट बनाया है। इसमें टाट के बोरों पर आर्ट वर्क किया है तथा उन्हें एक ऐसे अनुक्रम में संयोजित किया है कि बहुत दूर से ही वह ध्यान आकर्षित कर देता है। इसमें उन्होंने एक आम आदमी की पीड़ा को प्रतीकात्मक रूप से प्रदर्शित किया है। यशराज के अनुसार कैसे किसी आदमी की खुशियां अंदर ही अंदर घुटते हुए धीरे-धीरे कम हो जाती हैं और दुख उस पर हावी हो जाता है। कहना होगा कि प्रदर्शनी में यशराज की पेंटिंग भी अपनी परिपक्वता के साथ रची गई है।

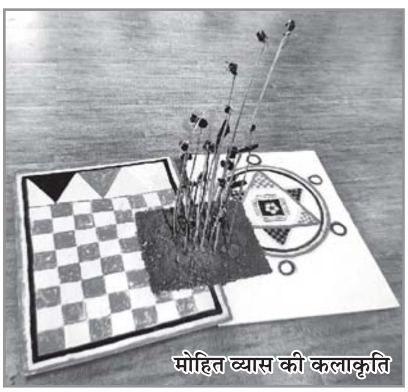
मोहित व्यास की कलाकृति

यशस्वी श्रीवास्तव ने किसी विराट पुष्प के शिल्प को छत से औंधा लटका कर नई तरह से कलात्मक अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। भव्या सिंह यदुवंशी ने ब्रज के होली महोत्सव का छायाचित्र रख कर एक उल्लासमय वातावरण प्रस्तुत किया है। भूमिका देपुरा के प्रिंट में मिनीमल आर्ट स्टाईल के बिंदु आघात उल्लेखनीय बन पड़े हैं। खुशबू छीपा की पेंटिंग में बनाया गया कोण तथा मानवाकृति मुख किसी विशेष विचार की अभिव्यक्ति करने वाले हैं। कुणाल सेन की पेंटिंग में संतुलित रंगों का प्रयोग देखने लायक बना है। उनके रचे पोत से अनेक संभावनाएं नज़र आती हैं। महिका कुमावत का चित्र देखकर एकबारगी अर्पिता सिंह की कृतियां स्मरण हो आती हैं। महिका का चित्र बहुअर्थी है जहां स्त्री-विमर्श प्रमुखता से उद्घाटित होता है।

मानसी सोनी और रितिका श्रीमाली के छायाचित्र सामान्य में असामान्य की जुगत करते प्रतीत होते हैं।मानसी सोनी ने अपने इंस्टालेशन आर्ट में बच्चों के खिलौने को प्लास्टिक बैग में बांधकर उनके हाथों में मोबाइल थमाए हैं। इसमें दिखाया गया है कि आज के डिजिटल युग में बच्चों का बचपन स्क्रीन के पीछे सिकुड़ गया है। सबल देवड़ा ने क्षय वृद्धि का सुंदर फोटोग्राफ रखा है वहीं तंसिहा सालवी का प्रिंट पर्यावरण की दुश्चिंताओं को सामने लाने वाला है। वंशिका जलोटा ने विरासत भवन का छायाचित्र प्रदर्शित किया है। विभा पटेल ने अपने चित्र में गहरा रूपक रचा है। वहां समय की विडंबना को प्लास्टिक बोटल तथा मानवाभास के रूपाकार में पेंट किया गया है। थैलेसिमिया से पीड़ित विभा पटेल ने अपने आर्ट के जरिए एक थैलेसिमिया पेशेंट की लाइफ के बारे में बताया। डीएनए डिफेक्ट के कारण सफेद रंग के हाथी पर 120 रेड बीड्स लगा कर उन्होंने कृति रूप दिया है जिन्हें एक लूप में दिखाया गया है। बताया गया है कि थेलेसिमिया पेशेंट को हर 20-25 दिन में ब्लड ट्रांस्फ्यूजन के लिए जाना पड़ता है जो लूप की तरह ताउम्र की पीड़ा है। इस विडंबना के ठीक विपरीत विनीता सिंह की पेंटिंग में उष्ण रंगों का सुंदर संयोजन दिखाई पड़ता है । विशाखा रेगर के तकनीकी उलझनों का प्रदर्शन करता प्रिंट प्रभावी है। प्रदर्शनी का समापन प्रकृति की लींक लींक एक खुले आसमान के छायाचित्र के साथ होता है। जिसे तीसरे सेमेस्टर की छात्रा ज़ेनब ने बहुत खूबसूरती से कैमरे में उतारा है।

यशराज सोनी की कृति 'अनकही बातें'

कहा जाए कि इन युवा कलाकारों की नवीन अभिव्यक्तियां कलाओं का उजला संसार रचने को उद्यत है। सभी कलाकारों तथा उनके कला गुरुओं को शुभकामनाएं बनती हैं। लियानार्डो दा विंची के शब्दों में 'कला कभी पूरी नहीं होती, केवल छोड़ दी जाती है।' शुभमस्तु !

स्तंभकार लेखक: वरिष्ठ चित्रकार और कवि हैं।
सम्पर्क : 49, सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर, उदयपुर- 313001 (राज.)
मो. 9602015389

वाद्यों के प्रतिरूप कलाकारः राहुल श्रीवास

अंतरा श्रीवास

भारतीय संगीत में प्रयोग होने वाले वाद्यों जैसे की तबला, हारमोनियम, तानपुरा, वीणा, मैड़ोलिन, रूद्रवीणा, स्वरमंडल, गिटार, ड्रम, हिंसक, दिलरूबा, सरोद, तौस, सितार, ड्रर, एक सितार, पखावज, बांसुरी, यह सारे 17 वाद्य बनाते हैं।

ये सारा मटेरियल सागोन की लकड़ी का है और पुराने फर्नीचर की बची हुए लकड़ी, कपड़ा, रंग, इन सभी चीजों से बनाया जाता है। जिसे हम धूल लगने पर पानी से धो भी सकते हैं।

मैंने शास्त्रीय संगीत सीखा और मुझे उसमें रूची भी है। मैं सभी वाद्यों को अपने पास रखना चाहता था पर यह सब संभव नहीं था। और उनका रखरखाव बहुत मुशकिल था। वहीं से मुझे प्रेरणा मिली। मैंने सारे वाद्य बनाए। आजकल के लोगों को इस चीजों के बारे में ज्यादा नहीं पता और वो इन सब चीजों का महत्व भी नहीं जानते।

मैं आगरा, दिल्ली, लुधियाना, तमिलनाडु, भोपाल, चैन्नई, मुंबई, महाराष्ट्र, बैगंलोर, ग्वालियर, वैश्विक शिखर सम्मेलन, मध्य प्रदेश पर्यटन विकास निगम के सहयोग से मेरी प्रर्दशनियाँ ग्वालियर तानसेन शताबदी समारोह, आर्ट ऑफ लिविंग बेंगलुरु, भोपाल लोकरंग, तथा सरज कुण्ड हरियाणा में भी लगाई गई जिसे पर्यटकों द्वारा खूब सराहया गया। ऐसी चीजों को वो लोग ज्यादा लेना पंसद करते हैं। जिन्हें संगीत की और हाथ से बनी चीजों से लगाव होता है और जिन्हें कलाकारी वाली चीजें अच्छी लगती है।

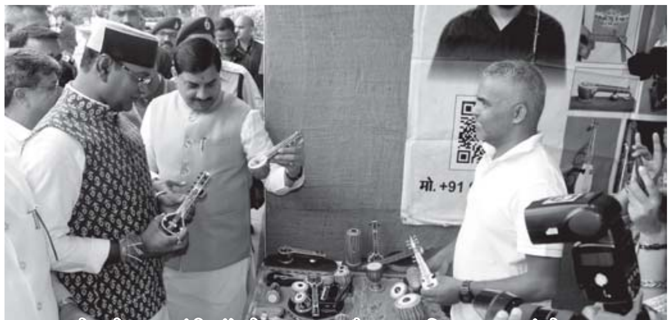

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव और सहकारिता, युवा एवं खेल कल्याण मंत्री विश्वास सारंग राहुल श्रीवास द्वारा बनाये गए वाद्य यंत्रों की सराहना करते हुए।

मैंने संगीत में स्नातक किया है, और कंप्यूटर में भी, संगीत की कक्षा भी लेता हूँ, कंप्यूटर से म्यूजिक बनाना भी सीखा है, मैं डी.जे. भी हूँ, 24 घंटे 24 मिनट 24 सेकंड तबला बजाने का विश्व रिकार्ड भी बनाया है।

मेरे घर का माहोल हमेशा कलाकारियों से भरा रहा है। मेरे पिताजी विश्व प्रसिद्ध कला संस्था में काम करते थे और वर्तमान में कला और संस्कृति से जुड़े हुए है। माता जी भी अपने हाथों से बहुत सी चीजें बनाती है, जैसे मंडाना, जूट की बुनाई, रंगोली, आदि। पत्नी एक स्कूल में टीचर है और सिलाई भी करती है। भाई भी स्कूल में संगीत का टीचर है और रिकॉडिंग स्टडियों भी चलाता है। बहन राजस्थान में एक समाचार चैनल चलाती है और टीचर भी है। मेरे दो बच्चे है एक लड़की अंतरा श्रीवास और एक लड़का सार्थक श्रीवास। दोनों को भी गायन, वादन में विशेष रूचि है। इसका प्रमुख कारण हमारे घर का वातावरण पूरा-का-पूरा संगीत आधारित होना। ऐसा मैं मानता हूँ।

मेरी चर्चा के दौरान उन्होंने जैसा मुझे बताया।

नन्हीं कलम की लेखिका की 14 वर्ष उम्र तथा 10वीं की छात्र है।

गिटार वादक एवं संगीतकार हरीश श्रीवास से हरिन श्रीवास की बातचीत

मैंने जीवन संगीत बहुत काम सीखा पर संगीत से जीवन ज्यादा सीखा

हरिन श्रीवास

● संगीत में रूझान

● मेरा मानना है कि इस संसार में होने वाली हर घटना पहले से ही निश्चित है। जिसे हम अपने संस्कारों में ईश्वर की मर्जी भी कहते हैं। उसी तरह मेरा संगीत में होना भी इससे जुड़ा हुआ है।

पिताजी का भारत भवन (विश्व प्रसिद्ध कला केंद्र) में कर्मचारी होना और वहाँ आने वाले उन सभी कलाकारों से मिलना जो विश्वप्रसिद्ध हैं। पिताजी की प्रेरणा बनी की मैं और मेरे भैया अनोखी दुनिया का हिस्सा बनें।

इस तरह हमारे परिवार में संगीत का आना हुआ और अब आने वाली पीढ़ी को भी यह प्रोत्साहित कर रहा है।

● संगीत में शिक्षा

● वैसे तो मैंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत (गायन एवं वादन) में प्राचीन कला केंद्र चंडीगढ़ से एम.ए. की शिक्षा ली है। और पश्चिमी संगीत (Westerm music) एवं संगीत उत्पादन (Music production) की शिक्षा स्वाध्याय से ली है। पर फिर भी मैं कहना चाहूँगा की यह अभी जारी है एवं निरंतर इसे जारी रखना चाहता हूँ।

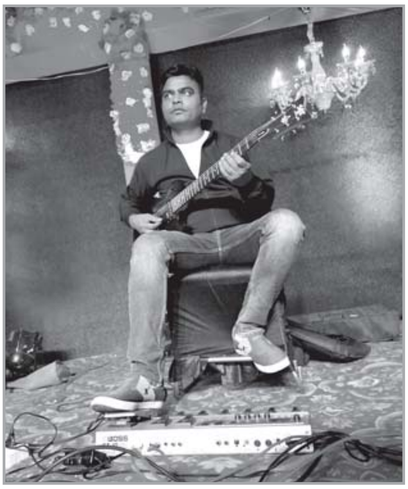

● आपके जीवन में संगीत का महत्व

● मैं यह कहना चाहूँगा की मैंने जीवन संगीत बहुत कम सीखा पर संगीत से जीवन ज्यादा सीखा।

जब-जब हम जीवन में कठिनाईयों से गुजरते है तो हम अक्सर ईश्वर की और मुड़ कर देखते हैं। उनसे मार्गदर्शन और सात्वना मांगते हैं। जैसे-जैसे हम इन अनुभवों से गुजरते हैं। हम ईश्वर की उपस्थिति एवं मार्गदर्शन को महसूस करते हैं। और इस तरह हमारा ईश्वर पर उनकी योजनाओं पर विश्वास बढ़ता जाता है।

● संगीतिक यात्रा

● मैं लगभग 25 साल से संगीत के क्षेत्र में काम कर रहा हूँ। जिसमें मैंने 2000 से अधिक मंच प्रदर्शन का प्रदेश और देश में अनुभव लिया और ये जारी है। लगभग 50 से ज्यादा टेलीफिल्म, विज्ञापन और नाटकों में BGM (Back ground Music) और गीतों में संगीत का भी मुझे अवसर मिला है। और वर्तमान में बच्चों की संगीत शिक्षा पर मेरा रिसर्च चल रहा है। जिसकी प्रेरणा मुझे परिवार के बच्चों को संगीत सिखाने से मिली है। इस क्षेत्र में स्कूल एवं अन्य बच्चें शामिल हैं। जिसमें मुझे लगभग 10000 से ज्यादा बच्चों को संगीत सिखाने का अवसर मिला और ये जारी है।

रिकार्डिंग स्टूडियो: हरीश श्रीवास

● पाठकों को संदेश

● मुझे लगता है 'धन की खुशी से अहंकार आता है और मन की खुशी से संस्कार' हमे हमारे जीवन में सौंदर्य और संस्कृति के विज्ञान को समझना बहुत जरूरी है। और संगीत शिक्षा से बहुत ही आसानी से समझाया जा सकता है।

बच्चों को किसी भी रूप की शिक्षा देना मैं समझता हूँ एक मनोविज्ञान है। जिस तरह माँ अपने बच्चे को कई तरह से कोशिश करके कई चीज सिखाती है। और उसकी मन: स्थिति समझ कर बदलने की कोशिश करती है। संगीत शिक्षा बच्चों में सीखने की कला को और भी दिलचस्प एवं रोचक बना देती है। जिस तरह फिल्म में किसी भाव को विस्तार से बताने के लिए गाना आता है। नर्सरी (Pre school) के बच्चों को कविताएँ (Poems) गाकर सिखाने की प्रथा है। इंसानी जीवन में भी भावों को संगीत से समझने की कला अंतर्निहित है।

नन्हें लेखक की उम्र 12 वर्ष तथा कक्षा 7 का छात्र है।

■

तबला वादक राहुल श्रीवास

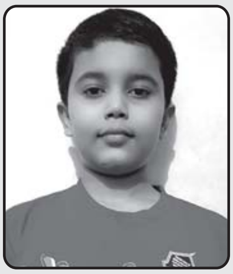

सार्थक श्रीवास

राहुल श्रीवास एक तबलावादक है। 16 साल की उम्र में वे तबला बजाने लगे थे। उनको उस्ताद जाकिर हुसैन से प्रेरणा मिली थी। उनके गुरु जी का नाम आषीश तैलंग जी है। वे प्रयाग संगीत महाविद्यालय में भी सीखते थे। उन्होंने अपनी पहली प्रस्तुति उनके स्कूल के ऐनुअल फंक्शन में बजाया था। 8 जून 2003 को 24 छंटे 24 मिनट 24 सेकंड निरंतर तबला बजाने का रिकार्ड बनाया था। उनकी यह प्रस्तुति समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुई थी। मैं उन्हीं से तबला सीखता हूँ। उनके पिता भवँरलाल श्रीवास जी ने

राहुल श्रीवास ने 8 जून 2003 को 24 छंटे 24 मिनट 24 सेकंड निरंतर तबला बजाने का रिकार्ड बनाया

उनकी रूचि देखते हुए उनको तबला सीखने को कहा जब वे 10वीं कक्षा में थे। उन्होंने कोलकाता, तिरूअनंतपुरम्, इलाहाबाद, यूथ फेस्टिवल, भारत भवन, रवींद्र भवन, और गांधी भवन जैसे कई जगहों पर प्रस्तुति दी है। कई लोगों को तबला भी सिखाया है। राहुल श्रीवास एक तबला कलाकार के साथ वाद्यों के प्रतिरूप के कलाकार भी हैं।

नन्हें लेखक की उम्र 11 वर्ष तथा कक्षा 6 का छात्र है।

डीजे राहुल श्रीवास

तबला क्रिकेट की तरह रोचक बने

रिकार्ड का जुनून

भोपाल,8 जून । तबला वादक तबला बजाते हैं और लोग सुनते हैं पर समझते नहीं हैं। पर वे चाहते हैं कि तबले को क्रिकेट की तरह रोचक बनाया जाए ताकि श्रोता सुनने के साथ-साथ समझ भी सकें। ये विचार थे राहुल श्री वास के ।

सुबह आठ बजे, तैलंग संगीत महाविद्यालय शाहपुरा का परिसर सुमधुर नाद से गूंज रहा था और इसके सूत्रधार राजधानी के युवा तबला वादक यही राहुल श्रीवास हैं। जिन्होंने आज चौबीस घंटे का लगातार तबला वादन शुरू किया है।

इस तरह का प्रयास करने वाले संभवत: मप्र के वे पहले कलाकार हैं। बीकाम अंतिम वर्ष के छात्र श्रीवास पंडित सिद्धराम स्वामी कोरवार से तबले के गुर सीख रहे हैं ।

राहुल को संगीत विरासत में नहीं मिला। उन्होंने 16 से 20 घंटों के रियाज से तबले को साधा है। इस तरह के रियाज को 'चिल्ला' कहा जाता है। कुछ माह पहले नेशनल यूथ फेस्टिवल तिरूअनंतपुरम् में इन्होंने मप्र का प्रतिनिधित्व किया। मशहूर तबला वादक उस्ताद जाकिर हुसैन के फैन इस युवा तबला नवाज ने बताया कि इस अनुभव के बाद लिम्का बुक आफ रिकार्डस के लिए पहल करेंगे।

राहुल श्रीवास ने 40 दिन का चिल्ला का अभ्यास किया था। इस चिल्ला में उन्होंने रोजाना मां सरस्वती की पूजा अर्चना करते लगातार 8 घंटे बगैर खाए-पीये तबला बजाया। उनका कहना है कि लगातार तबला बजाने में सही तकनीक का इस्तेमाल करना पड़ता है, साथ ही बीच-बीच में ताल बदलने से स्फूर्ति बनी रहती है। वे मानते हैं कि दिल से अभ्यास करने से ही कोई भी व्यक्ति निपुण हो सकता है। उनका कहना है कि कला का नशा दुनिया में किसी भी नशे से कई गुना अच्छा है।

9 जून 2003 सोमवार, दैनिक भास्कर

श्री जानकी बैंड : संगीत, संस्कृति और महिला सशक्तिकरण का संगम

वीर भारत न्यास द्वारा 'जल गंगा संवर्धन' सदानीरा आयोजन 20 से 25 जून 2025 को भारत भवन में श्री जानकी महिला बैंड की शानदार प्रस्तुति सदानीरा के 6 दिवसीय आयोजन में देखने को मिली। संस्था अपने नव सृजनात्मक प्रयोगों के लिये जानी जाती है। 'श्री जानकी बैंड ऑफ विमेन ऐसी ही एक अभिनव पहल है। लॉकडाउन के दौरान, जब दुनिया थम गई थी, तब श्री जानकी बैंड ने जन्म लिया। यह एक विमेन बैंड है, जो महिला सशक्तिकरण और संगीत के प्रति अपने जुनून को एक साथ लेकर चल रहा है। दविन्दर सिंह ग्रोवर ने श्री जानकी बैंड की परिकल्पना को साकार किया और इसे एक नई दिशा दी। उनकी दूरदर्शिता और संगीत के प्रति जुनून ने इस बैंड को एक अद्वितीय पहचान दिलाई। डॉक्टर शिप्रा सुल्लेरे ने श्री जानकी बैंड को संगीत की नई दिशा दिखाई। उनकी विशेषज्ञता और संगीत के प्रति समर्पण ने इस बैंड को एक अद्वितीय साउंड दिया। 20 सितम्बर 2020 को इस बैंड ने अपनी पहली ऑनलाइन प्रस्तुति दी, श्री जानकी बैंड की स्थापना में डॉ. अभिजात कृष्ण त्रिपाठी, विनय शर्मा, संजय गर्ग और रविन्द्र मुरहार का विशेष सहयोग रहा। उनके समर्थन और मार्गदर्शन ने हमें इस बैंड को स्थापित करने में मदद की।

विश्व में महिलायें हर क्षेत्र में नये-नये अयाम स्थापित करती रही हैं। इस बैंड की स्थापना के पीछे भी यही उद्देश्य है कि महिलाओं द्वारा किये जा रहे कला और संगीत के क्षेत्र में सृजनात्मक कार्यों को देश दुनिया में सशक्त और नई पहचान मिल सके और नई पीढ़ी को इस बैंड से प्रेरणा मिले ।

श्री जानकी बैंड द्वारा बुन्देली, जनजातीय लोकगीत, पंजाबी लोकगीत, देश भक्ति गीत, भक्ति संगीत, रविन्द्र संगीत, रंग संगीत, शास्त्रीय एवं उप शास्त्रीय संगीत, कबीर वाणी, भोजपुरी, गुरुबाणी, कविताओं आदि की प्रस्तुति दी जाती है ।

अब तक इस बैण्ड ने पंजाबी साहित्य अकादमी भोपाल, उत्तर-मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र प्रयागराज, उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत अकादमी भोपाल, खजुराहो महोत्सव 2020, 2021, 2022 एवं 2023, संस्कृति संचालनालय भोपाल, संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय नई दिल्ली, संस्कृति मंत्रालय, स्वराज संस्थान, भोपाल, अमृत महोत्सव डिण्डौरी, डोहेला महात्सव खुरई, भोजपुरी अकादमी भोपाल, म.प्र. खादी ग्रामोद्योग बोर्ड, भोपाल, 48वीं अखिल भारतीय पुलिस विज्ञान कांग्रेस भोपाल, 12वां विज्ञान फिल्म फेस्टिवल भोपाल, भारत भवन, युवा 8. सर्जना म.प्र.,उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, प्रयागराज, जश्न-ए-अदब, नई दिल्ली, हिंदी साहित्य भारती, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी एवं भगवती फाउंडेशन मुंबई आदि में लगभग 150 से अधिक प्रस्तुतियां दी है ।

सहभागिता से बैंड को गौरवान्वित करने वाली युवा महिला कलाकारः मुस्कान सोनी, उन्नति तिवारी, माही सोनी, मानसी सोनी, शालिनी अहिरवार, अर्पिता तिवारी, अनामिका बाजपेयी, चांदनी सेन, चेतना बैन, आयुष बर्मन तबला, ढोलक, राजवर्धन पटेल, मार्गदर्शन -लोकेश मालवीय, त्रिलोक संस्था के श्री जानकी बैंड ऑफ़ विमेन एक प्रेरणादायक उदाहरण है कि कैसे चुनौतीपूर्ण समय में भी नई पहल और संगीत की नई दिशा बनाई जा सकती है। ■

कविता

प्रेमशंकर शुक्ल की वाद्य कविताएं

रेखाचित्र: मनोहर काजल

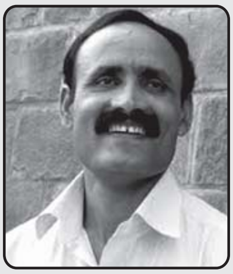

प्रेमशंकर शुक्ल

जन्म: 16 मार्च 1967

शिक्षा : साहित्य हिन्दी में स्नातकोत्तर उपाधि- प्रथम श्रेणी, प्रकाशित कविता पुस्तकें: कुछ आकाश, झील एक नाव है, पृथ्वी पानी का देश है सहित 9 कविता संग्रह प्रकाशित। पूर्वग्रह का संपादन, भारत भवन के प्रकाशनों का आकल्पन, म.प्र. कला अकादमी का रजा पुरस्कार सहित कई सम्मान प्राप्त। सम्प्रति : मुख्य प्रशासनिक अधिकारी, भारत भवन, भोपाल। सम्पर्क : भारत भवन, श्यामला हिल्स, जे. स्वामीनाथन मार्ग, भोपाल 462002 मो. 7987313800

इकतारा

इकतारा फक्कड़ वाद्य है
अपने एक तार पर गाता है
आख्यान-कविता, पद और लोकगीत

सन्यासियों, फकीरों को बेहद प्रिय है इकतारा

इकतारा से अधिक आँसूओं से भीगा
नहीं है अभी तक कोई वाद्य
इकतारा सुनना करुणा सुनना है
और बुनना है पूरे मन में उजाले का थान

इकतारा अकेले की विशालता है
मीरा-मन गाता रहता है अप्रतिम अध्यात्म

लोकगायक इकतारे के साथ
उलीच देते हैं भाव-अनुभाव
और करुणा-प्रेम से भीगता रहता है हमारा लोक

एक तार की ऐसी सामर्थ्य और उजास निहार
खुशमन इकतारे का साथ दे रही हैं उँगलियाँ

उमड़ी हुई है एक तार पर भक्ति
करुणा से भीज रही हैं दसों दिशाएँ
एक तार ने गा-गा कर चमका दिया है
करुणा-संवेदना की सारी धातु
और आलोड़न में बढ़ गया है अनुभूति का जल

सन्त कवियों के पद गाते-गाते
लोकगायक गा रहा है अब
श्रवणकुमार की कथा

कथा में जहाँ श्रवणकुमार को लगता है
राजा दशरथ का तीर
मुर्छित हो गया है वहीं इकतारा
और फूट नहीं रहे हैं तार-बोल

कुछ देर की चुप्पी के बाद
कथा के अनुरोध पर
इकतारा आगे बढ़ाता है कथा
जहाँ श्रवण के माता-पिता के शोक-संतप्त आँसू
गा नहीं पा रहा है गायक
और इकतारे के तार में भी
उठ रही है लगातार रोने की हिचकी

यह रोना चुपचाप रोना नहीं है
हत्या का पुरजोर विरोध है

शोक में डूबे हुए
इकतारे के सारे स्वर
सिसक रहे हैं
और दसों दिशाओं में भर गया है
कथा का सारा शोक !

सितार

(पण्डित रविशंकर को प्रणति)

उँगलियाँ कविता बुनती हैं
सितार के तार जिसे गाते हैं

आलाप, जोड़, झाला, लोकधुनें,
मीड़, गमक बजते हैं सितार पर
और संस्कृति के आँगन में
फैलता है आरोह-अवरोह भरा संगीत

स्वरों से भीजती है आत्मा
समय में अनूठी सुन्दरता सिरजता है समय

तपकौशल से सितार अपने तारों में
रचता रहता है संगीतकार का उर्वर हृदय

सुर से आलोकित अनुभूति
हो जाती है परमसुख से विभूषित

अनहद नाद की निरंतरता में
जीवन-मंगल की प्रार्थनाएँ
निर्मल उजाला रचती रहती हैं
अहर्निश

■

पुस्तक समीक्षा

क्रूरतम चालाकियों से निश्छल जीवन के सतत संघर्ष का सच्चा बयान – 'हल्दीघाटी हुई ज़िन्दगी'

पुस्तक विवरण–

पुस्तक शीर्षक	:	हल्दी घाटी हुई ज़िन्दगी
विधा	:	नवगीत संग्रह
गीतकार	:	डॉ. राम वल्लभ आचार्य
समीक्षक	:	लक्ष्मीनारायण पयोधि
प्रकाशन	:	आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल (म.प्र.)
पृष्ठ	:	164
मूल्य	:	₹300/–

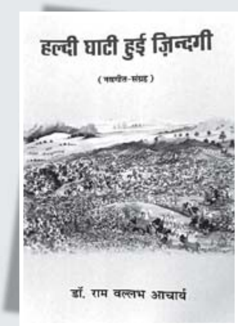

लक्ष्मीनारायण पयोधि

भाव के अनुरूप जब कुछ शब्द गुनगुनाहट में शामिल होते हैं तो गीत बन जाते हैं। भावोदय के क्षणों में सांगीतिक लय–ताल और गति के साथ शब्दों का साकार अवतरण ही गीत के जन्म की घटना है। इसे ही परिभाषित करते हुए ऋषि ने कहा है : **'गीयते इति गीतम'** यानी,जो गाया जा सके,वह गीत है। वरिष्ठ कवि डॉ. राम वल्लभ आचार्य का नवीनतम गीत संग्रह **'हल्दीघाटी हुई ज़िन्दगी'** इस अवधारणा का अनूठा उदाहरण है।

डॉ. राम वल्लभ आचार्य लंबे समय से गीत की साधना कर रहे हैं। वैविध्यपूर्ण सृजन आचार्य जी की विशेषता है और पहचान भी। 'राष्ट्र आराधन' से लेकर 'हल्दीघाटी हुई ज़िन्दगी' तक कुल प्रकाशित ग्यारह पुस्तकों में देशभक्ति,भजन,अध्यात्म,श्रृंगार, सामाजिक सरोकार और बालमन के भावों की गहरी अभिव्यक्ति है। अनुभूतियों को शब्दचित्र की तरह चाक्षुष बिम्बों में रूपांतरित करने की कला में आचार्य जी सिद्धहस्त हैं। प्रस्तुत गीतांश में मनुष्य की भावदशा को प्राकृतिक सौन्दर्य के समानांतर उसकी भौगोलिक पहचान के साथ लाक्षणिक कलात्मकता से तराशकर शब्दरूप गढ़ने की दक्षता देखी जा सकती है :

''मन में इतनी उलझन,
जितने सघन सतपुड़ा वाले वन।
हल्दीघाटी हुई ज़िन्दगी,
चेरापूंजी हुए नयन।
दिल्ली जैसा दिल बेचारा,
जीवन प्रश्नों से जूझे।
उत्तर किन्तु अबूझमाड़ से,
रहे अभी तक अनबूझे।
पीड़ाएँ नित रास रचातीं,
समझ हृदय को वृन्दावन'' (पृ.81)

डॉ. राम वल्लभ आचार्य
वरिष्ठ गीतकार,
(साहित्यकार लेखक)

इस गीत में मन की उलझन सतपुड़ा के विख्यात सघन वन,संघर्षपूर्ण जीवन ऐतिहासिक युद्धभूमि हल्दीघाटी,दुख के आवेग से बरसते हुए नयन अधिक वर्षा वाला क्षेत्र चेरापूँजी, देश की राजधानी दिल्ली जैसा शासक और निर्णायक की भूमिका में निरंतर कठिन प्रश्नों से जूझता दिल और विकास के दावों को धता बताता अपने पिछड़ेपन की अबूझ पहेली के साथ विकास–पुरुषों के सामने चुनौती की तरह डटे बस्तर के अबूझमाड़ की तरह अन्वेषण के मार्ग से गुज़रते जीवन के उत्तर हैं। इस पूरे परिदृश्य में पीड़ाएँ अपनी संपूर्ण भंगिमाओं के साथ हृदय के वृन्दावन में लीला पुरुषोत्तम जैसे दुख के साथ रास रचाती हैं। ये प्रयोग ही सर्जक की संवेदना के नये आयाम हैं। ऐसे ही अनूठे गीतों का संग्रह है – 'हल्दीघाटी हुई ज़िन्दगी'। मैं जानबूझकर 'नवगीत' शब्द का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि मेरी समझ में हम हर क्षण बदलते समय में जो सृजन कर रहे हैं, वह अपने समकाल को रेखांकित करने वाली नयी रचना ही होती है। किसी भी विधा के साथ केवल कोई विशेषण लगाने से ही वह अलग नहीं हो जाती,जबतक की उसके संरचनागत और रूपगत साँचे में बदलाव न हो।

गीत के नियमों को ध्यान में रखकर की गयी रचना गीत ही होगी,क्योंकि वह गाने के लिये रची गयी है,यानी **'गीयते इति गीतम'।** यदि वह गाने के लिये नहीं है तो फिर हम उसे गीत क्यों कहें, 'नव' विशेषण के साथ ही सही?

आचार्य जी आध्यात्मिक भावभूमि पर खड़े होकर पीड़ित मनुष्य के दुख की बात करते हैं। वे कहते हैं कि :

'जो श्रम सीकर की स्याही से,
लिखते रहे प्रगति की गाथा,
लेकिन शोषण की छुरियों से।
कटवाते सपनों का माथा।' (पृ.49)

श्रमिक की हमेशा यही नियति रही है - कल भी और आज भी। मज़दूर के मन की बात तो यही है कि : **'कर उपयोग फेंक देते सब, पत्तल-दोने हम।'** (पृ.47)

और इस तरह श्रमजीवी का द्वंद्व कभी विराम नहीं लेता। संग्रह में मज़दूरों के बहुत गीत हैं, जैसे :

'कड़ी धूप में जब दिन भर,
हम देह जलाते हैं।
तब जाकर इन हाथों में।
दो पैसे आते हैं।

आम आदमी की दुर्दशा का एक और चित्रण :

'हम प्यासे हैं और तुम्हारे घट में पानी है:
बंधु ! तुम्हारी यही सरासर बेईमानी है।

×××

हमने खोदा कुआँ
और जल तुमने खींचा है।

×××

हमने फोड़े पत्थर,
राजपथों पर तुम चलते।

×××

भरते तुम गोदाम,
हमारा चुरा-चुरा हिस्सा।
(पृ.59)

देश में इस असमान स्थिति का कारण कवि सत्ता को मानते हैं। उनके अनुसार:

'सत्ता की चूनर काली है,
बेहद बदनीयत माली है।
भ्रष्ट व्यवस्था की कीचड़ में
सबके हाथ सने।'(वही)

इसी तरह 'शपथ ले रहे' और 'निर्माण हो रहा' शीर्षक गीतों में भी शासन-प्रशासन में बैठे लोगों की चालाकियों और चालबाजियों तथा उनके भ्रष्ट चरित्र की ख़बर ली गयी है

संग्रह में अनेक जनगीत हैं। कुछ पंक्तियों में उनकी बानगी देखें '

'काम कराना हो तो बंदे,
अंटी ढीली कर

×××

सरकारी दफ्तर है यह
तेरी जागीर नहीं।
सीधी उंगली घी निकले,
तेरी तकदीर नहीं
मुद्दे पर आ, बात नहीं
तू खाली-पीली कर।' (पृ.104)

ऐसी अभिव्यक्ति के लिये यदि कवि पर तोहमत की तरह कोई विशेष ठप्पा लगाकर उसे किसी गैंग का सदस्य घोषित कर दिया जाये तो इसमें उसका क्या दोष? उसने तो अपनी भूमिका पहले ही चुन ली है कि जहाँ दुख,पीड़ा,शोषण और संघर्ष होगा,उसे उस दारुण भावदशा का स्वर बनकर मुखरित होना है। व्यवस्था जो भी हो,सत्याग्रही कवि तो प्रतिपक्ष में ही रहेगा।

अपनी भूमिका पर कवि ने पूरी ईमानदारी के साथ कहा है

'आलोचक ही रहे,
नहीं हम चारण-भाट हुए।'

अथवा

'हमने तो बस दुनिया को,
दर्पण दिखलाया है।' (पृ.145)

साहित्य-सर्जक एवं सच्चे बुद्धिजीवियों की वास्तविक भूमिका और नैतिक दायित्व को लगभग परिभाषित करते हुए आचार्य जी कहते हैं

'सत्ता में जो भी हो लेकिन,
हम विपक्ष में रहते हैं।
व्यथा-कथा जनगण की हमने,
जो देखी सो कहते हैं।' (पृ.87)

तथाकथित बुद्धिजीवियों की मन: स्थिति का सही चित्रण है इन पंक्तियों में

'उलझनों के जाल में,
मछली फँसी मन की।' (पृ.43)

ऐसे ही प्रबुद्धजन के लिये

'हमारी सोच तो मित्रो,
सदा से इंकलाबी है,
मगर हम क्या करें,
मजबूरियों के बीच रहते हैं...'

इस गीत में कवि छद्म क्रांतिकारिता की भी पोल खोलते हैं :

'कभी हम सोचते,
विद्रोह का परचम उठायें हम,

गरीबों के हकों के वास्ते,
लड़ने को जायें हम,
मगर जब सामने
परिवार के हालात आते हैं,
कहाँ उलझन में पड़ते हो,
यही हम मन से कहते हैं।' (पृ.65)

'गिरगिट हैं इन्सान नहीं' और 'सब हैं अपने' शीर्षक गीतों में भी मनुष्य की इसी अवसरवादी प्रवृत्ति पर गहरी चोट है। इसी संदर्भ में 'स्वाँग रचायें' (पृ.75) शीर्षक गीत वर्तमान में तथाकथित बाबाओं की सच्चाई और धर्मान्धता की आँधी पर प्रभावी कटाक्ष है :

आओ हम भी स्वाँग रचायें
×××
चन्दन-तिलक लगा मस्तक पर
धारण कर केसरिया बाना
तुलसी माला कर में लेकर
धर्म-कर्म का गायें गाना।
फौज खड़ी कर लें भक्तों की,
भक्ति-भाव की भाँग पिलायें
×××
हाथों की कुछ सीख सफाई,
हर दिन चमत्कार दिखलायें।
अखबारों में विज्ञापन दे,
पहुँचे हुए संत कहलायें।
दे बयान सुर्खियाँ बटोरें,
हर मसले में टाँग अड़ायें। (75)

धर्मांधता का एक और भयावह चित्र

'धवल लाल से डरा-डरा है,
केसरिया का शत्रु हरा है।
रंगों से ही रंग आजकल,
रहते तने-तने,
कहो,होली किस तरह मने।' (पृ.51)

ऐसे गीतों में मानवीय प्रकृतियों,विकृतियों और स्थितियों का सूक्ष्मतम वर्णन है।

कहीं-कहीं तो कवि आचार्य के काव्य-प्रयोग चमत्कृत करते हैं। 'अंक गणित के प्रश्नों जैसा' शीर्षक गीत में धन, ऋण, गुणा, भाग, भिन्न आदि गणितीय नियमों का तात्विक प्रयोग और जीवन के सूक्ष्म अनुभव हैं। यह गीत समग्रता में जीवन-दर्शन का अनूठा कलात्मक उदाहरण बन पड़ा है। (पृ.102)। ऐसा ही एक गीत माँ की वेदना पर केन्द्रित है,जिसमें आँसू पीती माँ के संघर्ष और दुख का मार्मिक वर्णन है।

कुल मिलाकर इस 164 पृष्ठीय संग्रह में भाव-वैविध्यपूर्ण 101 गीत हैं,जिन्होंने छंदबद्धता के नियमों के साथ आकार ग्रहण किया है,जिन्हें नवगीत विशेषण से विभूषित किया गया है। इन गीतों का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कवि अपनी अभिलाषा से कुछ इस तरह अवगत कराते हैं

'जीवन का नव चित्र बनायें,
उसमें रंग भरें।'
×××
'एक पहाड़ी हो सपनों की
अम्बर के नीचे।
जिस पर सोयी हो अभिलाषा,
आँखों को मींचे।
और कामना की
रजनीगंधा से सुमन झरे।' (41)

हम डॉ.राम वल्लभ आचार्य की इस अभिलाषा में अपने सपनों का रंग भरने के आकांक्षी हैं।

संपर्क : लोटस ए-1,स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बाग़मुगालिया,
भोपाल - 462043 (मध्यप्रदेश) मो. 8319163206

कला समय
कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल (म.प्र.)
गौरवशाली 12वाँ वर्ष
कलाकारों के उत्थान, प्रोत्साहन और सम्मानजनक मंच उपलब्ध कराने हेतु
कलाओं और कलाकारों को समर्पित संस्था 'कला समय'
0755-2562294, 9425678058
kalasamay1@gmail.com
कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

कला समय : नवांकुर...

अंकुरित संस्कार उम्र से बड़े है इनके...

बाल-मन उम्र की मंजिल तय करते-करते बच्चों को आज की तीव्र गति से भागने वाली दुनिया की हर गतिविधि के साथ ताल से ताल मिलाकर चलने की प्रेरणा देता स्तंभ 'नवांकुर' -' कला समय।'

बेटी जो चाहे कर सकती दुनिया मुट्ठी में भर सकती
जब जब अपने पर आई है चाँद सितारे छू आई है

नाम : नमामी चौहान
पिता : अनिल चौहान
माँ : श्रीमती दीपमाला चौहान
जन्म तिथिः 16-02-2014, जन्म स्थान : इंदौर (म. प्र.)
शिक्षा : छठीं, स्कूल :- माउन्ट कारमल

शौक :- नृत्य, गायन अभिनय कहानी-कविता-लेखन स्केटिंग, खाना बनाना ललना के गुण पलना में दिखते हैं कहावत शब्दशः नमामी पर लागू होती हैं। जिस में उम्र बच्चे ठीक से बोल नहीं पाते हैं। उस उम्र में नमामी शब्दों का उच्चारण साफ-साफ करती थी। चलना भी जल्दी शुरू कर दिया था। नमामी काफी स्वस्थ गोलमटोल बच्ची थी। नर्सरी की क्लास से ही इसकी प्रतिभा के दर्शन होने लगे थे। हिंदी राइम, फैंसी ड्रैस, अभिनय प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर सबको चौंका दिया। नमामी स्वभाव से काफी शांत, सहृदय, आज्ञाकारी अनुशासित बच्ची है। मित्र जल्दी बना लेती हैं। इसकी उपलब्धियां निम्नवत हैं:-

1- के.जी. । हिंदी राइम, फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (वर्ष-2016-2017), 2-के.जी. ।। :- शो एंड टेल, प्रतियोगिता प्रथम स्थान, किंडर गार्डल ग्रेजुएट स्टार, बॉक्सिंग में, खेल और युवा कल्याण विभाग, मध्य प्रदेश द्वारा सफल प्रशिक्षण प्रमाण पत्र, संस्कार आननद मेला 2019 में नृत्य में प्रथम स्थान (वर्ष-2018-2019) , 3-पहली कक्षा:- 50 मीटर रेस, लेमन रेस, कार्ड मेकिंग प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (वर्ष-2019-2020), फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (वर्ष-2020 2021), 4-दूसरी कक्षा: हिंदी पेट्रियोटिक पोएम, इंग्लिश पोएम रेसिटेशन प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (वर्ष-2021-2022), 5-तीसरी कक्षा: सोलो डांस, राखी मेकिंग, शटल रन, हिंदी पोएम रेसिटेशन, अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान (वर्ष-2022-2023), 6-चौथी कक्षा: हिंदी कविता पथ प्रतियोगिता में प्रथम स्थान, टेक्नोक्रैट्स स्नैग एंड रिले में मेरिट पार्टिसिपेशन प्रमाण पत्र, खजुराहो नृत्य समारोह, कत्थक कुम्भ के नृत्य में गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में नाम दर्ज हुआ। (वर्ष-2023-2024), 7- पांचवी कक्षा : इंग्लिश स्टोरी टेलिंग, फोल्डर मेकिंग प्रतियोगिता में प्रथम स्थान एनुअल एग्जामिनेशन में अप्रिसिएशन प्रमाण पत्र (वर्ष 2024-2025) सम्प्रति नमामी कोलार रोड स्थित त्रिधा संगीतं संगीत शाला में पंडित प्रकाश पाठक 'सुरमणि' एवं श्रीमती आरती शर्मा से ग्वालियर घराने का शास्त्रीय गायन की विधिवत शिक्षा ग्रहण कर रही हैं... आपका लक्ष्य उच्च कोटि की शास्त्रीय गायिका बनना है।

संपर्क : सत्य नारायण शर्मा, बी-102, जानकी अपार्टमेंट, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) पिन -462042 मो. 9926364058

निवेदनः आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं, कलाओं को उजागर करने हेतु कला समय 'नवांकुर' एवं 'उत्तराधिकार' स्तंभ इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते है- संपादक

डॉ. सुदाम खाड़े आयुक्त जनसम्पर्क का ज्ञान तीर्थ सप्रे संग्रहालय में डिजिटाईजेशन की प्रगति का अवलोकन

डॉ. सुदाम खाड़े, आयुक्त एवं सचिव जनसंपर्क ने 26 मई को ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय की भारतीय स्टेट बैंक की सामाजिक सेवा बैंकिंग के सहयोग से संचालित डिजिटाइजेशन परियोजना की प्रगति का अवलोकन किया। उन्होंने कम्प्यूटर पर अनेक डिजिटाईज पृष्ठों का अध्ययन किया। डा. खाड़े ने इस परियोजना के अगले चरण की तैयारी करने की जरूरत जतलाई जिसमें डिजिटाईज सामग्री को ऑनलाइन करने का सुझाव दिया। उन्होंने सप्रे संग्रहालय की अद्यतन वेबसाइट का भी अवलोकन किया। सप्रे संग्रहालय में 10 के.वी. सौर ऊर्जा पैनल की स्थापना को उन्होंने उपयोगी बताया। विश्व संग्रहालय दिवस पर परियोजना के लोकार्पण समारोह में डा. सुदाम खाड़े प्रवास पर होने के कारण सम्मिलित नहीं हो सके थे। ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय के स्थापना काल से मध्यप्रदेश जनसंपर्क सहयोगी और संबल की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस सहकार भावना के प्रति सप्रे संग्रहालय की ओर से मध्यप्रदेश जनसंपर्क के मुखिया होने के नाते डा. सुदाम खाड़े का आभार-सम्मान किया जाना था। 26 मई को बुद्धि के देवता श्रीगणेश की भव्य प्रतिमा और शाल भेंटकर यह दायित्व भी पूर्ण किया गया। ■

पहले हिन्दी समाचारपत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' के 199 साल, द्वि शताब्दी समारोह की गौरवमयी श्रृंखला का सुभारंभ

उदन्त मार्तण्ड

भारत में हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत आज से ठीक 199 साल पहले, 30 मई, 1826 को कोलकाता में हुई थी। कोलकाता को पांच भाषाओं की पत्रकारिता आरंभ करने वाली गंगोत्री माना जाता है। अंग्रेजी पत्रकारिता (1780), बांग्ला पत्रकारिता (1818), उर्दू और फारसी पत्रकारिता (1822) और हिन्दी पत्रकारिता (1826)। कानपुर के पं. युगलकिशोर शुक्ल हिन्दी पत्रकारिता के प्रवर्तक हैं, जिन्होंने कोलकाता से 'उदन्त मार्त्तण्ड' का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया था। बांग्ला में 'य' का उच्चारण 'ज' होता है। इसलिए उन्हें पं. जुगलकिशोर शुक्ल भी कहा जाता है। शुक्ल जी ने हिन्दी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा का निर्धारण भी किया- ''हिन्दुस्तानियों के हित के हेत''। दुर्भाग्य से पं. युगलकिशोर शुक्ल का कोई चित्र नहीं मिलता। कुछ लोगों ने आचार्य शिवपूजन सहाय के चित्र को शुक्ल जी के चित्र के रूप में प्रसारित कर रखा है। माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान 'उदन्त मार्त्तण्ड' की द्वि शताब्दी समारोह श्रृंखला 21 जून, 2025 से आरंभ कर रहा है। 30 मई, 2026 तक यह सिलसिला चलेगा।

-विजयदत्त श्रीधर ■

1940 के दशक के महत्वपूर्ण अखबार सप्रे संग्रहालय को भेंट

श्री दामोदर अग्निहोत्री, अध्यक्ष, सत्यम् कला एवं संस्कृति संग्रहालय, सागर ने 11 जुलाई, 2025 को 1940 के दशक के समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की प्रतियां सप्रे संग्रहालय को भेंट कीं। इस महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री में आज, पांचजन्य, जयहिन्द, अमृतबाजार पत्रिका, आदर्श, शुभचिंतक, हितवाद, सन्मार्ग, अग्रगामी, नया खून, संसार और विश्वमित्र तथा संगम, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, माधुरी, मदारी, इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया की प्रतियां शामिल हैं। श्री अग्निहोत्री के साथ पूर्व न्यायाधीश द्वय श्री उमेश कुमार गुप्ता एवं श्री योगेश कुमार गुप्ता, पुरातत्वविद् श्री बालकृष्ण लोखंडे इस अवसर पर उपस्थित थे। पूर्व पुलिस महानिदेशक डा. सुभाष अत्रे ने श्री दामोदर अग्निहोत्री की इस महत्वपूर्ण भेंट के लिए सराहना की। ■

विक्रमोत्सव 2025 को मिला एशिया का वाउ गोल्ड अवार्ड

4 जुलाई 2025, भोपाल। मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग अंतर्गत महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ द्वारा आयोजित विक्रमोत्सव 2025 को वाउ अवार्ड एशिया 2025 (WOW Awards Asia 2025) द्वारा एशिया के शासकीय समारोह की विशेष श्रेणी (Special Event of the Year Government) में गोल्ड अवॉर्ड से सम्मानित किया गया है। WOW Awards Asia की टीम भोपाल आकर माननीय मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव को यह अवार्ड प्रदान करेंगी। विगत वर्ष विक्रमोत्सव 2024 को एशिया का बिगेस्ट रिलीजियस अवार्ड मिल चुका है।

विक्रमोत्सव 2025 को यह सम्मान मिलने पर माननीय मुख्यमंत्री जी के संस्कृति सलाहकार एवं महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी ने इसे माननीय मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव की संस्कृति और विरासत के प्रति उनके समर्पण का परिणाम बताया। उन्होंने कहा कि विक्रमोत्सव 2025 को प्राप्त यह सम्मान न केवल मध्य प्रदेश बल्कि समस्त भारतवर्ष के लिए गौरव का विषय है। विक्रमोत्सव एक आयोजन मात्र नहीं है बल्कि इन सबसे बढ़कर संस्कृति, विरासत और विकास का बेजोड़ संगम हैं। बीते 18 वर्षों से निरंतर विक्रमोत्सव का आयोजन किया जाता रहा है। विगम वर्षों में विक्रमोत्सव ने देश के सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी उत्सवधर्मी पहचान को बखूबी स्थानपित किया है। इसमें ना केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतरराष्ट्रीय भागीदारी भी शामिल है।

उल्लेखनीय है कि WOW Awards Asia, वर्ष 2009 से लाइव इवेंट्स के क्षेत्र में उत्कृष्टता और नवाचार को प्रोत्साहित करने वाला एक प्रतिष्ठित मंच रहा है। यह आयोजन अनुभव आधारित विपणन, व्यापारिक बैठकों, प्रोत्साहन यात्राओं, सम्मेलनों, प्रदर्शनियों, सजीव मनोरंजन तथा विवाह उद्योग जैसे क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं और आयोजनों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्रदान करता है। इस वर्ष इसका 16वाँ संस्करण, दिनांक 20 और 21 जून 2025 को मुंबई स्थित जियो वर्ल्ड कन्वेंशन सेंटर में भव्य रूप से आयोजित किया गया, जिसमें देश-विदेश की प्रतिष्ठित संस्थाओं ने सहभागिता की।

माननीय प्रधानमंत्री कर चुके है सराहना

विगत दिनों माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विक्रमोत्सव की सराहना करते हुए कहा कि उज्जैन के महान सम्राट विक्रमादित्य के गौरव और वैभव को जन-जन तक पहुँचाने का यह प्रयास सराहनीय है। उनका शासन काल जन-कल्याण, सुशासन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए जाना जाता है। मध्यप्रदेश के ऊर्जावान मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के मार्गदर्शन में यह आयोजन निश्चित रूप से युवा पीढ़ी को अपने गौरवशाली अतीत से जोड़कर आत्मविश्वास और कर्तव्यनिष्ठा की भावना से परिपूर्ण नागरिक बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

विक्रमोत्सव 2025 में 300 से अधिक गतिविधियाँ हुई आयोजित

विक्रमोत्सव 2025 अंतर्गत 300 से अधिक विभिन्न सांस्कृतिक एवं बहुआयामी गतिविधियाँ सम्पन्न हुई। इस महोत्सव में लाखों लोग भागीदार रहे जबकि सोशल मीडिया के माध्यम से करोड़ों लोग विक्रमोत्सव से जुड़े। विक्रमोत्सव की बहुआयामी गतिविधियों में मध्यप्रदेश के सभी प्रमुख शिवरात्रि मेलों का समारंभ, कलश यात्रा, विक्रम व्यापार मेला, संगीत, नृत्य, वादन, शिवोह्म, आदि-अनादि पर्व समारोह, विक्रम नाट्य समोराह, चित्र प्रदर्शनियाँ, संगोष्ठी, भारतीय इतिहास समागम, राष्ट्रीय विज्ञान समागम, वेद अंताक्षरी, कोटि सूर्योपासना, शिल्प कला कार्यशाला, प्रकाशन, विक्रम पंचांग, पौराणिक फिल्मों का अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव, बोलियों एवं हिन्दी रचनाओं का अखिल भारतीय कवि सम्मेलन, 1000 ड्रोन्स की प्रस्तुति व ख्यात कलाकारों की प्रस्तुतियाँ शामिल है।

श्रीराम तिवारी, निदेशक
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश शासन

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि 'कला समय' के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

-सम्पादक

प्रतिक्रिया

पत्रिका के बहाने

पद्मश्री सम्मान से विभूषित पं. रामनारायण उपाध्याय केन्द्रित विशेषांक पर प्रतिक्रिया

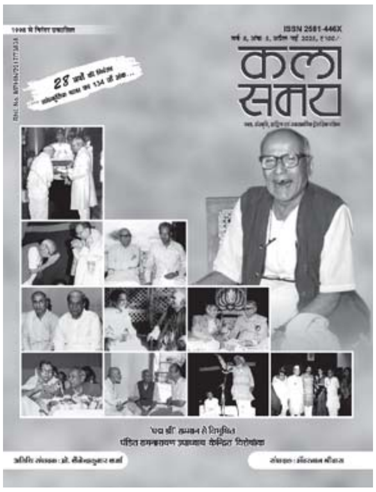

बधाई आपको। दीन क्या है,
किसी कामिल की इबादत करना !

मैं 'कला समय' को बार बार धन्य कहूंगा, इसलिए कि उन्होंने लोकचेतना के प्रति जीवन समर्पित करने वाले पंडित रामनारायण उपाध्याय के व्यक्तित्व कृतित्व पर केंद्रित यह विशेषांक संपादित प्रकाशित किया है।

बात केवल व्यक्ति की नहीं है, बात उस विचार की है, जो लोकतंत्र का आधार है। यह विचार उस ऐतिहासिक राष्ट्रीय आंदोलन के गर्भ से पैदा हुआ था।

यह विचार कोरा राजनैतिक नहीं था, यह विचार समग्रजीवनपद्धति में न्याय नीति समानता सौहार्द एकता जैसे लोकतंत्रात्मक जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा का विचार है। लेकिन आजादी के आंदोलन ने जिस विचार को आधार बनाकर जन की प्रतिष्ठा की थी, आजादी के बाद उस विचार को निरंतर अप्रतिष्ठ किया जाता रहा और उसके स्थान पर दलगत राजनैतिक मतवाद को केंद्र में स्थापित किया गया। वह मतवाद ये हो अथवा वो हो। हमारी शिक्षा, साहित्य, संस्कृति की संस्थाएं सामान्य से विशेष की ओर तथा जन से सत्ता की ओर चलती रही। राजनैतिक प्रश्रय वाले लोग इन क्षेत्रों में गद्दीनशीन हुए , साहित्य संस्कृति के क्षेत्र में भी कुर्सीपूजन के अनुष्ठान होते रहे और वे मनस्वी, जो जन की सत्ता के लिए जीवन समर्पित कर रहे थे, उनको धकियाया गया। मुझे याद है उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का लोकभूषण पुरस्कार ऐसे ही लोगों के लिए ही था, उपाध्यक्ष डा शरण बिहारी गोस्वामी से अत्यंत आत्मीयता का संबंध था, पुरस्कार श्री उपाध्यायजी के नाम पर निश्चित हो चुका था लेकिन एक मंत्री ने तर्क दिया कि लोकप्रशासक भी लोकभूषण हो सकते हैं, और वह सम्मान एक नौकरशाह के लिए चला गया।

यह एक उदाहरण है। हिंदी के जनपदों में और विभिन्न प्रदेशों में लोकजीवन का अध्ययन करने वाले, लोकचेतना जगाने वाले ऐसे दसियों नाम मुझे याद आ रहे हैं, 'कला समय' की इस पहल का स्वागत करते हुए दूसरी पत्रिकाएं भी अपने अपने जनपद और प्रदेशों की ऐसी विभूतियों के संबंध में इसी प्रकार के विशेषांक निकालें तो यह लोकतंत्र तथा शिक्षा, साहित्य, संस्कृति की सच्ची सेवा होगी।

साहित्य संस्कृति की वे राजनीतिक कसौटियां अब व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हैं , अब जरूरत लोकतंत्र के मूलभूत विचार को सुदृढ़ करने की है।

'कला समय' के लिए पुनः धन्यवाद।

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी, पानीपत (हरियाणा)

दादा रामनारायण उपाध्याय पर केन्द्रित विशेषांक निकालना किसी भी हिन्दी पत्रिका के लिये पुण्य का काम है। दादा रामनारायण उपाध्याय जैसा सरल तरल निश्छल नि खालिस मानव मैंने आज तक नहीं देखा--पूर्ण पारदर्शी। उन्होने विविध रंगी लोक को उसकी समग्रता में अनुभव किया, जिया और पिया और फिर अपनी मेधा का सुनहरा रंग चढ़ा कर लोक को परोसा। यही उनकी विलक्षणता है, इसीलिये वे मौलिक हैं, तुलसी की तरह सभी के हृदय गम्य हैं। आपने अपने विशेषांक में उनका सही जीवन्त विवरण दिया है। श्री शैलेन्द्र शर्मा के सम्पादकीय ने प्रारंभ में ही दादा की विविध वर्णी वाङ्मयी छवि को प्रस्तुत कर दिया है।

डॉ. मोहन गुप्त, उज्जैन (म.प्र.)

मैने अभी अंक देखा अद्भुत अंक ही नहीं एक ग्रंथ है । मैं बहुत भावुक हूँ अत: मेरे पास शब्द भी नहीं है बताने को इतना बड़ा काम हुआ है । आपका हृदय से आभार आप के हाथों से इसे हम लेना चाहते है ,स्वागत है घर आवजो भाई साहब आपने अमूल्य समय में निकाल कर घर पधारे हृदय से आभारी है, दादा का आशीर्वाद है सब पर।

पूर्णिमा चतुर्वेदी भोपाल म.प्र. (सबसे छोटी बेटी)

---

20 जुन 2025 आज दादा की पुण्य तिथि है। आपने जो काम कर दिखाया , जो हम नहीं कर सके।

डॉ. सुमन चौरे, हैदराबाद (बड़ी बेटी)

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए। –**संपादक**

‘कला समय’ का ‘पद्म श्री से विभूषित पंडित रामनारायण उपाध्याय’ पर केन्द्रित विशेषांक का भोपाल और उज्जैन में लोकार्पण।

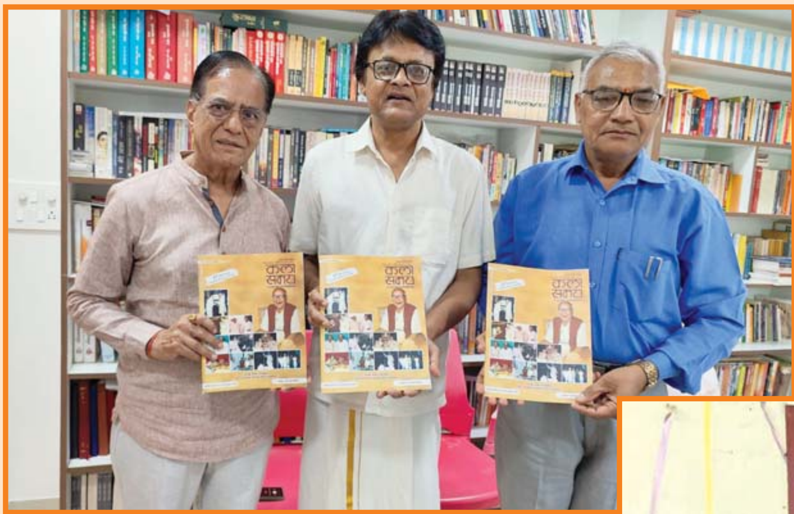

विजय मनोहर तिवारी कुल गुरु, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्व विद्यालय भोपाल द्वारा लोकार्पण साथ में संतोष तिवारी एवं भँवरलाल श्रीवास।

विक्रम विश्व विद्यालय उज्जैन में कबीर जयंती के अवसर पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में अतिथि संपादक प्रो. शैलेन्द्र शर्मा कुलानुशासक द्वारा डॉ. मीरा सिंह (यूएए) एवं उपस्थित अतिथियों से लोकार्पण कराया।

पंडित राम नारायण उपाध्याय की (छोटी बेटी) पूर्णिमा चतुर्वेदी एवं आनंद चतुर्वेदी (दामाद) भोपाल में लोकार्पण संपादक भँवरलाल श्रीवास द्वारा कराया गया।

कला समय संस्था की कार्यकारिणी बैठक में भोपाल स्थित रेस्टारेंट में योगेश कुमार गुप्ता पूर्व प्रधान जिला न्यायाधीश, अध्यक्ष प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट ‘सरसरंग’, लक्ष्मीनारायण पयोधि, मनोज व्यास बालकृष्ण लोखंडे एवं संपादक भँवरलाल श्रीवास द्वारा लोकार्पण कराया गया।

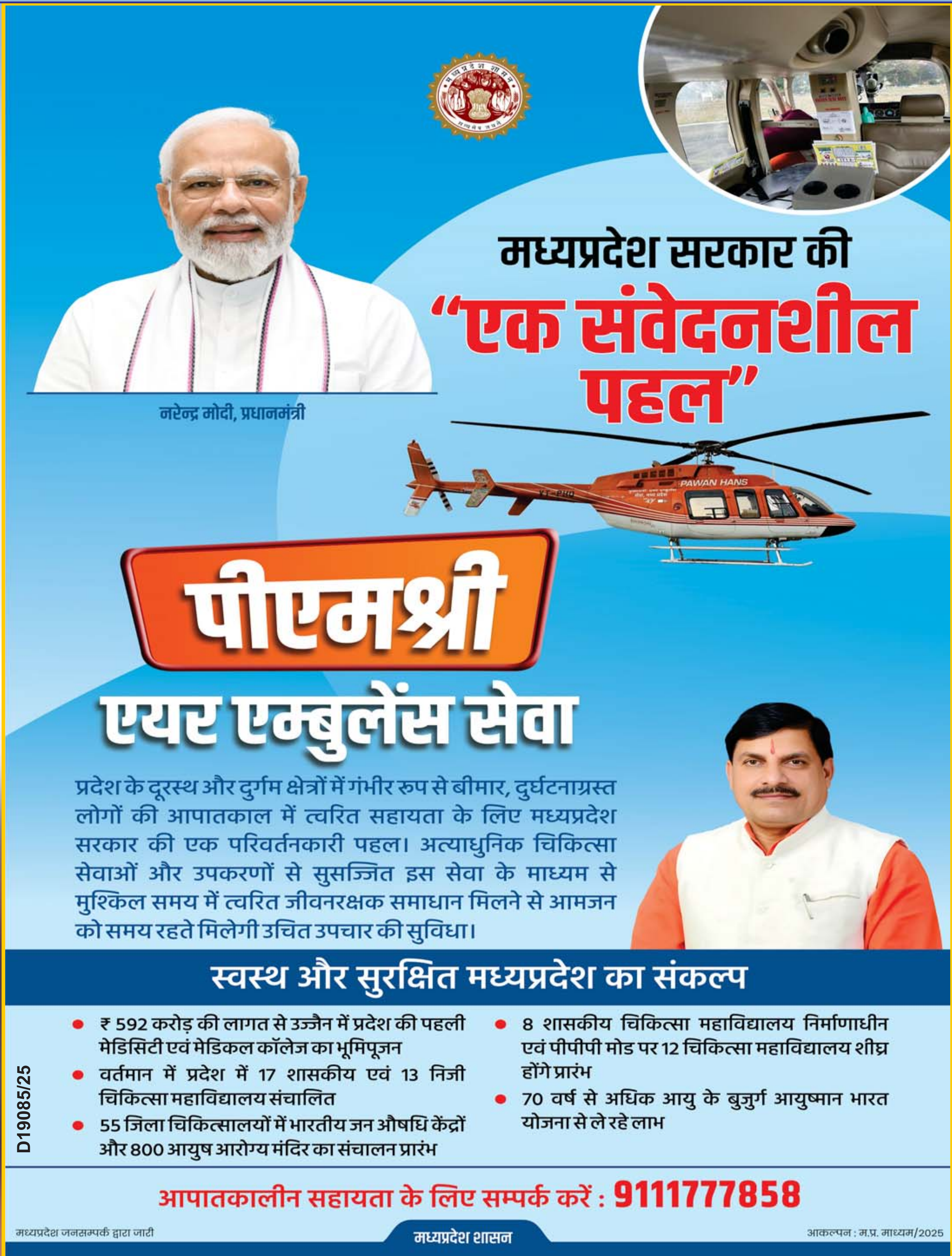

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास